सूचना।

पाठक महाशय! स्याद्वादग्रंथमालाका यह तीसरा ग्रंथ आपके सामने है। यह ग्रंथ ईडर संस्थानके प्रसिद्ध भट्टारक श्रीमत्सकलकीर्त्ति आचार्यमहाराजका संकृत पद्योंमें बनायाहुवा है। यद्यपि ये महाशय भट्टारकपदमें थे परंतु संसारसे वडे उदासीन थे तथा कोई २ महाशय कहते हैं कि अंतमें एकदम दिगंवर हो गये थे। अपने गुरुसे प्राप्तहुये आचार्यपट्टपर आरूढ़ होकर आपने अपनी मनुष्यपर्याय केवल ग्रंथरचना और गुजरात वा बागड़प्रांतको अपने उपदेशामृतसे धर्मनिष्ठ वनानेमें ही विताई थी। आपने समयके अनुसार परम उपयोगी वड़े २ तीस पैंतीस ग्रंथ बनाये हैं तथा अपने विद्वान् शिष्यप्रशिष्योंकेद्वारा भी अनेक ग्रंथ वनवाये थे। आप पंद्रहवीं शताब्दीमें विद्यमान थे। ईडरमें जो प्रसिद्ध प्राचीन श्रुतभंडार है वह आपहीका संग्रह किया हुवा है। आपके बनाये हुये ग्रंथ वड़े ही उपदेशी, परम उपयोगी हैं। पूर्वकालिक कविवर बुलाकीचंद सेवारामजी आदि अनेक विद्वानोंने तथा वर्त्तमानके प्रसिद्ध तेरहपंथी वावा दुलीचंदजीके प्रधान शिष्य पंडित पन्नालालजी चौधरी आदिने इनके ग्रंथोंका गद्यपद्यानुवाद करके सर्वत्र प्रचार किया है। आपके ग्रंथोंको तेरह वीस पंथी सव ही जैनी अतिशय पूज्यदृष्टिसे देखते और नित्य स्वाध्याय करके अपना हितसाधन करते रहते हैं। इस धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथका भी पद्यानुवाद पांडवपुराणके रचयिता कविवर बुलाकीचंदजीने किया है और गद्यानुवाद उपर्युक्त वावा दुलीचंदजीने पंडित पन्नालालजी चौधरीसे कराकर प्रचार किया है। परंतु पद्यानुवाद कठिन और गद्यानुवाद ढूँढाड़ीभाषामें होनेसे हमने यह वहुत ही सरल भाषानुवाद प्रत्येक प्रश्नोत्तरका अंक देदेकर श्रीयुत पंडित लालारामजीसे बनवाकर स्वल्पज्ञ व सर्वसाधारण जैनी भाइयोंके हितार्थ अति उपयोगी समझकर ही इसे स्याद्वादग्रंथमालामें प्रकाशित किया है परंतु समस्त जैनी भाई इसकी एकएक प्रति मगाकर अपने २ घरमें तथा मंदिरजी और चैत्यालयोंमें विराजमान करके इसका नित्य स्वाध्याय करें तब ही हमारा यह परिश्रम सफल हो सकता है।

कार्तिक कृष्णा १ रविवार
वीरनि. संवत् २४३९

जैनसमाजका दास—
पन्नालालवाकलीवाल।

श्रीपरमात्मने नमः ।

धर्मप्रश्नोत्तर

प्रथम ही ग्रन्थकर्त्ता श्रीसकलकीर्ति आचार्य ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिकेलिये अपने इष्टदेवको नमस्कार करते हैं।

तीर्थेशान्श्रीमतो विश्वान्विश्वनाथान्जगद्गुरून् ।
अनंतमहिमारूढान् वंदे विश्वहितंकरान् ॥ १ ॥

समवसरणादि लक्ष्मीकर शोभायमान, विश्वको जानेवाले, तीनोंलोकोंके स्वामी, जगतके गुरु, अनंतचतुष्टयादि महिमाके धारक, जगतके प्राणीमात्रको हित करनेवाले श्रीतीर्थंकर भगवानको मैं नमस्कार करता हूं। जो जगतके चूडामणि हैं, जिन्होंने चारों पुरुषार्थ पूर्णतया सिद्ध करलिये हैं, जिनको तीनों जगत नमस्कार करता है तथा जो अनंत गुण और अनंत सुखोंके सागर हैं ऐसे श्रीसिद्ध भगवानको मैं अपने संपूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करनेकेलिये नमस्कार करता हूँ। आचार पालन करनेमें मुख्य ऐसे आचार्य, श्रुतज्ञानके समुद्र उपाध्याय और प्रातःकाल मध्याह्न तथा सायंकाल इन तीनों समयोंमें योग धारण करने

वाले साधुजनोंको उनके गुणोंकी प्राप्तिकेलिये मैं बारंबार नमस्कार करता हूं। ग्यारह अंग और चौदह पूर्वोंके प्रतिपादन करनेमें समर्थ ऐसे संपूर्ण गणधरोंको तथा निर्ग्रंथ महाकवीश्वरोंको उनके गुणोंकी प्राप्तिकेलिये मैं नमस्कार करता हूं। जो भारती श्रीजिनेंद्रदेवके मुखरूपी कमलोंसे उत्पन्न हुई है, मेरे संपूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली है, जिसके प्रसादमात्रसे मेरी बुद्धि ज्ञानसे सुशोभित हो जाती है ऐसी भारती देवीको मैं बारंबार नमस्कार करता हूं। तीनों लोकोंमें मुख्य, तीनों जगतोंको मंगल करनेवाले, संसारके संपूर्ण विघ्नोंको नाश करनेवाले अत्यंत श्रेष्ठ श्रीजिनेंद्र, सिद्ध, साधु और आगमको नमस्कार करके अब मैं श्रोता और सद्धर्मादिकोंके समस्त दुर्विघ्न दूर करनेके लिये मंगल कामना, शुभकी प्राप्ति और संपूर्ण अनिष्टोंको दूर करनेकेलिये, स्वपरके उपकारार्थ तथा बोध और चतुरता बढानेकेलिये धर्मको विस्तार करनेवाले श्रीधर्मप्रश्नोत्तर ग्रन्थका प्रारंभ करता हूं। इस धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथके सुननेसे भव्य जीवोंके अज्ञान तथा मूढतादिक दोष नष्ट हो जाते हैं और सद्विवेक आदि उत्तम २ गुण वृद्धिको प्राप्त होते हैं॥

किसी समय किसी शास्त्रज्ञ शिष्यने धर्मको उद्योत करनेकेलिये संपूर्ण तत्त्व और सिद्धांतको जाननेवाले, संसारके समस्त भव्यजीवोंका हित करनेवाले, गुणोंके समुद्र,

अनेक प्रश्नोंसे न डरनेवाले श्रीनिर्ग्रंथ गुरुको नमस्कार करके बडे विनयके साथ नीचे लिखे हुये अनेक शुभ प्रश्न किये।

१। हे भगवन् उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य क्या है ?— उत्तर—प्राणीमात्रको इस लोक और परलोकमें हित करनेवाला और संपूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला धर्म ही उपादेय है। मुक्त होनेकेलिये यही धर्म ग्रहण करना चाहिये।

२। धर्म किसे कहते हैं—उत्तर— जो संसाररूपी समुद्रमें डूबते हुये भव्य जीवोंको निकालकर सर्वोत्तम मोक्षस्थानमें स्थापन करदे अथवा इंद्र अहमिंद्रादि स्थानोंमें स्थापन करदे और नरकादि दुर्गतियोंसे बचावे, वही जीवोंके साथ जानेवाला दयामय वास्तविक धर्म है। यही धर्म सेवन करने योग्य है।

३। संसारमें अनेक प्रकारके धर्म देखे जाते हैं उनमेंसे इस सद्धर्म की परीक्षा कैसे करना चाहिये ? उ०—जैसे सुनार लोग घिसकर छेदकर तपाकर और काटकर सुवर्णकी परीक्षा करते हैं उसी प्रकार श्रुतज्ञान, शील, तप और दया क्षमा आदि अनेक गुणों से वडे यत्नपूर्वक धर्मकी परीक्षा करनी चाहिये। भावार्थ— जहां वास्तविक श्रुत शील तप दया क्षमा आदि गुण पाये जाते हों वही धर्म है।

४। श्रुत अर्थात् शास्त्र किसे कहते हैं ?—जो अठारह दोषों से रहित, वीतराग, सर्वज्ञदेवने गणधरोंके प्रति कहा था, जो

तीनों लोकोंके पदार्थोंको प्रकाश करनेमें दीपकके समान है, मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकेलिये सदा धर्मका निरूपण करनेवाला है, ऐसे आगमको ही सच्चा शास्त्र समझना चाहिये। अन्य धूर्त पाखंडी आदि लोगोंका कहा हुआ कभी शास्त्र नहीं हो सकता।

५। धर्म अनेक हैं उनमें भले बुरेकी क्या पहचान है?—गाय भैंसका दूध सफेद होता है और आकका दूध भी सफेद होता है। परंतु पीनेसे उन दोनोंके स्वादमें तत्काल ही बहुत बड़ा अंतर जान पड़ता है, इसी प्रकार जैनधर्म और अन्यधर्मों में भी बहुत बड़ा अंतर है जो कि उनके फलोंसे जान पड़ता है अर्थात् दयामय जैनधर्मका फल स्वर्ग मोक्ष है और हिंसा-मय अन्यधर्मोंका फल नरकादि दुर्गति ही है।

६। धर्मके कितने भेद हैं?—दो अर्थात् मुनिधर्म और श्रावकधर्म। ये दोनों ही धर्म श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए हैं और दोनों ही दयामय हैं।

७। इन दोनोंमें भी उत्तम और अनिंद्य धर्म कौन है?—इन दोनोंमें मुनिधर्म ही उत्तम और संपूर्ण पापोंसे रहित है।

८। मुनीश्वर लोग किन किन शुभलक्षणोंसे इस मुनिधर्मका परिपालन करते हैं?—उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दश धर्म के लक्षण हैं। संसारमें ये ही दश धर्म उत्तम और सारभूत कहलाते हैं इन्हीं

शुभ लक्षणोंसे मुनिधर्म पालन किया जाता है और इन्हीं लक्षणोंसे यह तीनों लोकमें वंदना करनेयोग्य है।

९। उत्तम क्षमा किसे कहते हैं ?—जिन मुनियोंमें तपोविशेषसे ऐसी सामर्थ्य मौजूद है कि यदि वे चाहें तो अपने अनिष्टोंको क्षणभरमें भस्म करदें तथापि अपने कर्मोंका नाश करनेके लिये अनेक घोर उपसर्ग सहन करते हैं। उपसर्ग करनेवालेपर कभी क्रोध नहिं करते यही धर्मरत्नको उत्पन्न करनेवाली सर्वोत्तम उत्तमक्षमा है।

१०। मार्दव क्या है ?—संसारके प्राणीमात्रपर दया करनेवाले मनुष्योंके अतिशय कोमल परिणामोंको उत्तममार्दव कहते हैं।

११। उत्तम आर्जव किसे कहते हैं ?— जो शुद्ध मन वचन कायका व्यापार सरलतापूर्वक होता है जिसमें भी किसी प्रकारका छल कपट नहीं होता वही उत्तम आर्जव है।

१२। उत्तम सत्य क्या है ?— संसारमात्रका हितकरनेवाले, संपूर्ण जीवोंकी रक्षा करनेवाले, सबको प्रिय पा[illegible]ना. धर्मको प्रतिपादन करनेवाले उत्कृ[illegible] [illegible]तवन करना चा- कहते हैं। [illegible] मेरे प्राणोंको तो नहीं

१३। उत्तम शौच किसको [illegible]न ही क्या है इससे तो मेरे यथार्थ संतोषरूप निर्मलज[illegible] अतएव मेरा लाभ ही है इस- लोभ आदि दोषोंका प्रक्षा[illegible]दिकसे उत्पन्न हुआ क्रोध शांत

रंग पापोंको पूर्णतया नष्ट करदेते हैं वही उत्तम शौच है। जलादिकसे स्नान करना शौच नहीं है। क्योंकि जलादिकसे स्नान करनेमें तो अनेक जीवोंका घात होता है जहां जीवोंका घात होता है वहां शौच नहीं हो सकता।

१४। उत्तम संयम किसे कहते हैं?-अपने आत्माके समान षट्कायके जीवोंकी रक्षा करना तथा मन और इंद्रियोंका निग्रह (वश) करना ही उत्तम संयम है।

१५। उत्तम तप क्या है?— पंचेंद्रियोंके विषयोंको रोकदेना तथा उपवास वेला तेला कायक्लेश करना उत्तम तप है।

१६। उत्तम त्याग किसे कहते हैं?— संपूर्ण अंतरंग और बाह्य परिग्रहका त्याग करना, तथा उपदेशादि द्वारा अन्यको ज्ञानदान देना, व्रत देना आदि उत्तम त्याग है।

१७। उत्तम आकिंचन्य किसे कहते हैं?—अंतरंग और बाह्यपरिग्रहके त्यागपूर्वक शरीरादिकसे निर्ममत्व होना अर्थात् शरीरसे ममत्व छोड़देना उत्तम आकिंचन्य है।

१८। उत्तम ब्रह्मचर्य क्या है?-अनेक स्त्रियोंके नाना हाव-
दोनोंमें मुनिधर्म हो भी चित्तमें किसीप्रकारका रागादिक वि-
८। मुनीश्वर लोग किन कि. ब्रह्मचर्य है।
करते हैं?—उत्तम क्षमा मार्दव इनका फल क्या है?-संपूर्ण जगतमें
त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य शत्रुका नाश हो जाना और
संसारमें ये ही दश धर्म उत्तम और स.

२० । परलोकमें उत्तम क्षमाका फल क्या है ?– इंद्र अहमिंद्रादि उत्तम पदवीका मिलना, चक्रवर्त्तिकी विभूति तथा सर्वज्ञकी समवसरणादि विभूतिका प्राप्त होना ।

२१ । इस भवमें ही क्रोधका क्या फल मिलता है ?– संपूर्ण शरीरका जलना, निज और परके धर्मका नाश करना आदि क्रोधरूप शत्रुका दुष्फल है ।

२२ । परभवमें क्रोधका क्या निंद्य फल मिलता है ?–सातवें नरकतक जाना तथा क्रूरसर्प, व्याघ्र और सिंहादिक अशुभ गतियोंका मिलना आदि ।

२३ । गाली आदि दुर्वचनोंके द्वारा उत्पन्न हुआ क्रोध किस प्रकार सहन करना चाहिये ?—उस समय यह विचारना चाहिये कि यह दुष्ट मुझे केवल गाली आदि देता है लकड़ी आदिसे मारता तो नहीं है । गाली आदि दुर्वचनोंसे मेरे घाव थोड़े ही हुये जाते हैं इत्यादि निरंतर चिंतवन कर संपूर्ण दुर्वचनोंको सहन करना चाहिये ।

२४ । यदि कोई लकड़ी आदिकसे मारे तो वह क्रोध किस प्रकार निराकरण करना चाहिये ?–उस समय यह चिंतवन करना चाहिये कि यह दुष्ट मुझे मारता ही है मेरे प्राणोंको तो नहीं लेता । केवल मारनेसे मेरी हानि ही क्या है इससे तो मेरे अशुभकर्म निर्जीर्ण हो जांयगे अतएव मेरा लाभ ही है इत्यादि चिंतवन कर वधबंधनादिकसे उत्पन्न हुआ क्रोध शांत

करना चाहिये ।

२५। यदि कोई प्राण नाश करता हो तो वह, क्रोध किस प्रकार शांत करना चाहिये ?— यह पापी मेरे इन विनश्वर प्राणोंका हरण करता है मेरे सद्धर्मको तो नहीं चुराता इन विनश्वर प्राणोंके हरण करनेसे मेरी क्या हानि है मेरी हानि तो सद्धर्म हरण करनेसे होती। मेरे सद्धर्मकी रक्षा हुई यही मेरेलिये बड़ा लाभ है इत्यादि चिंतवनकर प्राणोंके नाश होनेसे उत्पन्न हुआ क्रोध शमन करना चाहिये।

२६। हे स्वामिन्! क्रोध जीतनेकेलिये और क्या भावना है सो कहो- क्रोध उत्पन्न होनेकी कारण सामग्री मिलजानेपर धर्मात्मा लोगोंको विचार करना चाहिये कि "कदाचित् क्रोधसे मेरे चित्तमें भी विकार होजाय अर्थात् मुझे भी क्रोध आजाय और उसके आवेशमें मैं भी दुर्वचनादिक कह डालूं तो फिर धर्मा-त्मा और पापी लोगोंमें अंतर ही क्या रह जायगा। इसलिये मुझे कभी क्रोध नहीं करना चाहिये"। क्रोधरूपी अग्नि बुझा नेकेलिये यही उत्तम भावना है। सदा इसका ही चिंतवन करते रहना चाहिये।

२७। क्रोधरूप शत्रुको नाश करनेकेलिये और कौन कौनसी भावना है ?—जब कोई मारता हो वा बांधता हो तो उस समय यही चिंतवन करना चाहिये कि पूर्वभवमें मैंने जो अशुभ कर्म किये हैं उन्हींका यह कटुक फल है। यह जीव जैसा करता

है वह उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। मैंने जो किया है वह मुझे भी अवश्य भोगना पड़ेगा। यह मुझे मारनेवाला जीव तो केवल निमित्तमात्र है। दुःख तो केवल अशुभकर्मके उदयसे होता है। यदि अशुभकर्मका उदय है तो दुःख भी अवश्य होगा। उसमें निमित्त चाहे जो हो। इत्यादि चिंतवन करनेसे क्रोधरूप शत्रु सहज ही नष्ट हो सकता है।

२८। क्रोध शान्त करनेकेलिये और क्या २ चिंतवन करना चाहिये?—यह प्राणी जो मुझे मार रहा है इसे किसी पहले भव-में अज्ञानवश अवश्य ही मैंने मारा होगा। उसी पूर्वभवकी शत्रुताका संस्कार इसके लगा हुआ है अतएव यह मुझे मार रहा है इसमें इस विचारेका क्या दोष है। दोष तो मेरा है जो मैंने इसे पहले किसीभवमें मारा था। इस भवमें तो यह मेरे मित्रका काम दे रहा है। क्योंकि मित्र उसे कहते हैं जो अशुभ दूर करे। इसने भी वधबंधनादिकेद्वारा मेरे अशुभकर्म दूर कर दिये हैं। यदि यह मुझे इस समय न मारता वा न बांधता तो मेरे पूर्वभवमें संचित किये हुए अशुभकर्म बने ही रहते, झरते नहीं इसलिये यह मेरा पूरा मित्र है इत्यादि वारंवार चिंतवन करनेसे यह दुष्ट क्रोध अवश्य ही शांत हो जाता है।

२९। क्रोध शांत करनेकेलिये तथा क्षमागुण बढ़ानेकेलिये और क्या चिंतवन करना चाहिये?—इस जीवके अवश्य ही अशुभकर्मका उदय है। उसीके वशीभूत होकर यह मुझे मारता है

वा बांधता है और घोरपापोंका संग्रह करता है स्वकीय पुण्यका नाश करता है। अपनी इतनी भारी हानि उठाकर भी यह जीव मेरा कल्याणही करता है। पूर्वसंचित पापोंसे मुझे हलका करता है। अतएव यह तो मेरा भाई है। क्योंकि भाई उसे ही कहते हैं जो अपनी हानि उठाकर भी कल्याण करै। इत्यादि चिंतवन करनेसे उत्तम क्षमागुण अवश्य ही प्रगट होता है।

३०। दुःख वा उपसर्ग देनेवालोंको अवश्य दुःख मिलता है इसका क्या दृष्टांत है?—जो जीव किसी दूसरेको उंगलीमात्रसे भी मारता है वह इस संसारमें लातों घूंसोसे मारा जाता है। भाले और बरछियोंकी मार उसपर पड़ती है। कभी २ कोई २ जीव तो जरासे मारनेके बदले इतना मारा जाता है कि उसकी मृत्यु तक हो जाती है। इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि जो दूसरेको दुःख देता है उसे अवश्य दुःख मिलता है।

३१। क्रोधी लोगोंके क्या चिन्ह प्रगट हो जाते हैं?—क्रोधी लोगोंके नेत्र लाल हो जाते हैं उनका हृदय क्रूर हो जाता है। उनकी बाणी सर्पिणीके समान कुटिल हो जाती है। वे सदा निर्दय और कुमार्गगामी हो जाते हैं। अन्य सज्जन लोगोंमें भी कलह उत्पन्न करा देनेकी वे सदा कोशिश करते रहते हैं। इत्यादि अनेक चिन्ह क्रोधी मनुष्योंमें पाये जाते हैं।

३२। धर्मरूपी कल्पवृक्षोंके वनको कौन जला सकता है?—क्रोधरूपी दावानल।

३३। किसकी वृष्टि होनेसे धर्मरूपी कल्पवृक्षोंका वन बढ सकता है? उत्तम क्षमारूप अमृतकी वृष्टि होनेसे।

३४। क्रोधरूपी दावानल किसप्रकार शांत हो सकता है?— उत्तमक्षमारूप जलकी वर्षा होनेसे क्रोधरूप दावानल स्वयं शांत हो जाता है।

३५। दुर्जनरूपी शत्रुओंसे वज्रपंजरके समान रक्षाकरनेवाली कौन है?—संकट पड़नेपर सज्जनोंको सर्वत्र क्षमा करनेवाली एक उत्तम क्षमा ही है।

३६। कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेकेलिये अभेद्य कवच क्या है? उत्तमक्षमा।

३७। कौनसी उत्तमक्षमा प्रशंसनीय है? — जो उत्तम क्षमा भारी २ करोड़ों उपद्रव आजानेपर कुछ भी चलायमान न हो वही सज्जनोंकी उत्तम क्षमा प्रशंसनीय है।

३८। महामुनियोंकी उत्तमक्षमाका क्या उदाहरण है?— जैसे पृथिवी चाहे जितनी खोदी जाय, चाहे जितनी तपाई जाय, जलाईजाय परंतु वह किसी प्रकार भी कंपायमान नहीं होती सदा निश्चल ही बनी रहती है। इसीप्रकार महायोगी पुरुष भी अतिशय भयानक और दुःसह अनेक घोर उपसर्ग आजानेपर भी अपने ध्यान तपश्चरणादिसे कुछ भी चलायमान नहीं होते हैं। सुमेरुपर्वतके समान निश्चल ही बने रहते हैं।

३९। उत्तममार्दवसे इसलोकमें क्या फल मिलता है?—उत्तम

मार्दव अर्थात् कोमल परिणामोंसे इस जीवको तपश्चरणकी प्राप्ति होती है। तेरहप्रकारके चारित्रकी प्राप्ति होती है। उत्तम क्षमादिक निर्मल गुण प्रगट हो जाते हैं। बुद्धि निर्मल तथा धर्म और मोक्ष पदार्थमें तत्पर हो जाती है। इत्यादि अनेक फल इसीलोकमें मिलते हैं।

४०। परलोकमें उत्तममार्दवसे क्या फल मिलता है?—इंद्र, अहमिंद्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि उत्तम २ पदोंकी प्राप्ति होना, तीनों जगतमें सारभूत उत्तम मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति होना, अनंतचतुष्टय समवसरणादि उत्कृष्टसंपदाओंका मिलना आदि।

४१। कठिन परिणामोंसे इसलोकमें क्या फल मिलता है? — कठिन परिणामोंसे अर्थात् अभिमान करनेसे तप व्रत यम नियम आदि सब नष्ट हो जाते हैं; उत्तमक्षमादि धर्म नष्ट हो जाते हैं। अहिंसादिक महापाप प्रादुर्भूत हो जाते हैं। तथा क्रोधादिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

४२। कठिन परिणामोंसे परलोकमें कौनसी गति होती है?— नरकगति, सिंह व्याघ्रादि अनेकप्रकार तिर्यंचगति, अथवा त्रस और स्थावरोंके भेदसे अनेकप्रकार तिर्यंचगति और भील चांडाल आदि अति निंदनीय मनुष्यगति।

४३। आर्जवभावोंसे अर्थात् सरल परिणामोंसे इसलोकमें किन किन गुणोंकी प्राप्ति होती है?— आर्जवपरिणामोंसे इस आत्माकी

विशुद्धि इतनी बढ़जाती है कि जो संपूर्ण पदार्थोंको सिद्ध कर सके और जो शुक्लध्यानको उत्पन्न कर सके। इसके सिवाय निर्मल तप, रत्नत्रय, उत्तम धर्म और ज्ञानादिक अनेक गुण आर्जवधर्मसे ही प्रगट होते हैं।

४४। मायावी (कपटी) मनुष्योंकी व्रत तप आदि क्रियायें कैसी हैं और उनका क्या फल है?—मायावी मनुष्योंका व्रत पालन करना, चारित्र पालना, शास्त्रका अभ्यास करना, योग धारण करना आदि सब व्यर्थ हैं। कपटपूर्वक जो तप किया जाता है वह तुष खंडनके समान है अर्थात् जैसे तुषखंडनसे (भूसी मात्रको कूटनेसे) कुछ फल नहीं निकलता उसी प्रकार कपट पूर्वक तपश्चरण करनेसे कुछ फल नहीं होता। मायावी लोगों-की दीक्षा लेना, समिति पालन करना आदि सब निष्फल है।

४५। हे भगवन्! परलोकमें मायावी लोगोंकी कैसी गति होती है? बगुला बिल्ली कुत्ता बिच्छू सर्प आदि नीच तिर्यंचगति।

४६। परलोकमें आर्जवधर्मसे कौन कौन गति होती हैं?—इस आर्जवधर्मके प्रभावसे किसीको अनंतसुख देनेवाली मोक्षगति होती है। किसीको सर्वार्थसिद्धि, किसीको उत्तम ग्रैवेयक और किसीको अच्युत स्वर्ग आदि गतियां होती हैं।

४७। सत्यभाषण करनेसे इसलोकमें कौन कौन गुण प्रगट होते हैं? इस संसारमें सत्यभाषणकरनेवालेके वचन अतिशय प्रमाण माने जाते हैं। सत्यवादीको अत्युत्कृष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

उसकी कीर्त्तिसे संसार स्वच्छ हो जाता है। संपूर्ण पदार्थोंको प्रकाश करनेवाली वाणी हो जाती है, और विद्यादिक संपूर्ण श्रेष्ठ गुण प्रगट हो जाते हैं।

४८। सत्यधर्मसे परलोकमें कौन कौन गति होती है?—सत्य भाषण करनेसे बहुत शीघ्र मोक्षगति प्राप्त होती है। यदि कारणवश मोक्ष प्राप्त न हो सकी तो अहमिंद्र अथवा उत्तम स्वर्गादिक गति प्राप्ति होती है।

४९। झूठ बोलनेवालेसे कौन कौन दोष प्रगट होते हैं।—झूठ बोलनेवालेंको राज्यकी ओरसे जिह्वाछेदन आदि अनेक दंड मिलते हैं। क्षण२ में अनेक पाप उत्पन्न होते हैं। उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। संसारमें वे अतिशय मूर्ख और अविश्वासी गिने जाते हैं। उनका अपयश संसारभरमें फैल जाता है। जगह जगह पर उनका अपमान होता है। कहांतक कहा जाय। झूठ बोलनेसे संसारमें अनेक अवगुण फैल जाते हैं।

५०। मिथ्याभाषण करनेवालेंको परलोकमें कौन कौन गति प्राप्त होती हैं।—असत्यभाषण करनेवाले सातवें नरक तक जाते हैं अथवा उन्हें नीच तिर्यंचगति प्राप्त होती है।

५१। कौन झूठ बोलनेवाला नरक गया है।—यों तो अनेक झूठ बोलनेवाले नरक गये हैं परंतु उन सबमें राजा वसु प्र-

१। क्षीरकदंब गुरुके समीप नारद नामका एक लड़का, राजपुत्र वसु और गुरुपुत्र पर्वत ये तीनों एक साथ विद्याध्ययन करते थे। थोड़े दिन बाद-गुरु

सिद्ध है क्योंकि उसे केवल झूंठबोलनेसे ही सातवें नरक जाना पड़ा था।

९२। उत्तम शौच पालन करनेमे इसलोकमें क्या क्या होता है संतोपरूप राज्यकी प्राप्ति होती है जिससे फिर अनेक सुख उत्पन्न होते हैं। आशा और लोभरूप शत्रुओंका सर्वथा नाश हो जाता है। शौच पालन करनेवाला संसारमें अतिशय पूज्य और मान्य गिनाजाता है।

९३। इस शौच धर्मसे परलोकमें क्या फल मिलता है।—जिस को केवल त्रैलोक्यनाथ सर्वज्ञ ही अनुभव कर सकते हैं ऐसे मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति होती है।

महाशयका देहांत होगया और महाराजके स्वर्गवास हो जानेपर राजपुत्र वसु भी सिंहासनारूढ हुआ। एक दिन नारद पर्वतमें बातचीत होते २ "अजैर्यष्टव्यम्" इस वाक्यार्थपर विवाद हो पड़ा। नारद कहता था कि इसका अर्थ "पुराने जौ से हवन करना" है और पर्वत कहता था कि बकरोंसे हवन करना इसका अर्थ है। विवाद होते २ अंतमें यह बात ठहरी कि राजा वसुसे निश्चय किया जाय कि गुरुजीने इसका क्या अर्थ बतलाया है क्योंकि राजा वसु भी इनका सहाध्यायी था। दूसरे दिन ये दोनों राजा वसुके पास गये और उक्त वाक्यका अर्थ निर्णय करना चाहा। राजा वसु जानता था कि गुरुजीने इसका अर्थ पुराने जौ से हवन करनाही बतलाया है और यही उत्तर कलकी सभामें देनेकेलिये उसने विचार किया था। परंतु पर्वतकी माताको बड़ी चिंता हुई कि कहीं राजा वसुने यथार्थ बात कह दी तो राजसभामें पर्वतकी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी। यही सोच समझकर वह वसुके पास गई और अनेक प्रकारसे समझा बुझाकर गुरुदक्षिणाके बदलेमें उसे पर्वतका पक्ष समर्थन करनेकेलिये तैयार किया। दूसरे दिन सभा हुई, तमाशा देखनेकेलिये बहुत लोग इकट्ठे हुये। राजा वसुने बड़े जोर शोरसे पर्वतका पक्ष समर्थन किया और कहा कि 'अजैर्यष्टव्यम्' इसका अर्थ गुरुजीने बकरोंसे हवन करना ही बतलाया है उसका इतना कहना था कि झटसे राजा वसुका स्फटिकमणिका सिंहासन टूटकर जमीनमें धँस गया और राजा वसु उसी समय मरकर सातवें नरकको दुःख भोगने लगा।

५४। जो लोग केवल स्नान करनेको ही उत्तम शौच मानते हैं उनसे इसलोकमें कौन कौन दोष उत्पन्न होते हैं।-जो मनुष्य स्नान कोही उत्तम शौच मानकर नित्य स्नान किया करते हैं वे प्रति दिन द्वींद्रिय तेइंद्रिय चतुरिंद्रिय और मगर मछली आदि अनेक पंचेंद्रिय जीवोंका घात किया करते हैं तथा शेवाल (काई) आदि अनंतकाय और जलकायके अनंत जीवोंका नाश किया करते हैं। जिससे उन्हें घोर पापका बंध होता है।

५५। जो मनुष्य केवल स्नान करनेको ही उत्तम शौच मानते हैं उन्हें कौनसी गति मिलती है।-नरकगति अथवा मत्स्यादिक दुर्गति।

५६। धर्मात्मा लोगोंको किन २ कारणोंसे उत्तम शुद्धि हो सकती है।—तपश्चरण करनेसे, संयम पालनेसे, इंद्रियोंको निग्रह करनेसे तथा संपूर्ण जीवोंकी रक्षा करनेसे।

५७। ब्रह्मचारीगण जलशुद्धिके सिवाय और किन किन कारणोंसे शुद्ध रहते हैं।-रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र) उत्तम तप और उत्तम ध्यान से।

५८। संयम पालन करनेसे इस लोकमें कौन कौन प्रत्यक्ष फल मिलते हैं।-यह संयमधर्मका ही अद्भुत प्रभाव है कि स्वयं इंद्र

---

१ स्नान करना केवल गृहस्थोंके लिये है और वह नित्यकर्म है अर्थात् गृहस्थोंको नित्य स्नान करना चाहिये। उनकेलिये यही शौच धर्म है। परंतु यह शौच केवल व्यावहारिक शौच कहलाता है वास्तविक नहीं। वास्तविक शौच लोभका त्याग करना ही है स्नान करना नहीं। लोभमात्रका त्याग करदेनेसे ही यह आत्मा शुद्ध और पवित्र हो सकता है-इस उत्तम शौचका केवल मुनि ही परिपालन कर सकते हैं और उन्हींके लिये यह कथन है। गृहस्थ यथाशक्ति इसे पाल सकता है।

भी आकर एक सेवकके समान मुनियोंके चरणकमलोंकी सेवा करता है फिर भला राजा महाराजाओंकी तो बात ही क्या है अर्थात् वे तो उनकी सेवा करते ही हैं। इसके सिवाय मुनियोंके चरणकमलोंका आश्रय पाकर सिंह व्याघ्रादिक अतिशय क्रूर जंतु भी स्वयं शांत हो जाते हैं।

५९। संयमी जनोंको परलोकमें कौन कौन गति प्राप्त होती है। संयमी जन प्रायः मोक्ष हो जाते हैं। अथवा सर्वार्थसिद्धि पर्यंत उत्कृष्ट देवगतिको प्राप्त होते हैं।

६०। असंयमसे कौन कौन दोष प्रगट होते हैं — संयमके बिना तप यम नियम आदि संपूर्ण गुण निष्फल हो जाते हैं। दीक्षा लेना व्यर्थ हो जाता है। इत्यादि और भी बहुत दोष प्रगट हो जाते हैं।

६१। असंयमसे परलोकमें कैसी दुर्गति होती है —असंयमी जीव पृथ्वी अप् तेज वायु निगोद विकलत्रय आदि अनेक तिर्यंच योगिनियोंमें अथवा नरकगतिमें चिरकाल तक परि-भ्रमण करते रहते हैं।

६२। उपवास करनेका क्या फल है -शरीरका कृश करना इंद्रियोंको जीतना, षट्कायके जीवोंकी रक्षा करना और वलिष्ट कर्मोंकी निर्जरा करना आदि।

६३। अवमोदर्यतपका क्या फल है —अवमोदर्य तपसे निद्राका विजय होता है। शुभध्यानमें उपयोग लगता है।

आसनकी स्थिरता हो जाती है।

६४। वृत्तिपरिसंख्यानतपसे क्या फल होता है -आहारकी इच्छा और लोलुपता हट जाती है। दीनतारूप परिणाम सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है।

६५। रसपरित्यागतपका क्या फल है —इंद्रियोंको सर्वथा विजय करना और निर्मल ब्रह्मचर्यका परिपालन करना आदि

६६। विविक्तशय्यासनतपसे क्या लाभ होता है —सुदृढ और निर्मल ब्रह्मचर्यका पालन करना और सामायिक ध्यान स्वाध्याय आदि कर्म निर्विघ्नतासे समाप्त होते हैं तथा राग-द्वेषरूप परिणामोंकी निवृत्ति हो जाती है।

६७। कायक्लेशतपसे क्या होता है —शरीरसे तथा इस शरीरको सुखदेनेवाले भोगोपभोग पदार्थोंसे ममत्व छूट जाता है शुभध्यानकी प्राप्ति होती है और स्वात्मजन्य मोक्षरूप अनंतसुख मिल जाता है।

[इस प्रकार ऊपर कहे हुये अनशन (उपवास) अवमोदर्य वृत्तपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्यतपके भेद हैं]।

६८। यह छहप्रकारके तप बाह्यतप क्यों कहलाते हैं -अन्य जनोंको ये प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं इसलिये ये बाह्यतप कहलाते हैं। अथवा मिथ्यादृष्टि लोग भी इस प्रकारके तप कर सकते हैं इसलिये भी ये बाह्यतप कहलाते हैं।

६९। यह बाह्यतप अतिशय कठिन है फिर भी पंडितजन इसे क्यों किया करते हैं?— आभ्यंतर तप बढानेके लिये, कर्मोंके नाश करने और मोक्षकी प्राप्ति होनेके लिये।

७०। प्रायश्चित्त नामके अंतरंग तपसे क्या लाभ है?— प्रायश्चित्तसे सज्जनोंका हृदय निःशल्य (मायामिथ्या निदान रहित) हो जाता है, तथा उनका तप और चारित्र अतिशय निर्मल हो जाता है।

७१। विनय नामा अंतरंग तपसे कौन २ गुण प्रगट होते हैं।— विद्या, विवेक, चातुर्य, तप और रत्नत्रयादिक अनेक गुण प्रगट होते हैं।

७२। वैयावृत्य करनेवालोंको क्या फल मिलता है।—उन्हें निर्विचिकित्सा आदि अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं। उनकी शक्ति बढ जाती है और पापोंका नाश हो जाता है।

७३। स्वाध्याय करनेसे क्या लाभ होता है।—स्वाध्याय करनेसे मन और पांचो इंद्रियां अपने वश हो जाती हैं। शुभध्यानकी प्राप्ति होती है। लोकालोकको प्रकाश करनेवाला विज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इनके सिवाय और भी अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं।

७४। कायोत्सर्ग करनेसे क्या क्या होता है।—शरीर परिग्रहादिकसे सर्वथा ममत्व छूट जाता है। आत्माकी अद्भुत शक्ति प्रगट हो जाती है। मन वचन कायकी क्रियायें सब शुभरूप

परिणत होजाती हैं। तथा अनंत कर्मोंका क्षय हो जाता है।

७५। धर्मध्यानसे क्या फल मिलता है।—अशुभ कर्मोंका नाश हो जाता है। ज्ञानरूपी सम्पदा और अनंत सुखोंकी प्राप्ति होती है। तथा परभवमें सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्तम देवगति मिलती है।

७६। शुक्लध्यानका क्या फल है। — अनंत सुखको देनेवाली केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ लब्धियां शुक्लध्यानसे ही प्राप्त होती हैं।

७७। मिथ्यादृष्टियोंको आर्त्तध्यानसे कौनसी दुर्गति मिलती है। अनेक क्लेश और दुख देनेवाली तिर्यंचगति।

७८। रौद्रध्यानसे क्या होता है —जितना शुभ है वह सब रौद्रध्यानसे अशुभ हो जाता है और परलोकमें नरक गति मिलती है। ऊपर कहे हुये प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अंतरंग तप हैं। ध्यान के जो चार भेद किये हैं उनमेंसे धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान तो मोक्षके कारण हैं तथा आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान नरक निगोदादि संसारके कारण हैं।

७९। इस अंतरंगतपसे इस लोकमें क्या २ प्रत्यक्ष फल मिलता है— इस अंतरंग महातपके प्रभावसे अनेक ऋद्धियां उत्पन्न

होती हैं। घातिया कर्मोंका नाश हो जाता है। केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। महातपस्वियोंके चरणकमल स्वयं त्रिलोकेश्वर (इंद्र,धरणींद्र,चक्रवर्ती) भी एक सेवकके समान पूजते हैं।

८०। जो लोग इस ऊपर कहे हुये बारह प्रकारके तपश्चरणका पालन तो करते नहीं किंतु अपनी इच्छानुसार जटा बढाना, पंचाग्नि तापना आदि मिथ्या तपश्चरण करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है— उन्हें हजारों रोग हो जाते हैं। हजारों क्लेश उपस्थित होते हैं तथा परभवमें नरक और तिर्यंचगति प्राप्त होती है।

८१। परिग्रह त्याग कर देनेसे मुनियोंको क्या लाभ होता है— परिग्रह त्याग कर देनेसे मुनियोंका हृदय निःशल्य हो जाता है। संपूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं और समता आदि अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं।

८२। ज्ञानका दान करनेसे अर्थात् किसीको पढाने लिखाने अथवा विद्यावृद्धिमें सहायता देनेसे क्या फल मिलता है —ज्ञानदान करनेसे सज्जन पुरुषोंको संपूर्ण द्वादशांग श्रुतज्ञानकी प्राप्ति होती है, तथा क्रमसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है।

८३। अभयदान देनेसे मुनिजनोंको क्या लाभ होता है। अभयदान देनेवाले मुनियोंको कभी रोग दुःखादिककी उत्पत्ति नहीं होती। तथा अन्तमें उन्हें उत्तम निर्भय स्थान अर्थात् मोक्षस्थान ही प्राप्त होता है।

८४। परिग्रह रखनेवालोंमें कौन २ दोष प्रगट होते हैं।—

परिग्रह रखनेवालोंका चित्त सदा आर्त्तध्यान अथवा रौद्र-ध्यानमें ही लीन रहता है, उनकी लेश्यायें और परिणाम सदा अशुभ ही रहते हैं। वे सदा परिग्रहोंमें मोहित बने रहते हैं। उनकी दीक्षा लेना अथवा तपश्चरण करना आदि सब कार्य व्यर्थ ही है।

८५। सामर्थ्य होते हुये भी ज्ञानदान न देनेवालोंकी क्या २ हानि होती है। उनका ज्ञान नष्ट हो जाता है। कृपणता और मूर्खता उन पर अपना अधिकार जमा लेती है। उनका संपूर्ण यश भी नष्ट हो जाता है।

८६। निर्दयी मनुष्योंसे क्या २ दोष बन पड़ते हैं।—निर्दयी लोगोंका संयम धारण करना भी निरर्थक है। वे संसारमें पापोंके कारण सदा परिभ्रमण ही करते रहते हैं।

८७। जो जीव आकिंचन्यधर्मका पालन करते हैं अर्थात् तिल तुषमात्र भी परिग्रह नहीं रखते उन्हें क्या लाभ होता है।—आकिंचन्यधर्मको धारण करनेवालोंके सदा कर्मके समूह नष्ट होते रहते हैं। तथा निर्ममत्वादिक सद्गुण प्रगट होते रहते हैं। उनके आते हुये कर्म रुक जाते हैं, और अंतमें उन्हें मोक्ष रूप उत्तम सुख ही मिलता है।

८८। ब्रह्मचारियोंको ब्रह्मचर्य पालन करनेसे क्या २ होता है।—ब्रह्मचर्यके प्रतापसे इंद्र भी बडी भक्ति और प्रेमसे ब्रह्मचारियोंके चरणकमलोंकी सेवा करता है। इस ब्रह्मचर्यके

माहात्म्यसे इंद्रोंके आसन भी कंपायमान हो जाते हैं। सद्विद्या आदि अनेक उत्तम २ गुण प्रगट हो जाते हैं। उनका यश संसारभरमें व्याप्त हो जाता है। रागद्वेषादिक दोष नष्ट हो जाते हैं और इंद्रियां सब वशीभूत हो जाती हैं।

८९। जो अब्रह्मचारी अर्थात् व्यभिचारी हैं उन्हें क्या २ हानि उठाना पडती हैं।—उन्हें सर्वत्र अपमान सहना पडता है। उनके राग, द्वेष, रोग, शोक, चिंता आदि दोष वहुत वढ जाते हैं और अंतमें वे नरकादिक दुर्गतिमें जाते हैं।

९०। हे भगवन् यह जो उत्तम क्षमादिक दशलाक्षणिक धर्म ऊपरि कहा गया है इसके पालन करनेसे धर्मात्मा सज्जनजनोंको क्या फल मिलता है वह मुझसे कहिये जिससे मेरा भी कल्याण हो।—दशलाक्षणिक धर्म परिपालन करनेवालोंको तीनों ही जगतमें अतिशय मान्यता और पूज्यता प्राप्ति होती है। इस धर्मके पालन करनेसे असंख्यात कर्मोंकी निर्जरा होती है। संवरपूर्वक शुक्लध्यानकी प्राप्ति होती है, और अंतमें मोक्षगतिकी प्राप्ति होती है। ये उपर्युक्त जो प्रश्न किये गये हैं वे धर्मको प्रगट करनेवाले हैं, धर्मका स्वरूप जाननेकी आकांक्षासे ही पूछे गये हैं तथा उत्तमक्षमादिक दशलाक्षणिक धर्मोंका स्वरूप ही इनमें पूछा गया है। इसलिये इन प्रश्नोंको तथा इनके उत्तरोंको अच्छी तरह समझ कर उत्तम क्षमादिरूप दशला-

क्षणिक धर्मका ही सेवन करो। यही धर्म संपूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। स्वर्ग और मोक्षकी अद्भुत सम्पदाको देने वाला है। तथा अनंत सुखोंका भंडार है। बड़े २ तपस्वी ही इसका स्वरूप जान सकते हैं। वे ही इसे पूर्णतया धारण कर सकते हैं। इसीके सेवन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

यह दशलाक्षणिक धर्म अनंत गुणोंको प्रगट करने वाला है और अनंत दोषोंको दूर करनेवाला है। इस धर्म को जो सेवन करते हैं वे संसारमें धार्मिक गिने जाते हैं। इस धर्मके परिपालन करनेसे उत्तम धर्मकी वृद्धि होती है। इस धर्मके लिये मैं मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूं। इस धर्म से भिन्न और कोई भी ऐसा धर्म नहीं है जो रत्नत्रयादि गुणों का देनेवाला हो। इस धर्मकी जड़ उत्तम क्षमाही है। इस धर्ममें ही मैं अपना चित्त सदा स्थिर रखता हूं। हे धर्म! मेरा यह संसार संबंधी भय दूर कर।

(इस श्लोकमें धर्मशब्दमें सातों विभक्तियोंका प्रयोग किया गया है)

जो श्रीतीर्थंकर धर्मरूप प्रश्नोंका उत्तर देनेमें अत्यंत निपुण हैं और जो गणधरदेव धर्मरूप प्रश्नोंके पूछनेमें अति शय चतुर हैं। उन्हें मैं उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये बारंबार नमस्कार करता हूं।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रन्थे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते क्षमादिदशलाक्षणिक धर्मप्रश्नोत्तरवर्णनोनाम प्रथमोऽधिकारः॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

अब ग्रंथकार पंच परमेष्ठीको नमस्कार करके प्रश्नोत्तररूपसे गृहस्थोंका धर्म निरूपण करते हैं।

९१। कैसे आचरणोंसे गृहस्थोंका धर्म पालन हो सकता है? दर्शनादिक ग्यारह प्रतिमाओंके आचरण करनेसे।

९२। वे ग्यारह प्रतिमायें कौन २ हैं—१ दर्शनप्रतिमा, २ व्रतप्रतिमा, ३ सामायिकप्रतिमा, ४ प्रोषधोपवासप्रतिमा ५ सचित्तविरतप्रतिमा ६ रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा ७ ब्रह्मचर्यप्रतिमा ८ आरंभत्यागप्रतिमा ९ परिग्रहत्यागप्रतिमा १० सावद्यअनुमतित्यागप्रतिमा और ११ उद्दिष्टाहारत्यागप्रतिमा

९३। दर्शनप्रतिमा किसे कहते हैं—पंच उदंबर और सात व्यसनोंका त्याग करना, तथा शंकादि दोषोंसे रहित, निःशांकितादि अष्टगुण सहित सम्यग्दर्शनका धारण करना दर्शन प्रतिमा है। भावार्थ—निर्दोष सम्यग्दर्शनका धारण करना ही दर्शनप्रतिमा है परंतु इतना विशेष है कि इसके साथ २ पंच उदंबर और सात व्यसनोंका त्याग अवश्य होना चाहिये। यह दर्शनप्रतिमा ही संपूर्ण व्रतोंकी जड़ है।

९४। सप्त व्यसनोंके क्या २ नाम हैं—१ जूआ खेलना २ मांस खाना, ३ शराब पीना, ४ वेश्यासेवन करना ५ शिकार खेलना, ६ चोरी करना और ७ परस्त्री सेवन करना ये

सात व्यसन कहे जाते हैं। ये सातों ही व्यसन अनेक पाप और संपूर्ण अनर्थोंके करनेवाले हैं तथा धर्मको नाशकरने वाले हैं।

९५। जूआ खेलनेसे क्या हानि होती है—जूआ खेलनेसे प्रतिष्ठा मिट्टीमें मिलजाती है, शोभा सब जाती रहती है। सुखकी सब सामिग्री नष्ट हो जाती है। हिंसा झूठ चोरी आदि अनेक पाप करने पड़ते हैं। अनेक दुर्वचन सहने पड़ते हैं। दरिद्रता अलग आ घेरती है, और २ भी बड़े दुःख भोगने पड़ते हैं। यहांतक कि कभी २ प्राण भी खो बैठने पड़ते हैं। नरकमें लेजानेवाला पाप भी जूएसे होता है। यही जूआ एक ऐसा व्यसन है कि जो चोरी वेश्यागमन आदि और और व्यसनोंको भी स्वयं इकट्ठा करलेता है, तथा उन्हे दिनरात बढ़ाता रहता है।

९६। जिन्होंने मांस खाना छोड़ दिया है उन्हें और कौन कौन चीजें नहीं खानी चाहियें—बेर आदि ऐसे फल कि जिनमें सदा कीड़े रहते हैं, घुने हुए गेहूं, जव, मटर आदि धान्य तथा और भी ऐसे पदार्थ कि जिनमें जीवजंतु होनेकी संभावना[1] हो, नहीं खाने चाहिये। रात्रिमें भोजन करनेसे छोटे २ जीवजंतु भोजनमें आ पड़ते हैं अतएव रात्रिमें भोजन करनेवाला मां-

[1] जिस नाजमें सफेद टिक्की लगी हो उसमें अवश्य ही जीवकी उत्पत्ति हो जाती है इसकारण ऐसा नाज जैनीको कदापि भक्षण नहीं करना चाहिये।

सभक्षणके दोषोंसे बच नहीं सकता। इसलिये मांसभक्षणके त्यागियोंको रात्रिभोजन भी अवश्य छोड़देना उचित है।

९७। जिन्होंने मद्यपानका त्याग करदिया है उन्हें और कौन २ द्रव्य छोड़देने चाहियें—भंग आदि ऐसे २ संपूर्ण द्रव्य जोकि बुद्धि बिगाड़नेवाले हों तथा उन्मत्त करनेवाले हों।

९८। वेश्यासेवनसे क्या २ हानि होती है—गृहस्थ अवस्थामें अवश्य पालनेयोग्य आचरण सब नष्ट हो जाते हैं। वेश्यासेवन करनेवाले सदा विट (गुंडे, रंडीबाज़ वेश्यालंपटी) कहलाते हैं। उनका कुल डूब जाता है। यदि वेश्याके गर्भ रहजाय तो और भी घोर अपयश फैल जाता है इसके सिवाय भ्रूणहत्याका पाप भी होता है। वेश्या मद्य मांसादिकका सेवन करती ही है नीच और दुष्टलोगोंसे संबंध रखती ही है अतएव जो लोग वेश्यासेवन करते हैं उन्हें वे सब दोष लगते हैं जो कि मद्यमांसादिकके सेवन करनेसे होते हैं। तथा नीच और दुष्ट लोगों के संबंध रखनेसे होते हैं। वेश्यासेवन करनेसे वह पाप उत्पन्न होता है जो कि उसे सीधा नरक ले जाता है।

९९। शिकार खेलनेवालोंको इस जन्ममें तथा परभवमें कौन २ दुःख उठाने पड़ते हैं—जो जीव बलवान होकर निर्बल पशुओं को मारते हैं वे परलोकमें उन्हीं जीवोंके द्वारा (जिन्हें उन्होंने मारा था और मर कर वे उससे भी बलवान् उत्पन्न हुये हैं) करोड़ोंबार मारे जाते हैं। करोड़ोंबार उन्हीं जीवोंके

द्वारा उनका नाश होता है इसके सिवाय इस लोकमें भी शिकार खेलनेवालोंका चित्त सदा क्रूर और दुर्ध्यानमें ही लीन रहता है जिससे वे घोर पापका बंध करते हैं।

१००। चोरी करनेसे क्या क्या दुःख होते हैं —चोरी करनेवालोंका कुटुंब और कुल सब नष्ट हो जाता है। चोरी करनेसे उनपर ऐसी मार पड़ती है कि उनकी मृत्यु तक हो जाती है और अंतमें उस पापसे वे सीधे नरक चले जाते हैं।

१०१। परस्त्रीसेवन करनेवालोंकी कैसी दुर्दशा होती है।—राज्यकी ओरसे परस्त्री सेवन करनेवालोंका मस्तकादि अंगोपांग काट लिये जाते हैं। उनका कुल उनकी शोभा सब नष्ट हो जाती है। उनका आत्मा भी अतिशय मलिन हो जाता है। यहां तक कि परभवमें उन्हें सातवां नरक ही मिलता है। जहां कि गरम कीहुई लोहेकी पुतलियोंसे बार २ आलिंगन कराया जाता है।

१०२। इन सातों व्यसनोंके सेवन करनेसे कौन २ दुर्गति होती है। सात व्यसन है और सात ही नरक हैं जो एक एक व्यसनका सेवन करतेहैं उन्हें किसी न किसी एक नरकका दुःख भोगना पड़ता है किंतु जो सातोंव्यसनोंका सेवन करते हैं उन्हें अनुक्रमसे सातों ही नरकोंके ऐसे २ घोर दुःख भोगने पड़ते हैं जो कि कवियोंके वचनगोचर भी नहीं हो सकते।

१०३। व्रतप्रतिमा किसे कहते हैं — निरतिचार पंच अणु-

व्रत और तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रतोंको पालन करना ही व्रतप्रतिमा कहलाती है।

१०४। अणुव्रत किसे कहते हैं और वे कितने हैं — मन वचन कायसे स्थूलहिंसा झूठ चोरी अब्रह्म (कुशील) और परिग्रहका त्याग करना ही अणुव्रत है और वह अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाणके भेदसे पांच प्रकार है। यह अणुव्रत ही गृहस्थधर्मका मूल है। क्योंकि इसके विना गुणव्रत शिक्षाव्रतादि कभी नहीं हो सकते।

१०५। अहिंसाअणुव्रत किसे कहते हैं — मनवचनकायसे तथा कृतकारितअनुमोदनासे द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवोंकी रक्षा करना तथा अपने आत्माकी रक्षा करना ही अहिंसाणुव्रत कहलाता है। यह अहिंसाणुव्रत ही अन्य सब व्रतोंका मूल है, सबसे उत्तम है, धर्मका मूल कारण है। अन्य अचौर्यादिक संपूर्ण व्रत केवल अहिंसाव्रतकी पुष्टि करनेकेलिये ही कहे गये हैं।

१०६। सत्याणुव्रत कैसा है— स्थूल असत्यका त्याग करना अर्थात् ऐसा असत्यभाषण न करना जिससे किसी जीवको दुख पहुंचे अथवा राज्य वा पंच दंड दे सकें। किंतु यथार्थ जीवमात्रके हितकारी, परिमित, साररूप, पापके नाश करनवाले, धर्मकी वृद्धि और सबका कल्याण करनेवाले, स्वपरका यश वढ़ानेवाले और परनिंदासे रहित उत्कृष्ट वचन

कहना ही सत्याणुव्रत कहलाता है।

१०७। आचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं — किसी ग्राममें वा जंगलमें अथवा किसी मार्गमें किसीकी कोई वस्तु अथवा धन धान्यादिक पड़ा हो अथवा कोई भूल गया हो अथवा किसीका विगड़ा हुआ पड़ा हो उसे स्वयं नहीं उठाना अथवा किसीकेलिये उठानेकी आज्ञा नहीं देना उसे अचौर्य अणुव्रत कहते हैं। जिस वस्तुमें देनेलेनेका व्यवहार संभव हो सकता है ऐसी विना दी हुई कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करना वही अचौर्याणुव्रत है। इस अचौर्याणुव्रतसे लोभ जाता रहता है और अनेक सुखदेनेवाली सामिग्री स्वयं आ मिलती है।

१०८। स्वदारसंतोष नामके चौथे अणुव्रतका क्या स्वरूप है — स्वस्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीमात्रको पुत्री भगिनी और माता समझना अर्थात् जो अपनेसे छोटी लड़की हों उन्हें पुत्री समझना, जो बराबरीकी हों उन्हें बहिन समझना और जो बड़ी हैं उन्हें माता समझना ही गृहस्थोंकेलिये ब्रह्मचर्य अणुव्रत कहलाता है। यह व्रत धर्मका मूलकारण है; जगत्पूज्य है और पापका नाश करनेवाला है।

१०९। परिग्रहपरिमाण अणुव्रत किसे कहते हैं — १ खेत जमीन वगैरह २ मकान ३ गाय भैंस घोड़े आदि पशु ४ गेहूं जौ आदि धान्य ५ रुपया मोहर सोना चांदी आदि धन ६ दासी दास ७ आसन ८ शय्या ९ वस्त्र और १० धातु वर्त्तन वगैरह

ये दश प्रकारके बाह्यपरिग्रह कहलाते हैं अपनी शक्ति और हैसियतके अनुसार इनका परिमाण करना पांचवां परिग्रहपरिमाण नाम अणुव्रत कहलाता है । इन परिग्रहोंका परिमाण इसप्रकार किया जाता है कि "हम हजार वा लाख बीघा खेत रक्खेंगे सौ वा हजार या लाख घोड़े रक्खेंगे लाख वा करोड़ मन गेहूं रक्खेंगे" आदि ।

११० । गृहस्थोंको परिग्रहपरिमाणसे क्या लाभ है — लोभरूपी शत्रु नष्ट हो जाता है । आशारूपी राक्षसी मर जाती है । संतोषादिक अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं । राज्यादिक संपदायें प्राप्त होती हैं । अनेक धर्मात्मा देव उसकी परीक्षा और सहायता करनेमें सदा उद्यत रहते हैं ।

१११ । यदि परिग्रहका परिमाण नहीं किया जाय तो क्या हानि होती है — काम क्रोध मोह लोभ आदि धर्मको चुरानेवाले शत्रु अतिशय उत्तेजित हो जाते हैं । उनकी निंदा संसारभरमें फैल जाती है और आशा भी इस संपूर्ण जगतको उदरस्थ करलेना चाहती है । परिग्रहका परिमाण न करनेसे यह प्राणी लोभ और आशाके फंदेमें फँसकर ऐसे ऐसे घोर पाप करता है जो कि केवल नरकके ही कारण होते हैं ।

११२ । गुणव्रत कौन २ हैं — दिग्विरति, अनर्थदंडविरति और भोगोपभोगपरिमाण ये तीन गुणव्रत हैं । ये गुणव्रत अणुव्रतोंको बढ़ानेवाले तथा धर्मकी वृद्धि करनेवाले हैं ।

ये दश प्रकारके बाह्यपरिग्रह कहलाते हैं अपनी शक्ति और हैसियतके अनुसार इनका परिमाण करना पांचवां परिग्रह-परिमाण नाम अणुव्रत कहलाता है। इन परिग्रहोंका परिमाण इसप्रकार किया जाता है कि "हम हजार वा लाख बीघा खेत रक्खेंगे सौ वा हजार या लाख घोड़े रक्खेंगे लाख वा करोड़ मन गेहूं रक्खेंगे" आदि ।

११० । गृहस्थोंको परिग्रहपरिमाणसे क्या लाभ है — लोभरूपी शत्रु नष्ट हो जाता है। आशारूपी राक्षसी मर जाती है। संतोषादिक अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं । राज्यादिक संपदायें प्राप्त होती हैं। अनेक धर्मात्मा देव उसकी परीक्षा और सहायता करनेमें सदा उद्यत रहते हैं।

१११ । यदि परिग्रहका परिमाण नहीं किया जाय तो क्या हानि होती है — काम क्रोध मोह लोभ आदि धर्मको चुरानेवाले शत्रु अतिशय उत्तेजित हो जाते हैं। उनकी निंदा ससारभरमें फैल जाती है और आशा भी इस संपूर्ण जगतको उदरस्थ करलेना चाहती है। परिग्रहका परिमाण न करनेसे यह प्राणी लोभ और आशाके फंदेमें फँसकर ऐसे ऐसे घोर पाप करता है जो कि केवल नरकके ही कारण होते हैं।

११२ । गुणव्रत कौन २ हैं — दिग्विरति, अनर्थदंडविरति और भोगोपभोगपरिमाण ये तीन गुणव्रत हैं। ये गुणव्रत अणुव्रतोंको बढ़ानेवाले तथा धर्मकी वृद्धि करनेवाले हैं।

जिनके साथ लेन देनका कोई व्यवहार नहीं है, कोई संबंध नहीं है उन्हें हिंसाके साधनभूत तलवार बरछी आदि हिंसा के उपकरण देना हिंसादान कहा जाता है । ३ विना प्रयो- जन पृथिवी खोदना पानी फैलाना छोटे२ वृक्ष तोड़ना इधर उधर घूमना आदि प्रमादचर्या कहलाता है । ४ काम क्रोध मोह लोभ रागद्वेष आदि अशुभ परिणामोंको उत्पन्न करने वाले शास्त्रोंको सुनना दुःश्रुति अनर्थदंड कहलाता है । ५ यह बीमार होजाय, वह मरजाय, इसकी चोरी होजाय इत्या दि अन्यके बुरे चिन्तवन करनेको अपध्यान कहते हैं । इन उपर्युक्त पांचों अनर्थदंडोंका त्याग करना ही अनर्थदंडविरति नामका दूसरा गुणव्रत कहलाता है।

११४ । भोगोपभोगपरिमाण गुणव्रत क्या है ?—इंद्रियोंकोनि ग्रह करनेके लिये भोजन पान आदि भोग करनेके पदार्थो- का तथा वस्त्र आभूषण स्त्री आदि उपभोग करनेके पदार्थोंका परिमाण करना भोगोपभोगसंख्यानव्रत कहलाता है। यह प- रिमाण दो प्रकारसे किया जाता है यमरूपसे तथा नियमरूप से। किसी वस्तुका जन्मपर्यंत त्याग करदेना यम कहलाता है और किसी वस्तुको वर्ष दो वर्ष आदि नियत समय तक त्यागदेना अथवा किसी वस्तुको वर्ष दो वर्ष आदि नियत स- मय तक खाने पहरने आदिका संकल्प कर उसके सिवे स- र्वथा त्याग इनका संकल्प करना नियम कहा जाता है। भो

जन पान आदि जो एकवार भोगनेमें आवें वे भोग करने की सामिग्री कहलाती हैं और वस्त्र आभूषण आदि पदार्थ जो बार २ भोगनेमें आवें उन्हें उपभोग कहते हैं। कंदमूलादि ऐसे अभक्ष्य और सर्वथा त्याज्य पदार्थोंका कि जिनके सेवन करनेसे हिंसा विशेष होती है और प्रयोजन तुच्छ सिद्ध होता हो, यमरूप त्याग किया जाता है और भोजन पान वस्त्राभूषणादि सेव्य पदार्थोंका नियम किया जाता है।

११६। भोगोपभोगपरिमाणव्रत धारण करनेसे क्या लाभ होता है जो इंद्रियां धर्मरूपी रत्नको चुरानेवाली हैं वे सब वश हो जाती हैं, मन वश हो जाता है, इंद्रियां और मन वश हो जानेसे अनेक पाप होने रुक जाते हैं, अनेकप्रकारकी संपदायें प्राप्त हो जातीं हैं और धर्मको बढानेवाले तथा पापों को नाश करनेवाले जितेंद्रियादिक अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं।

११७। जो मनुष्य भोगोपभोग वस्तुओंका परिमाण नहीं करते हैं वे कैसे हैं —वे पशुओंके समान हैं। जैसे पशुओंके भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ विचार नहीं है जो सामने आता है वही वे खा जाते हैं। ठीक इसीप्रकारके भोगोपभोग वस्तुओंका परिमाण न करनेवाले लोग हैं। इनके भी भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ विचार नहीं रहता है।

११८। अभक्ष्य कौन २ हैं —कंदमूल सब अभक्ष्य हैं। जि-

न फलोंमें वा जिस शाकमें कीड़े पड़गये हों अथवा कीड़ोंके रहनेकी संभावना हो वे सब फल और शाक अभक्ष्य हैं। फूल सब अभक्ष्य हैं। मक्खन नवनीत भी अभक्ष्य है। पूड़ी आदि पक्वान्न बननेसे चौबीस घंटे बाद अभक्ष्य हो जाते हैं इनके सिवाय जो प्रकृतिविरुद्ध अथवा हानि पहुंचानेवाले पदार्थ हैं तथा जो शास्त्रविरुद्ध पदार्थ हैं वे सब अभक्ष्य हैं।

११९। कंदमूलोंके भक्षण करनेमें क्या दोष है — तिलमात्र भी कंदमूल खानेमें अनंत जीवोंका घात होता है उनमें अनंत निगोदिया जीव होते हैं इसलिये कंदमूल खानेसे नरक लेजानेवाला पाप उत्पन्न होता है।

१२०। कंदमूलमें अनंत जीव हैं यह कैसे जाना जाता है— कंदमूलके टुकड़े २ कर बोदिये जायं तब भी वे उपज आते हैं। इनसे स्पष्ट जाना जाता है कि उनमें अनंत जीव हैं गेहूं जौ मटर आदि टुकड़े करके बोदेनेसे उत्पन्न नहीं होते क्योंकि उनके एक दानेमें एक ही जीवकी शक्ति है। यदि कंदमूलमें एक ही जीव होता तो वे साबुत बोनेसे ही उत्पन्न होते। टुकड़े २ कर बो देनेसे कभी उत्पन्न नहीं होते परंतु वे टुकड़े २ करके बो देनेपर भी उत्पन्न होते हैं। इसलिये जानते हैं कि उनमें अनंत जीव हैं।

१२१। शिक्षाव्रत कौन २ हैं—देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग।

१२२। देशावकाशिक किसे कहते हैं—जन्मपर्यंत दिशाओंकी मर्यादाकर पहले जो दिग्विरति नामका व्रत ग्रहण किया था उसके भीतर २ घंटे दो घंटेकेलिये वा एक दिन दो दिनके लिये अथवा महीने दो महीनेके लिये गांव घर खेत आदिकी सीमा नियत करके उसके भीतर ही रहना देशावकाशिक व्रत कहलाता है। जैसे जिस पुरुषने जन्मभरके लिये उत्तरमें हिमालय दक्षिणमें मदरास पश्चिममें करांची और पूर्वमें कलकत्ताकी सीमा नियत करली है वह यदि किसी एकदिन जिनालयमें ही रहनेकी प्रतिज्ञा करले अथवा महीने,दो महीने,चार महीने तक किसी एक शहरमें ही रहनेकी प्रतिज्ञा करले या आस पासके दो चार गांवोंमें आनेजानेकी प्रतिज्ञा करले तो उसके उस नियत समयतक देशावकाशिकव्रत गिना जायगा। इस व्रतके पालन करनेका अभिप्राय यह है कि नियत समयतक नियत सीमाके बाहर उसके द्वारा किसी प्रकारका कोई भी पाप उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये यह व्रत पापका नाश करनेवाला है और पुण्यको बढ़ानेवाला है।

१२३। देशावकाशिकव्रतसे क्या लाभ होता है — लोभ दूर हो जाता है, हिंसादिक पापोंका निरोध हो जाता है, संतोषादिक अनेक गुण और अनेक कल्याण प्रगट हो जाते हैं तथा सद्धर्मकी प्राप्ति होती है।

१२४। सामायिक किसे कहते हैं —संपूर्ण प्राणियोंमें समतारूप परिणाम रखना तथा सुखदुखमें, शत्रुमित्रमें, निंदास्तुतिमें, तृणकंचनमें, पाषाण रत्नमें और कमरकीचड़में तथा इसीप्रकारके और और भी विरुद्ध अविरुद्ध पदार्थोंमें समतारूप परिणाम रखना और संयम धारण करनेमें सदा शुभरूप भावना रखना सामायिक कहलाता है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी तथा मुनियोंका प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल ऐसे तीनोंसमय तथा गृहस्थोंका प्रातःकाल और सायंकाल इन दोनों समय किसी एकांतस्थानमें अथवा एकांत चैत्यालयादिकमें नियतसमय तक हिंसादिक पापोंका त्याग करना तथा संपूर्ण पदार्थोंमें समतारूप परिणाम रखना सामायिक कहा जाता है।

१२५। सामायिक करनेसे क्या लाभ है —सामयिक करनेसे संवर होता है निर्जरा होती है उत्तमध्यान और धर्मकी प्राप्ति होती है इसके सिवाय परलोकमें ग्रैवेयकादि उत्तमस्वर्ग सुखोंकी प्राप्ति होती है।

१२६। प्रोषधोपवास कब और कैसे किया जाता है — एक महीनेमें दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ऐसे चार पर्व होते हैं। प्रत्येक पर्वमें चारोंप्रकारके आहारका त्याग करना तथा रोजगार व्यापार आदि घरके सब काम छोड़कर चैत्यालयादि एकांतस्थानमें धर्मध्यानपूर्वक रहना प्रोषधोपवास कहलाता है।

१२२ । देशावकाशिक किसे कहते हैं —जन्मपर्यंत दिशाओंकी मर्यादाकर पहले जो दिग्विरति नामका व्रत ग्रहण किया था उसके भीतर २ घंटे दो घंटेकेलिये वा एक दिन दो दिनके लिये अथवा महीने दो महीनेके लिये गांव घर खेत आदिकी सीमा नियत करके उसके भीतर ही रहना देशावकाशिक व्रत कहलाता है। जैसे जिस पुरुषने जन्मभरके लिये उत्तरमें हिमालय दक्षिणमें मदरास पश्चिममें करांची और पूर्वमें कलकत्ताकी सीमा नियत करली है वह यदि किसी एकदिन जिनालयमें ही रहनेकी प्रतिज्ञा करले अथवा महीने,दो महीने,चार महीने तक किसी एक शहरमें ही रहने की प्रतिज्ञा करले या आस पासके दो चार गांवोंमें आनेजानेकी प्रतिज्ञा करले तो उसके उस नियत समयतक देशावकाशिकव्रत गिना जायगा। इस व्रतके पालन करनेका अभिप्राय यह है कि नियत समयतक नियत सीमाके बाहर उसके द्वारा किसी प्रकारका कोई भी पाप उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये यह व्रत पापका नाश करनेवाला है और पुण्यको बढ़ानेवाला है।

१२३ । देशावकाशिकव्रतसे क्या लाभ होता है — लोभ दूर हो जाता है, हिंसादिक पापोंका निरोध हो जाता है, संतोषादिक अनेक गुण और अनेक कल्याण प्रगट हो जाते हैं तथा सद्धर्मकी प्राप्ति होती है।

१२४। सामायिक किसे कहते हैं—संपूर्ण प्राणियोंमें समतारूप परिणाम रखना तथा सुखदुःखमें, शत्रुमित्रमें, निंदास्तुतिमें, तृणकंचनमें, पाषाण रत्नमें और केसरकी-चड़में तथा इसीप्रकारके और और भी विरुद्ध अविरुद्ध पदार्थोंमें समतारूप परिणाम रखना और संयम धारण करनेमें सदा शुभरूप भावना रखना सामायिक कहलाता है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी तथा मुनियोंका प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल ऐसे तीनोंसमय तथा गृहस्थोंका प्रातःकाल और सायंकाल इन दोनों समय किसी एकांतस्थानमें अथवा एकांत चैत्यालयादिकमें नियतसमय तक हिंसादिक पापोंका त्याग करना तथा संपूर्ण पदार्थोंमें समतारूप परिणाम रखना सामायिक कहा जाता है।

१२५। सामायिक करनेसे क्या लाभ है—सामयिक करनेसे संवर होता है निर्जरा होती है उत्तमध्यान और धर्मकी प्राप्ति होती है इसके सिवाय परलोकमें ग्रैवेयकादि उत्तमस्वर्ग सुखोंकी प्राप्ति होती है।

१२६। प्रोषधोपवास कब और कैसे किया जाता है—एक महीनेमें दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ऐसे चार पर्व होते हैं। प्रत्येक पर्वमें चारोंप्रकारके आहारका त्याग करना तथा भोजन व्यापार आदि घरके सब काम छोड़कर चैत्यालयादि एकांतस्थानमें धर्मध्यानपूर्वक रहना प्रोषधोपवास कहलाता है।

एकाशनको (एकबार भोजन करनेको) प्रोपध और आहार-त्याग करनेको उपवास कहते हैं। जिसे अष्टमीको प्रोपधोपवास करना है वह सप्तमीको मध्याह्नमें एकाशन करके उसी समयसे आहार पानी आरंभादिक त्याग करदेगा। दिनके शेष दो पहर धर्मध्यान पूर्वक व्यतीत करेगा। स्वाध्याय और बारह भावनाओंका चिंतवनकर रात्रि व्यतीत करेगा। यदि निद्रा अधिक सतावेगी तो मध्यरात्रिके पीछे किसी एकांत स्थानमें शुद्धसंस्तर बिछाकर स्वल्प निद्रा लेगा। प्रातःकाल ही उठकर सामायिक आदि नित्य क्रियायें करके अचित्तद्रव्यसे श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करेगा। फिर दिनका शेपभाग स्वाध्यायादिकसे व्यतीतकर रात्रिको पूर्वरात्रिके समान व्यतीत करेगा। नवमीको प्रातःकाल ही उठकर नित्यक्रियायें और श्रीजिनेंद्रकी पूजा करके मध्याह्नमें एकाशन करेगा। इसके बाद फिर आरंभादिकमें प्रवृत्त होजायगा। इसप्रकार सोलह पहर संयमपूर्वक रहनेसे एक प्रोपधोपवास होता है। यही व्रत यदि बारह पहरका किया जाय तो मध्यम उपवास कहलाता है। सप्तमीको रात्रिके चार पहर, अष्टमीके दिनके चार पहर और रातके चार पहर ऐसे बारह पहर गिने जाते हैं। यदि अष्टमीके दिन केवल उष्णजल ग्रहण करलिया जाय तो यह व्रत अनुपवास कहलाता है। इसी अनुपवास

१ अन्य दिनोंमें पुष्पफलादिक सचित्तद्रव्योंसे भी पूजा की जा सकती है।

के आचाम्ल एकाशन आदि अनेक भेद हैं। थोड़ासा भात मिलाकर माड पीनेको आचाम्ल कहते हैं। और एकबार भोजन करनेको एकाशन कहते हैं। इन सबमें आरंभादिकका त्याग अवश्य होना चाहिये।

१२७। अष्टमीके दिन उपवास करनेसे क्या लाभ है —अष्ट कर्मोंका नाश होकर अष्टम पृथिवीकी संपदा अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है।

१२८। चतुर्दशीके दिन उपवास करनेसे क्या लाभ है —चौदह गुणस्थानोंकी प्राप्ति और सिद्धवधूका समागम होना आदि।

१२९। अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वके दिनोंमें भोजन करनेसे क्या हानि होती है —भवभवमें दरिद्रता, अनेक रोगोंकी उत्पत्ति और नरकादिक दुर्गति।

१३०। दानके कितने भेद हैं —चार हैं आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान और वसतिकादान।

१३१। आहारदान करनेसे क्या फल मिलता है —यदि मिथ्या दृष्टि भद्रपुरुष आहारदान करें तो उन्हें प्रथम तो उत्तम भोग भूमिके सुख प्राप्त होते हैं जहां वे कल्पवृक्षोंके द्वारा अनेक प्रकारके सुख भोगते रहते हैं और तीन पल्यकी उनकी आयु होती है। वहांकी आयु समाप्त कर नियमसे वे देव होते हैं। यदि दान करनेवाले सम्यग्दृष्टि हों तो उन्हें सोलहवें स्वर्ग

पर्यंत ऐसे २ सुख मिलते हैं जो वर्णनातीत हैं ।

१३२ । औषधदानसे क्या लाभ होता है—इस भवमें किसी प्रकार के रोग क्लेशादिक नहीं होने पाते, तथा परभवमें स्वर्गादिक का सुंदर-दिव्य शरीर प्राप्त होता है ।

१३३ । शास्त्रदानसे क्या लाभ होता है —संपूर्ण आगमका ज्ञान हो जाता है । तथा श्रुतज्ञान और केवलज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है ।

१३४ । मुनियोंके लिये वसतिकादान देनेसे क्या फल मिलता है — जो वसतिकादान देते हैं उन्हें स्वर्गलोकमें विमानोंके भीतर नाना प्रकारके रत्नोंके बने हुये अनेक प्रासाद (बड़े २ महल) प्राप्त होते हैं ।

१३५ । किसप्रकार दान देनेसे महत् पुण्यकी प्राप्ति होती है— भक्तिपूर्वक दान देनेसे । वह भक्ति नौ प्रकार है । प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजन, प्रणाम, मनशुद्धि, वचन शुद्धिं, कायशुद्धिं, और आहारशुद्धि, मुनियोंके आहार क-रनेका समय प्रायः नियत है और वह प्रायःनौसै ग्यारह और एकसे चार बजे तक है । मुनिलोग आहारलेनेके लिये प्रायः इसी समय विहार किया करते हैं । जिस गृहस्थको आहार देना होता है वह इसी समय मुनिकी प्रतीक्षा करता हुआ

---

१ शहर या बस्तीसे बाहर मुनियोंके रहनेकेलिये जो धर्मशालायें बनवाई जाती है उन्हें वसतिका कहते हैं ।

दरवाजे पर खड़ा रहता है। जब मुनि दरवाजेके सामने आते हैं तब वह गृहस्थ "प्रसीद अत्र तिष्ट २ शुद्धमाहारं वर्त्तते" अर्थात् "आहार पानी शुद्ध है कृपाकर यहां ही विराजिये" यह वाक्य कहता है इसी प्रार्थनाको प्रतिग्रह कहते हैं। जब मुनि उसकी प्रार्थना स्वीकारकर उसके घर आते हैं तब वह उन्हें किसी ऊंचे काष्ठासनपर विराजमान करता है। इसे उच्चस्थान कहते हैं। तदनंतर वह गृहस्थ उनके चरणकमलों-का प्रक्षालन करता है। वह पादप्रक्षालन कहलाता है। पश्चात् वह उनकी पूजन करता है उन्हें प्रणाम करता है और मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक शुद्ध आहार देता है। यही नवधा भक्ति कहलाती है।

१३६। दान देनेवालेमें कौन २ गुण होने चाहिये —श्रद्धा संतोष निर्लोभता भक्ति विज्ञान दया और क्षमा ये सात गुण होने चाहिये।

१३७। कौनसे सज्जन दान करनेकेलिये उत्तमपात्र कहे जाते हैं— ऐसे मुनींद्र ही उत्तम पात्र गिने जाते हैं जो रत्नत्रयमे विभूषित हैं, जितेंद्रिय हैं घोर तपस्वी और संसार मात्रका हित करनेवाले हैं, जो योग धारण करनेमें तथा मोक्षमार्गमें सदा लीन रहते हैं, जो आहारादिकके मिलने तथा न मिलनेमें सदृश ही संतुष्ट रहते हैं और जो दान देनेवालोंको संसारसमुद्रसे पार कर देते हैं।

१३८। मध्यमपात्र कौन हैं—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को धारण करनेवाले तथा मूलगुण अणुव्रत और ग्यारहप्रतिमाओंको पालन करनेवाले सुशील श्रावक ही मध्यमपात्र गिने जाते हैं।

१३९। जघन्यपात्र कौन कहलाते हैं—केवल सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेव और निर्ग्रंथगुरुके भक्तजन।

१४०। कुपात्र कौन हैं—जो तप व्रत सहित संयमी तो हैं परंतु सम्यग्दर्शनसे रहित हैं ऐसे द्रव्यलिंगी कुपात्र गिने जाते हैं।

१४१। अपात्र किन्हें कहते हैं—जो सम्यग्दर्शनव्रत तप आदि सबसे रहित हैं, कुशील हैं, धर्मरहित हैं, निरंतर पाप कर्मोंको करनेवाले हैं ऐसे जगतनिंद्य अपात्र कहे जाते हैं।

१४२। कुपात्रको दान करनेसे क्या फल मिलता है—कुपात्र को दान करनेवाले भोग भूमिमें तिर्यंच होते हैं अथवा कुभोग भूमिमें कुत्सित मनुष्य होते हैं।

१४३। म्लेच्छादिक नीच मनुष्योंके घर जो धन धान्यादिक संपदा होती है वह किस पुण्यसे होती है—कुपात्र को दान करने से। परंतु वह संपदा अंतमें नरक ले जानेवाली होती है।

१४४। किसी २ हाथी घोड़े आदि जानवरोंको उत्तम भोजन मिला करता है वह किस पुण्यसे— कुपात्रको दान करनेसे।

१४५। अपात्रको दान करना क्यों बुरा है—अपात्रके साथ

संबंध होनेसे अनेक पाप बन पड़ते हैं धन धान्यादिक सब नष्ट हो जाते हैं, और चिरकाल तक अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

१४६। सुपात्रदान और अपात्रदानके फलमें जो अंतर पड़ता है उसका क्या उदाहरण है—स्वाति नक्षत्रमें जो वर्षा होती है यदि उसका जल सीपमें पड़े तो वह मोती होजाता है। यदि वही जल सर्पके मुखमें पड़े तो विष हो जाता है। अथवा अच्छी भूमिपर बोये हुये वृक्षपर अच्छे फल लगते हैं और बुरी भूमिपर बोये हुये वृक्षपर बुरे फल लगते हैं ठीक इसी प्रकार सुपात्रको देनेसे अच्छा फल मिलता है, और अपात्र को देनेसे बुरा फल मिलता।

१४७। कुदान कौन हैं—कन्या,हाथी,सुवर्ण,घोड़ा,गाय, दासी, तिल रथ, पृथिवी और घर इनका दान देना दश कुदान कहे जाते हैं। कुदान देना बहुत बुरा है। इनसे प्रायः हिंसा ही बढती है तथा संसाररूप समुद्रमें निरंतर परिभ्रमण करना पड़ता है।

१४८। किस पापीने इन कुदानोंका उपदेश दिया था—भूतशर्मा ब्राह्मणने और वह उपदेश भी केवल मूर्ख लोगों को ठगनेकेलिये दिया गया था।

१४९। इससे उसे क्या फल मिला—इससे वह सातवें नरक गया, और वहाँसे निकल कर भी उसे अनंतसंसार परिभ्रमण

करना पड़ेगा।

१५० । हे भगवन् धन किस काममें लगाना चाहिये-केवल धर्मवृद्धिके लिये सात सुक्षेत्रोंमें।

१५१ । वे कौन कौनसे सात क्षेत्र (स्थान) हैं- १ चैत्यालय २ अरहंतदेवकी प्रतिमा ३ चारप्रकारका संघ ४ मुनिसमूह ५ शास्त्रभंडार ६ जिनपूजा और ७ जिनप्रतिष्ठा ये सात क्षेत्र है। इनमें दान करनेसे आतिशय पुण्यकी वृद्धि होती है।

१५२ । जिनालय निर्माण करानेसे कैसा पुण्य होता है— प्रत्येक जिनालयमें पुण्योपार्जनकेलिये अनेक भव्यजन आते हैं उनमेंसे कोई स्तुति करता है कोई प्रणाम करता है कोई भक्ति ही करता है कोई अभिषेक करता है। कोई भगवानकी शांतमुद्रा ही देखता है। कोई छत्र कोई चमर और कोई पूजनकी सामिग्री लाता है। कोई भजन गाता है कोई नृत्य करता है। कोई सजावट ही करता है। कोई २ एकांतमें बैठकर बारह भावनाओंका चिंतवन ही करते हैं। कोई शास्त्र बांचता है कोई सुनता है। कोई स्वाध्याय करते हैं। कहां तक कहाजाय जिनालयके होनेसे अनेक भव्यजन प्रतिदिन पुण्योपार्जन करते हैं।

१५३ । जिनालय निर्माण करानेसे जो पुण्य होता है वह कितने दिन ठहरता है— एक कोड़ाकोड़ी सागर तक।

१५४ । जिनालय निर्माण करानेवालेको कौनसी गति प्राप्त होती है

जैसे शिलावट ज्यों ज्यों जिनालयका शिखर बनाता जाता है त्यों त्यों ऊंचा चढ़ता जाता है। उसीप्रकार जिनालय निर्माण करानेवाला भी स्वर्गादिकोंके सुख तथा तीर्थकरोंके अद्भुत सुख भोगता हुआ मोक्षपर्यंत जाता है।

१५५। कौनसा कार्य करनेसे अनेकजनोंका उपकार होता है—जिनालय निर्माण करानेसे।

१५६। अपने घर प्रतिमा विराजमान करना कैसा है- अति उत्तम और पुण्यप्रद है। क्योंकि घरमें प्रतिमा विराजमान होनेसे प्रतिदिन पूजा, स्तुति, ध्यान, प्रणाम, अभिषेक आदि करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। प्रतिदिन अनेकप्रकारसे धर्मध्यान हो सकता है।

१५७। जिस घरमें प्रतिमा विराजमान नहीं है वह कैसा है—वह घर अतिशय निंद्य और स्मशानके समान निरंतर पाप उत्पन्न करनेवाला है। क्योंकि घरमें नित्य हिंसादिक पाप होते हैं यदि पुण्योपार्जनका कोई साधन न हो तो वह घर अवश्य स्मशानके समान है।

१५८। श्रावकोंका कुल किस उपायसे सदा बढ़ता हुआ कायम रह सकता है— जिनबिंबादिके स्थापन करनेसे ही उनका कुल प्रसिद्ध और चिरजीवी रह सकता है।

१५९। जिस घरमें प्रतिमा नहीं है उसमें रहनेवाले मनुष्य कैसे हो जाते हैं—जिनधर्मसे पराङ्मुख मिथ्यादृष्टी और अतिशय दुःखी।

१६० । महायज्ञ किसे कहते हैं — मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका आदि सब लोग मिलकर बड़ी भक्ति बड़ी विभूति और बड़े उत्सवके साथ श्रीजिनेंद्रदेवकी प्रतिमा बनवाकर उसकी जो प्रतिष्ठा करते हैं वही महायज्ञ कहलाता है। यह महायज्ञ अतिशय पुण्यप्रद है और केवल धर्मवृद्धिकेलिये ही किया जाता है।

१६१ । प्रतिष्ठा करानेसे क्या लाभ होता है— जैनधर्मकी प्रसिद्धि और वृद्धि होती है। लोगोंपर जैनमतका अच्छा प्रभाव पड़ता है। अनेक मिथ्यादृष्टियोंको जिनधर्मकी श्रद्धा होजाती है। अनेक सज्जनोंका उपकार होता है धनधान्यादिककी प्राप्ति होती है। प्रतिमाकी स्थापना हो जाती है तथा प्रतिष्ठा करानेवालेकी संसारमें कीर्ति फैल जाती है।

१६२ । प्रतिष्ठा करानेवाले सम्यग्दृष्टियोंको कितना पुण्य होता है वह इतना पुण्य होता है कि जिससे यह तीनों जगत क्षुब्ध हो जाय तथा श्रीजिनेंद्रदेवके होनेवाली समवसरणादिक विभूति मिल सके।

१६३ । नित्ययज्ञ किसे कहते हैं-अनेक दयालु और बुद्धिमान जन प्रतिदिन जिनालयमें आकर अपनी २ शक्तिके अनुसार जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल इन अष्टद्रव्योंसे बड़ी भक्तिपूर्वक जो श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करते हैं वही नित्ययज्ञ कहलाता है। यह नित्ययज्ञ इंद्र

चक्रवर्ती आदिकी विभूति देनेवाला है और कल्याणार्थ ही किया जाता है।

१६४। श्री जिनेंद्रदेवकी पूजा करनेसे क्या लाभ होता है— उत्तम २ सुख और संपदायें प्राप्त होती हैं, संसारके संपूर्ण अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं, विघ्न और दुःख सब क्षय हो जाते हैं, पाप सब दूर भाग जाते हैं, परम कल्याण स्वर्ग तथा मोक्ष सब सामने आ खड़े होते हैं और रोग क्लेश उपसर्ग आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

१६५। श्रीजिनेंद्रदेवकी प्रतिमा और उसकी पूजा करना दोनों ही अचेतन हैं इनसे संपदादिककी प्राप्ति कैसे हो सकती है— जैसे कल्पवृक्ष चिंतामणि और निधि आदि अचेतन होकर भी अनेक भोगोपभोगकी सामिग्री देता है उसीप्रकार श्रीजिनेंद्रदेवकी प्रतिमा और उसकी पूजन भी सज्जनोंको इस भव और परभवमें कल्याणप्रद होती है।

१६६। श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजन करना एक क्रिया है जोकि अचेतन है वह भला रोग और विघ्नोंको कैसे दूर कर सकती है— जैसे मणि मंत्र और औषधादिक अचेतन होकर भी रोग और विषादिकोंको दूर कर देते हैं उसीप्रकार श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजन भी संपूर्ण रोग क्लेश दुःख विघ्न और अनिष्टादिक दूर कर देती है क्योंकि पूजन करनेसे पुण्य होता है और पुण्योदयसे रोगादिक सब नष्ट हो जाते हैं।

१६७। किन २ कार्योंमें श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजन प्रथम करना

दिनोंकी अथवा घंटे दो घंटे आदि समयकी संख्या नियत करके।

१९१। यदि सर्वथा मृत्युके लक्षण प्रगट हो गये हों तो—क्रोध मोहादि अतरंग परिग्रह तथा घर स्त्री पुत्रादिक बाह्य समस्त परिग्रह छोड़ कर दीक्षा ग्रहण करलेना चाहिये।

१९२। संन्यासपूर्वक मृत्यु होनेसे क्या लाभ हैं—जो चरम शरीरी हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। जो चरमशरीरी नहीं हैं किंतु दीक्षित हैं वे इसी सल्लेखनाके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि तक जाते हैं और श्रावकजन इसीके प्रभावसे सोलहवें स्वर्गतक जाकर अनेकप्रकार के अच्छे २ सुखोंका अनुभव करते हैं।

१९३। तीसरी प्रतिमा कौनसी है—सामायिक। यह सामायिक शुद्ध मन वचन कायसे आदर सहित प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों समयोंमें किया जाता है। इसकी विधि यह है कि प्रथम ही सामायिक करनेवाला पूर्व दिशाकी ओर मुह करके खड़ा होकर तीन आवर्त्त और एक प्रणाम करे। आवर्तके समय 'ओंनमः सिद्धेभ्यः' यह मंत्र पढ़ता जाय। अनंतर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाकी ओर इसीप्रकार तीन २ आवर्त्त और एक २ प्रणाम करे। पश्चात् खड़े होकर अथवा बैठकर सामायिकपाठ, ध्यान, जप, स्तोत्र भावना आदिसे अपना सामयिकका नियत समय व्यतीत

१७४। कैसी अर्जिका श्रेष्ठ समझी जाती है—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान और व्रतोंसे विभूषित है, जिसने एक साड़ीके सिवाय संपूर्ण परिग्रहोंका त्याग कर दिया है ऐसी अर्जिका ही उत्तम गिनी जाती है।

१७५। वे श्रावक कैसे होने चाहिये जिन्हें दान दिया जा सके—सम्यग्दृष्टी, ज्ञानी, व्रती, और शीलवान्।

१७६। वे श्राविका कैसी होनी चाहिये जिन्हें दान दिया जा सके—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और व्रत सहित, शीलवती और धर्मकी जानकार।

१७७। इस चतुर्विध संघको दान देनेसे क्या फल होता है—स्वर्गोंके सुख देनेवाला पुण्य होता है, यह संसार उसके यश से परिपूरित हो जाता है, सदाचारकी वृद्धि होती है और भोगोपभोगकी संपदायें स्वयं आकर प्राप्त होती हैं।

१७८। इस जैनसंघमें भी मिथ्यादृष्टी कौन गिने जाते हैं—वे जो व्रती तो हैं परंतु सम्यग्दर्शनसे शून्य हैं।

१७९। धनाढ्योंका कौनसा धन सफल है—उपर्युक्त सात सुक्षेत्रोंमें दिया गया है वही धन सफल है।

१८०। यदि वह धन पृथ्वीमें भी गाड़ दिया जाय तब भी चोर राजा आदि अनेकजन उसके दावीदार हो जाते हैं अतएव वह कौनसी युक्ती है जिससे कोई भी उसे न ले सके—जिसने जिनालय बनवाकर उसमें प्रतिष्ठा करके बिंब स्थापन कर दिये समझलो कि उसकी वह लक्ष्मी जोकि जिनालय प्रतिष्ठा आदिमें लगी है

निश्चल हो गई। अब कोई कभी भी उसे नहीं ले सकता।

१८१। जो व्रती जीव धर्म मानकर कूआ बावड़ी आदि जलस्थान निर्माण कराते हैं उन्हें क्या फल और कैसी गति मिलती है— कूआ बावड़ी आदि बनाना महारंभ है इसमें अनेक जीवोंकी हिंसा होती है जिससे महापाप उत्पन्न होता है और मत्स्यादिक नीच तिर्यंच गति प्राप्त होती है।

१८२। वे नीच गतिको ही जाते हैं इसका कोई उदाहरण कहो- जैसे कूआ खोदनेवाला कूआ खोदता जाता है और क्रमशः नीचे पहुंचता जाता है इसीप्रकार कूआ खुदानेवाले पुरुष भी सप्तम नरकपर्यंत अधोगतिको ही प्राप्त होते हैं। क्योंकि कूआ खुदानेसे अनंत जीवोंकी हिंसा होती है और सदा होती रहती है।

१८३। कुक्षेत्र और कुपात्रोंको धन देना चाहिये या नहीं— नहीं। धनको किसी अंधकूपमें (जिसमें पानी न हो) फेंक देना अच्छा है परंतु कुक्षेत्र और कुपात्रको देना अच्छा नहीं क्योंकि कूएमें फेंक देनेसे वह धन केवल नष्ट हो जायगा परंतु कुपात्रादिकोंको देनेसे वह नरकका कारण होगा। तथा अनेक पापोंका जनक और बहुत आरंभका प्रवर्त्तक होगा।

१८४। ये ऊपर कहे हुये व्रतदानादि किस पुरुषके सफल और उत्तम माने जाते हैं—अंत समयमें सल्लेखना करनेवालेके।

१८५। सल्लेखनाके कितने भेद हैं—दो भेद हैं कषायसल्लेखना और शरीरसल्लेखना।

१८६। कषायसल्लेखना क्या है और वह किस प्रकार की जाती है—कृश करनेको सल्लेखना कहते हैं। कषायोंको कृश करना अर्थात् घटाना कषायसल्लेखना कहलाती है। यों तो कषायों-को घटना सर्वदा अच्छा है परंतु मरनेके समय अवश्य घटाना चाहिये। उस समय मित्र, शत्रु, कुटुंबीजन तथा अन्य लोगोंसे मीठे और प्रिय वचन कहकर क्षमा मांगना चाहिये तथा स्वयं राग द्वेष मोह मत्सर आदि सब छोड़कर सरलपरिणामोंसे सबको क्षमा कर देना चाहिये।

१८७। शरीरसल्लेखना कैसे की जाती है—प्रथम ही थोड़ा थोड़ा करके आहार घटावे, आहार छोड़ कर दूध ग्रहण करे। इसीप्रकारसे आहार पानी छोड़ कर उपवास करे। इसप्रकार धीरे २ शरीर कृप करना शरीरसल्लेखना कही जाती है।

१८८। समाधिमरणकेलिये यह सल्लेखना कब करनी चाहिये—जब प्राण संकटमें आजाय बिलकुल मरनेकी संभावना हो ऐसे किसी उपसर्गके आजानेपर दुर्भिक्ष पड़ जानेपर अथवा असाध्य बुढापेमें वा किसी असाध्यरोगमें, सर्पके काट जाने पर अथवा किसी व्रतके भंग होजानेपर अथवा और भी किसी कारणसे मृत्यु सन्निकट होनेपर धीर वीर पुरुषोंको यह उत्तम सन्यास ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि यह सन्यास स्वर्गोंका प्रधान कारण है और परंपरा मोक्षका कारण है। अभिप्राय यह है—जैसे किसी घरमें आग लगजाय तो उस घरके स्वा

मियोंको उचित है कि वे प्रथम ही उस घरकी आग बुझाने का प्रयत्न करे यदि किसी तरह उस घरकी आग न बुझा सके तो अपनी कीमती वस्तुयें लेकर उस घरमेंसे निकल जांय। ठीक इसी प्रकार सन्यास मरण है। घरके समान यह शरीर है और उसका स्वामी यह आत्मा है। जब शरीरपर कोई आपत्ति आती है तब यह आत्मा अनेक उपायोंसे उसे निवारण करता है। यदि किसीप्रकार वह आपत्ति निवारण नहीं हो सकती और शरीर बिलकुल नष्ट होनेके सन्मुख हो जाता है तब यह आत्मा अपने रत्नत्रयादिक गुण लेकर इसमेंसे निकल जाता है। इसीको सन्यास मरण वा सल्लेखना कहते हैं।

१८९। जिस किसी उपसर्गादिकमें जीने मरने दोनोंका संदेह हो उसमें आहारपानीका त्याग किसप्रकार करना चाहिये—जब कभी सर्प काट ले अथवा और कोई ऐसा उपसर्ग आजाय जिसमें जीने मरने दोनोंका संदेह हो ऐसे समयमें सन्यास भी दो प्रकारसे लिया जाता है प्रथम यह कि यदि इस उपसर्गमें मेरी मृत्यु हो गई तो मेरे आहार पानीका सर्वथा त्याग है। द्वितीय-यदि मैं किसीप्रकार जी पड़ा तो पारणा ग्रहण करूंगा अथवा इतने समय तक मेरे आहारपानीका त्याग है यदि इतने समयसे आगे जीता रहा तो पारणा ले सकता हूँ।

१९०। रोगियोंको किसप्रकार सन्यास ग्रहण करना चाहिये—

दिनोंकी अथवा घंटे दो घंटे आदि समयकी संख्या नियत करके।

१८१। यदि सर्वथा मृत्युके लक्षण प्रगट हो गये हों तो — क्रोध मोहादि अतरंग परिग्रह तथा घर स्त्री पुत्रादिक बाह्य समस्त परिग्रह छोड़ कर दीक्षा ग्रहण करलेना चाहिये।

१८२। सन्यासपूर्वक मृत्यु होनेसे क्या लाभ है —जो चरम शरीरी हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। जो चरमशरीरी नहीं हैं किन्तु दीक्षित हैं वे इसी सल्लेखनाके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि तक जाते हैं और श्रावकजन इसीके प्रभावसे सोलहवें स्वर्गतक जाकर अनेकप्रकार के अच्छे २ सुखोंका अनुभव करते हैं।

१८३। तीसरी प्रतिमा कौनसी है — सामायिक। यह सामायिक शुद्ध मन वचन कायसे आदर सहित प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों समयोंमें किया जाता है। इसकी विधि यह है कि प्रथम ही सामायिक करनेवाला पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके खड़ा होकर तीन आवर्त्त और एक प्रणाम करे। आवर्तके समय 'ओंनमः सिद्धेभ्यः' यह मंत्र पढ़ना जाय। अनंतर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाकी ओर इसीप्रकार तीन २ आवर्त्त और एक २ प्रणाम करे। पश्चात् खड़े होकर अथवा बैठकर सामायिकपाठ, ध्यान, जप, स्तोत्र भावना आदिसे अपना सामयिकका नियत समय व्यतीत

कर अंतमें चारों दिशाओंकी ओर एक२ प्रणाम करके सामायिक समाप्त करे। इस सामायिकका उत्कृष्टसमय छः घड़ी[1] मध्यम चार और जघन्य दो घड़ी है। इस पूर्ण विधि सहित निरतिचार सामायिक करनेवालेके तीसरी प्रतिमा कही जाती है।

१९४। चौथी प्रतिमा किसे कहते हैं—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको नियमपूर्वक निरतिचार प्रोषधोपवास करना चौथी प्रतिमा कहलाती है।

१९५। पांचवीं प्रतिमा किसे कहते हैं—संपूर्ण सचित्त वस्तुओंका त्याग करना सचित्तत्याग पांचवीं प्रतिमा कहलाती है।

१९६। सचित्त शब्दसे क्या अभिप्राय है—जीवके प्रदेशोंसे उत्पन्न हुई चेतनाको चित्त कहते हैं और चित्तसहित जो वस्तु है वह सचित्त कहलाती है। जिसमें चेतनाके कुछ भी अंश पाये जायं उसे सचित्त कहते हैं।

१९७। कौन २ वस्तु सचित्त कहलाती हैं—तिल, जीरा, संपूर्ण जातिके अनाज और बीज, फल पत्ते, कंद, मूल, तज, प्रवाल तथा संपूर्ण जातिकी वनस्पति अप्रासुक जल आदि सब सचित्त कहलाती हैं।

१९८। सचित्तत्यागसे क्या लाभ है—चित्त दयालु हो जाता है। दयालु चित्त होनेसे सर्वोत्तम अहिंसाधर्मकी प्राप्ति होती

[1] एक घड़ी २४ मिनटकी होती है।

है और धर्मकी प्राप्ति होनेसे स्वर्गादिकके सुख मिलते हैं। तथा क्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

१९९। सचित्त भक्षण करनेसे क्या हानि होती है—चित्त निर्दयी हो जाता है। चित्त निर्दयी हो जानेसे बड़े २ हिंसादिक पाप उत्पन्न होते हैं और फिर उन पापोंके फलसे नरकादिकोंमें घोर दुःख सहने पड़ते हैं।

२००। छठी प्रतिमाका क्या स्वरूप है—रात्रिमें चारों प्रकारके आहारका त्याग करना तथा दिनमें मैथुनमात्रका त्याग करना सो छठी रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा कहलाती है।

२०१। रात्रिमें पानी आदि संपूर्ण आहारोंके त्याग करनेमें क्या लाभ है—एक महीनेमें पंद्रह उपवास करनेका उत्कृष्ट फल मिलता है अर्थात् यदि एक महीने रात्रिभोजनत्याग किया जाय तो उससे पंद्रह दिन उपवास करनेके बराबर फल मिलता है।

२०२। रात्रिमें पानी पीने और भोजन करनेमें क्या दोष है—रात्रिमें कीड़ोंका संचार विशेष बढ़ जाता है। यदि प्रकाश हो तो कीड़ोंकी बहुलता और भी बढ़जाती है और वे कीड़े इतने सूक्ष्म होते हैं कि भोजनकी सामिग्रीमें मिलजानेसे कभी दिखाई नहीं पड सकते। इसलिये जो लोग रात्रिमें भोजन पान करते हैं उन्हें मांस खानेका दोष अवश्य लगता है। क्योंकि भोजन पानकी सामिग्रीमें मिले हुये उन कीड़ोंको

वे लोग किसीप्रकार भी बचा नहीं सकते।

२३। जो लोग रात्रिभोजन सदा करते रहते हैं वे दूसरे जन्ममें ऐसे हो जाते हैं—अंधे, निर्धन, दीन, विकलांग, कुष्टी, बहरे, नीच अकुलीन, रोगी और महा दुःखी होते हैं। यह रात्रिभोजन पाप ही ऐसा है कि इससे जन्म जन्म दुःख भोगना पड़ता है।

२४। रात्रिभोजन करनेवालोंको क्या कहना चाहिये—बिना सींगके पशु। क्योंकि पशु भी आठों पहर खाते रहते हैं और वे लोग भी आठों पहर खाते रहते हैं।

२५। दिनमें ब्रह्मचर्य पालन करनेसे क्या पुण्य होता है—जितने दिन जीवितव्य रहता है अर्थात् जितनेदिन दिनमें ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है उनके आधे दिन महाव्रत पालन करनेके समान दिनमें ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंको पुण्य होता है।

२६। कुलस्त्रियोंको दिनमें मैथुन करनेसे कैसा पाप होता है—दिनमें मैथुन करनेसे वह पाप और ऐसा तीव्र राग होता है जो कि सीधा नरकरूप महासागरमें पटक देता है।

२७। जघन्य श्रावक कौन कहे जाते हैं—जो शुद्ध मन वचन कायसे इन उपर्युक्त छह प्रतिमाओंको सदा पालन करते हैं, वे स्वर्गगामी (स्वर्ग जानेवाले) श्रावक जघन्य कहे जाते हैं।

यह है कि अर्हंत भगवान् भक्त भव्यजनोंको धर्मोपदेश देते हैं और वह धर्म स्वर्ग मोक्षादिका कारण है, अतएव उस धर्मको पालन करनेसे उन्हें स्वर्ग मोक्षादिके उत्तम सुख स्वयं प्राप्त होते हैं।

४८। इसका कोई प्रत्यक्ष उदाहरण कहिये — संसारमें श्री-जिनेंद्रदेवके भक्त जितने श्रावक हैं वे सब इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। क्योंकि वे सब भोगोपभोगोंकी संपदाओंसे विभूषित हैं। सब दान धर्ममें सदा तत्पर हैं। जब वे इस भवमें ही दुःखी नहीं हैं सदा सुखी हैं तो वे परभवमें भी दुःखी नहीं रह सकते अवश्य ही स्वर्गमोक्षके सुख भोगनेवाले होंगे।

४९। धर्मात्मा अकलंक तो न होवे कहां मिलेंगे इसलिये इनका कोई और प्रत्यक्ष उदाहरण कहिये—जो कोई साधारण मनुष्योंके आश्रय रहता है वह भी दुःखी नहीं होता फिर भला श्रीजिनेंद्रदेवके आश्रय रहकर कोई दुःखी रह सकता है? अर्थात् वह कभी दुःखी नहीं हो सकता।

५०। श्रीजिनेंद्रदेवके भक्तजनोंके और कौन २ उपद्रव शांत हो जाते हैं—धर्म और सुखके संपूर्ण विघ्न शांत हो जाते हैं, भय सब भाग जाते हैं राज्यसंबंधी वधबंधादिक विघ्न सब नष्ट हो जाते हैं। करोड़ों रोग, करोड़ों क्लेश सब जाते रहते हैं अर्हंत भगवानका ध्यान करनेमात्रसे बड़े २ सर्प तथा और भी क्रूर जीव सब शांत हो जाते हैं। जो श्रीजिनेंद्रदेवके अ-

श्रित हैं उन्हें कोई क्षुद्रदेव नहीं सता सकते न वे उनका तिरस्कार ही कर सकते हैं क्रूर ग्रह भी उन्हें कभी किसीप्रकार की पीड़ा नहीं दे सकते हैं।

२४५। श्रीजिनेंद्रदेवका यह इतना बड़ा माहात्म्य संसारमें कैसे जाना जाता है-श्रीजिनेंद्रदेवके चरणकमल सेवन करनेवाले श्रावक प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अर्थात् वे सदा सुखी और निर्विघ्न निरुपद्रव देखे जाते हैं इसीसे श्रीजिनेंद्रदेवका माहात्म्य संसारमें प्रगट होता है।

२४६। श्रीजिनेंद्रदेवकी आराधना किस किसप्रकारसे की जाती है-शुद्ध मनवचनकायसे। अन्य किसीको शरण न मानकर केवल अरहंतदेवको ही शरण मानना उन्हींके गुणसमूहका चिंतवन करना ध्यान करना स्मरण करना आदि मानसीक आराधना है। उन्हीं गुणसमूहकी स्तुति और जप करना वाचनिक (वचनसे होनेवाली) आराधना है। भक्तिपूर्वक यात्रा करना, प्रणाम, पूजा सेवा आदि करना कायिक आराधना कहलाती है।

२४७। श्रीअरहंतदेवको स्मरण करनेमात्रसे क्या फल होता है-मन पवित्र हो जाता है, परम पुण्य होता है और अतिशय सुखदेनेवाले शुभध्यानकी प्राप्ति होती है।

२४८। श्रीजिनेंद्रदेवकी स्तुति और जप करनेसे क्या लाभ होता है-जो भगवानकी स्तुति और जप करता है वह अंतमें ऐसा हो

जाता है कि अन्य सबलोग उसकी स्तुति और जप किया करते हैं स्तुति और जप करनेवाला जगतपूज्य और जगत वंद्य हो जाता है।

२४९। अरहंतदेवको प्रणाम करनेसे क्या फल मिलता है—उच्च-गोत्र और उत्तमसुखकी प्राप्ति।

२५०। श्रीअरहंतदेवकी पूजा करनेसे किस पदकी प्राप्ति होती है—जगतपूज्य मोक्षपदकी ।

२५१। श्रीजिनेंद्रदेवकी भक्ति करनेवालोंको कौनसे अच्छे सुख मिलते हैं—उन्हें भवभवमें उत्तम भोगोपभोगोंकी संपूर्ण सं-पदायें प्राप्त होती रहती हैं।

२५२। जो अहंकारवश श्रीजिनेंद्रदेवके चरणकमलोंको नमस्कार नहीं करते परभवमें वे कैसे होते हैं— वे चांडाल, बुरे, दरिद्री, दास और नीच जातियोंमें उत्पन्न होते हैं।

२५३। जो श्रीजिनेंद्रदेवसे द्वेष रखते हैं उनकी कैसी दशा होती है—वे सदा सुखसे अलग रहते हैं, सदा दुःखी रहते हैं और चिरकालतक नरक निगोदादिके दुःख सहते रहते हैं।

२५४। जो अरहंतदेवमें सदा दोषोंका ही चिंतवन करते रहते हैं उनकी कैसी दशा होती है— उनकी धनधान्यादिक संपदायें शीघ्र ही नष्ट हो जातीं हैं उनका कुल भी अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है तथा वे स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

२५५। जिनभक्त कौन कहे जाते हैं—जो मनवचनकायसे

सदा सब कामोंमें श्रीजिनेंद्रदेवकी ही पूजा स्तुति आदि करते हैं। कुदेवोंकी पूजा स्तुति कभी नहीं करते वे भव्यजन जिनभक्त कहलाते हैं।

२५६। देव कितने प्रकारके हैं—चार प्रकारके। जगतपूज्य देवाधिदेव, सुदेव, कुदेव और अदेव।

२५७। देवाधिदेव किन्हे कहते हैं—धर्मरूपी तीर्थको प्रकाश करनेवाले, संसारमात्रका हित करनेवाले, श्रीमान् विश्वज्येष्ठ श्रीतीर्थंकर भगवान ही देवाधिदेव कहे जाते हैं।

२५८। सुदेव कौन हैं—चतुर्णिकायदेवोंमें जो श्रीजिनेंद्रदेवके भक्त और सम्यग्दृष्टी इंद्रादिक देव हैं उन्हें सुदेव कहते हैं।

२५९। कुदेव कौन कहलाते हैं—चतुर्णिकायदेवोंमें जो देव सम्यग्दृष्टी नहीं हैं संसारमें चिरकालतक परिभ्रमण करनेवाले मिथ्यादृष्टी हैं वे कुदेव कहलाते हैं।

२६०। अदेव कौन हैं—जो ठग और धूर्त लोगोंने केवल अज्ञानी लोगोंको ठगनेकेलिये स्थापित करलिये हैं स्त्री वस्त्र आभूषण आयुध आदि सहित हैं। जिनमें देवत्वका कोई चिह्न व गुण नहीं पाया जाता ऐसे चंडी मुंडी ब्रह्मा विष्णु महेश गणेश आदि सब अदेव कहलाते हैं।

२६१। कुदेव और अदेवोंकी भक्ति करनेसे क्या फल मिलता है—अनेक दुःख, दीर्घसंसारमें परिभ्रमण और भवभवमें दरिद्रता

के दुःख भोगने पड़ते हैं।

२६२। जो लोग रोगक्लेशादि शांत करनेकेलिये नीच देवोंकी पूजा भक्ति करते हैं वे कैसे हैं—वे ठीक उसी पुरुषके समान है जो अग्निको तेलसे बुझाना चाहता है अथवा जो मूर्ख चिर-जीवी होनेके लिये विष पीना चाहता है।

२६३। जो लोग विवाहादि मंगलकार्योंमें नीच देवोंकी पूजा करते है उन्हें क्या फल मिलता है— उनके घर नित्य अमंगल होते रहते हैं और अंतमें उनका वंश नाश हो जाता है।

२६४। जो लोग खेती व्यापारादिमें अधिक धन धान्य होनेके लिये नीच देवोंकी सेवा करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है— उनका मूलधन भी सब नष्ट हो जाता है तथा भवभवमें उन्हें दरिद्र-ता भोगनी पड़ती है।

२६५। जो लोग पुत्र पौत्रादि संतान होनेकेलिये कुदेवोंकी सेवा करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है— उन्हें इस भवमें भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और परभवमें वे सदा असंतान (संतान रहित) ही होते रहते हैं।

२६६। इस उपर्युक्त संपूर्ण कथनका क्या तात्पर्य है अर्थात् संपूर्ण शुभकार्योंमें तथा कल्याणार्थ क्या करना चाहिये—सर्वत्र शुभकार्योंमें तथा संपूर्ण रोग क्लेशादि अनिष्टोंकी शांति करनेकेलिये एक अरहंतदेवकी ही आराधना करना चाहिये।

२६७। कैसे धर्मका सदा सेवन करना चाहिये—जो संपूर्ण प्रा-

णियोंको सदा अभय और अनंत सुखोंको देनेवाला है सब धर्मोंमें उत्तम है ऐसे अहिंसाधर्मका ही सदा सेवन करना चाहिये ।

२६८ । यह अहिंसाधर्म किसने निरूपण किया है—सर्वज्ञ वीतरागदेवने और वह भी मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकाओं के मुक्तिप्राप्ति होनेकेलिये ।

२६९ । किन २ कार्योंमें धर्मसेवन करना चाहिये—सुख, दुःख, रोग, क्लेश और संपूर्ण आपदाओंमें अथवा केवल पुण्यवृद्धिके लिये सुखी दुःखी और रोगी आदि मनुष्योंको सदा धर्मसेवन करते रहना चाहिये ।

२७० । सुखीलोग किसलिये धर्मसेवन करते हैं—सुखवृद्धिके लिये तथा इसलोक और परलोकमें यथेष्ट कार्योंकी सिद्धि होनेके लिये और अंतमें मोक्ष मिलजानेके लिये ।

२७१ । दुःखीलोग क्यों धर्मसेवन करते हैं—दुःखोंको दूर करने और सुखोंको बढानेकेलिये तथा अपना कल्याण करने और क्रमसे मोक्ष पानेकेलिये ।

२७२ । रोगीलोगोंको रोग शांत करनेकेलिये आतिशय दुर्लभ और उत्तम औषधि क्या है—अनेक असाध्यरोगोंको क्षणमात्रमें अच्छा करदेनेवाली उत्तम औषधि एक धर्म ही है ।

२७३ । परलोकमें जानेकेलिये पाथेय (मार्गमें खानेके योग्य पदार्थ) क्या है—एक धर्म ही है क्योंकि यही एक संसारके संपूर्ण सुख

और उत्तमोत्तम संपदायें देनेवाला है इस धर्मकी समान देनेवाला संसारमें और कोई है नहीं।

२७४। उत्कृष्ट चिंतामणि क्या है-यह धर्म ही उत्कृष्ट चिंतामणि है मनमें चिंतवन किये हुये पदार्थोंको तथा स्वर्ग मोक्षादिके सुखोंको देनेवाला यह धर्म ही चिंतामणिके समान है।

२७५। मनमें संकल्पकिये हुये संपूर्ण पदार्थोंको देनेवाला कल्पवृक्ष किसे कहना चाहिये--इसी धर्मको। क्योंकि यही धर्म संसारकी संपूर्ण लक्ष्मी और सुखोंको देनेवाला है। यही उपमारहित सर्वोत्तम धर्म है।

२७६। निधि कामधेनु आदि सुखदेनेवाले पदार्थ किसके संबंधी हैं--ये सब इसी अहिंसाधर्मके दास हैं। जहां धर्म है वहां ये अवश्य रहते हैं।

२७७। कैसा मानकर इस धर्मको सेवन करना चाहिये-- जैसे किसी दुर्भिक्षमें किसी रंकको कोई निधि मिलजाय तो वह उसे अतिशय दुर्लभ समझकर अपनी पूर्ण शक्तिसे उसकी रक्षा करता है उसीप्रकार इस धर्मको भी अतिशय दुर्लभ समझकर अपनी पूर्ण शक्तिसे इसे सेवन करना चाहिये।

२७८। मनुष्यको अपनी आयु किसप्रकार व्यतीत करना चाहिये--धर्मध्यानपूर्वक विना धर्मके इस मनुष्यको अपना एक क्षण भी नहीं खोना चाहिये।

२७९।-किन २ पुरुषोंको रातदिन बराबर धर्मसेवन करना चाहिये-

वृद्धावस्थाके कारण वा किसी अन्य रोगादिके कारण जिन-की इंद्रियां और वाणी आदि सब शिथिल हो गई हैं उन्हें मृत्यु अपने शिरपर सवार समझकर कुधर्म छोड़ रातदिन धर्मसेवन करना चाहिये।

२८०। कुधर्म किसे कहते हैं-मरे हुये माता पिता भाई बहिन आदि कुटुंबियोंका श्राद्ध करना, तर्पण करना, संक्रांति और सूर्य या चंद्रग्रहणके दिन स्नान करना, दान देना, पंचाग्नि तपना, गाय आदि पशुओंको, पीपल आदि वृक्षोंको घट आदि वर्त्तनोंको पूजना, यज्ञ करना आदि सब कुधर्म कहलाते हैं।

२८१। पुत्र पिताका श्राद्ध करता है तर्पण करता है वह क्या पिताको मिलता है— नहीं। क्योंकि पिता कुछ लेनेकेलिये वहां थोड़े ही आता है वह तो जहां उसे जाना था वहीं ऊंच या नीच गतिमें पहुंच चुका।

२८२। तब फिर श्राद्ध करनेवालोंको क्या फल मिलता है— न जाने वह कितने दिनका संचय किया हुआ धन धान्यादिक व्यर्थ खर्च करदेता है। इसके सिवाय वह बहुतसी भोजन सामग्री तयार करता है और मिथ्यादृष्टियोंको भोजन कराता है इसमें उसे घोर पापका बंध होता है।

२८३। पुत्रका किया हुआ श्राद्ध तर्पणादिक पिताके पास नहीं पहुंचता इसका कोई उदाहरण कहिये—संसारमें यहबात हम सब

लोग प्रत्यक्ष देखते हैं कि पुत्र भोजन कर रहा है पिता उसे साक्षात् देख रहा है परंतु उसे तृप्ति नहीं होती। फिर भला मरनेपर वह पिता पुत्रके भोजन करलेनेसे कैसे तृप्त हो सकता है जब कि वह जीते जी ही तृप्त नहीं हो सकता।

२८४। संक्रांति अथवा ग्रहणमें दान देनेसे अथवा स्नान करनेसे क्या फल मिलता है—अनेकबार नरकादि नीच गतियोंमें दुःख भोगने पड़ते हैं।

२८५। गाय हाथी आदि पूजनेसे कौनसी गति मिलती है—जो लोग गाय हाथी आदि पशुओंको पूजते हैं उन्हीमें विशेष भक्ति रखते हैं इसलिये वे मरकर गाय हाथी आदि पशु ही होते हैं।

२८६। जो लोग पीपल तुलसी आदि वृक्षोंको पूजते हैं वे किस दुर्गतिमें जाते हैं—वे वृक्षोंकी सेवा करते २ उनके पापके फलसे मरकर वृक्ष ही होते हैं अथवा और किसी नीच गतिमें जाकर उत्पन्न होते हैं।

२८७। अपने पुत्र पौत्रादिकोंकेलिये जो लोग कुदेव वा अदेवोंको पूजते हैं ये कैसे हो जाते हैं—जैसे रागी द्वेषी और नीच वे देव हैं, उनका पूजन करनेवाले भी अनेक भवोंमें वैसे ही रागी द्वेषी नीच उत्पन्न होते रहते हैं।

२८८। जो लोग स्वयं कुधर्म सेवन करते हैं अथवा दूसरोंको उसे पालन करनेकेलिये प्रेरणा करते हैं उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती है—नरकादिक दुर्गति।

२८९। निर्ग्रन्थ गुरु कौन कहलाते हैं— अंतरंग और बाह्य परिग्रहसे रहित ऐसे आचार्य उपाध्याय और साधु।

२९०। आचार्य किन्हें कहते हैं—जो मुनि दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, वीर्याचार और तपआचार इन पंच आचारोंका स्वयं परिपालन करते हैं और शिष्योंसे इनका पालन कराते हैं। तथा जो छत्तीस[1] गुणोंसे विभूषित हैं, संपूर्ण परिग्रहसे रहित हैं, महातपस्वी हैं रत्नत्रय सहित हैं दीपकके समान धर्मको प्रकाश करनेवाले हैं वे आचार्य कहलाते हैं।

२९१। उपाध्याय कौन कहलाते हैं—जो ज्ञान और चारित्र की वृद्धि होनेकेलिये स्वयं सदा पढ़ते रहते हैं, और शिष्यों को सदा पढ़ाते रहते हैं। जो केवल मुक्तिलाभके लिये ग्यारह अंग और चौदह पूर्वोंको पढ़ते पढ़ाते रहते हैं, जो निरंतर तपश्चरण करनेवाले और रत्नत्रयसे विभूषित हैं ऐसे मुनिविशेष ही उपाध्याय कहलाते हैं इनसे भिन्न कोई उपाध्याय हो नहीं सकता।

२९२। साधु किन्हें कहते हैं— जो मुनि केवल मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये किसी पर्वतकी कंदरामें अथवा अन्य किसी निर्जन स्थानमें प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों समयोंको एकाग्र ध्यानसे सिद्ध करते हैं, तथा अन्य समयमें भी जो ध्यानमें लीन रहते हैं घोर तपश्चरण करते हैं

१। तप १२ धर्म १० आचार ५ आवश्यक ६ गुप्ति ३।

आत्मकल्याण करनेमें सदा उद्यत रहते हैं और जो सदा दिगंबर रहते हैं वे साधु कहलाते हैं।

२९३। आत्मकल्याण करनेवालोंको किसके वचन प्रमाण मानना चाहिये, किसके वचनोंमें विश्वास करना चाहिये किसकी भक्ति और सेवा करना चाहिये—जो निस्पृह (वीतराग) हैं संपूर्ण पदार्थोंके जाननेवाले हैं, दृढ़ चारित्रसे विभूषित हैं जो संसाररूप-समुद्रसे स्वयं पार होजाते हैं और अपने आश्रितजनोंको पार करदेते हैं उन्हींके वचनोंमें विश्वास करना चाहिये उन्हींकी भक्ति और सेवा करना चाहिये।

२९४। किन २ उत्तमगुणोंसे गुरुकी परीक्षा करनी चाहिये—जितेंद्रियत्व, निर्मोहत्व उत्तमक्षमा आदि तपस्वियोंके उत्तम २ गुणोंसे, निःशंकादि सम्यक्त्वके अंगोंसे, वीतरागतासे, ईर्यासमिति आदि व्रतोंसे उनके गमन करने बातचीत करने और कथोपकथन करने आदिसे उत्तम गुरु पहिचान लिये जाते हैं अर्थात् जिनमें ये उपर्युक्त गुण पाये जायं उन्हें ही गुरु समझना और मानना चाहिये।

२९५। वे गुरु सम्यग्दृष्टी हैं या नहीं सो कैसे पहिचानना चाहिये—जो वे गुरु सदा तत्त्वचिंतन करते रहते हों, ध्यानमें लीन रहते हों, ज्ञान, प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य आदि गुणोंसे विभूषित हों उन्हें अवश्य सम्यग्दृष्टि समझना चाहिये। जिनमें ये वाह्य चिह्न न पाये जायं उन्हें मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये।

२९६। यदि कोई गुरु परीक्षामें निर्गुण ठहर जायं अर्थात् उनमें जितेंद्रियत्व प्रशमता आदि गुण न पाये जायं तो क्या करना चाहिये— उनमें मध्यस्थ परिणाम रखना चाहिये न तो उनकी वंदना ही करनी चाहिये और न निंदा ही करनी चाहिये।

२९७। जो केवल भेषी हैं जिनमें गुरुके कोई गुण नहीं पाये जाते उनकी वंदना करनेसे क्या दोष होते हैं—भेषी गुरुको नमस्कार करने मात्रसे सम्यग्दर्शन ज्ञान और व्रत आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

२९८। सम्यग्दृष्टी भक्तजन श्रावकोंकेलिये जुहारु इच्छाकार आदि करते हैं फिर भला उन भेषी गुरुओंको नमस्कार करनेसे क्या हानि है— श्रावकजन सम्यग्दृष्टी ज्ञानी और व्रती होते हैं इसलिये वे निजमार्गमें अर्थात् मोक्षमार्गमें अथवा जिन मार्गमें चलनेवाले कहे जाते हैं। इच्छाकार वा नमस्कारादिका पात्र वही गिना जाता है जो मोक्षमार्गमें चला जा रहा है। भेषी गुरु सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रतसे रहित हैं न तो उनमें यतियोंके कोई गुण हैं और न श्रावकोंके। अतएव वे मोक्षमार्गसे भ्रष्ट हैं। इसलिये वे कभी वंदना करने योग्य नहीं कहे जा सकते।

२९९। भेषी गुरुओंसे श्रावक अच्छे हैं यह बात कैसे संभव हो सकती है—गृहस्थ श्रावकजन दान, शील, व्रत आदि अनेक गुण सहित होते हैं। भेषी गुरुओंमें कोई गुण नहीं पाये जाते वे निर्गंध पुष्पके समान केवल बाहरसे ही शोभायमान हैं इसलिये ऐसे गुरुओंसे वे श्रावक ही अच्छे हैं।

३०० । गुरुओंकी आराधना किसप्रकार करनी चाहिये—विनय-पूर्वक भोजनदान देकर यथायोग्य उनका आदर सत्कारकर, उनकी आज्ञा पालन कर तथा शुद्ध मनवचन कायसे उनके गुणोंकी पूजा भक्ति नमस्कार सुश्रूषा स्तवन आदि करके उन साधुजनोंकी सेवा करनी चाहिये और अन्य भेषधारी कुलिं-गियोंसे सदा अलग रहना चाहिये।

३०१ । कुलिंगी अथवा कुगुरु कौन कहलाते हैं—जो मायावी और वस्त्र परिग्रहादि सहित हैं, इंद्रिय और परीषहोंको जीत नहीं सकते, इच्छानुसार सदा भोजन पान करते हैं और दू-सरोंको ठगना ही जिनका मुख्य काम है वे बगुलेके समान भेषधारी कुगुरु कहलाते हैं।

३०२ । संसारमें अनेक मत हैं उनमेंसे सच्चे गुरु किसमतमें पाये जाते हैं—जैनमतमें। जैनमतसे अन्य जितने मत हैं उन सब में कुगुरु ही पाये जाते हैं क्योंकि वे सब मोक्षमार्गसे दूर हैं।

३०३ । क्या जैनमतमें भी कोई कुगुरु हैं। यदि हैं तो वे कैसे जाने जाते हैं—हैं। जो लोग स्वयं मूर्ख हैं जिन्होंने केवल अ-पने राग द्वेष पुष्ट करनेके लिये किंवा अपनी इच्छा और इंद्रि-योंके सुख पूर्ण करनेकेलिये अनेक श्वेतांबर पीतांबर आदि मत मतांतर कल्पना किये हैं अथवा गच्छ गच्छांतर कल्पना किये हैं जो अपनी इच्छानुसार आचरण पालन करते हैं उन्हें कुगुरु ही समझना चाहिये। जो एक मूलसंघसे बाह्य हैं वे

सब लोभी, याचक कुमार्गगामी और उदरार्थी कुलिंगी हैं।

३०४। इन कुलिंगियोंका आश्रय लेनेसे अर्थात् इनकी शरण लेने और सेवा सुश्रूषा आदि करनेसे क्या फल मिलता है— इन कुलिंगि-योंका आश्रय लेनेसे कुछ धर्मसेवन तो होता नहीं केवल पा-पका भार बढता रहता है। अतएव इन कुलिंगियोंके सेवन करनेवाले संसाररूपी समुद्रमें अनेकवार गोते खाते रहते हैं।

३०५। इन कुलिंगियोंको सेवन करनेवाले संसारसमुद्रमें क्यों गोते खाते हैं-- क्योंकि ये कुलिंगी स्वयं संसारसमुद्रमें गोते खाते रहते हैं। जब ये स्वयं उससे पार नहीं हो सकते तो अपने आश्रितजनोंको कैसे पार कर सकते हैं। इसलिये ऐसे गुरु सदा त्याज्य हैं।

३०६। भेषी गुरुओंकेलिये जो ऊपर इतना कहा है सबका क्या तात्पर्य है—तात्पर्य यही है कि जो किसी प्रकारसे किसी बहानेसे परिग्रह धारण करते हैं वे गुरु कभी वंद्य (वंदनाके योग्य) नहीं हो सकते।

३०७। सम्यग्दर्शनकी शुद्धिकेलिये और क्या २ करना चाहिये— जीव अजीव आदि तत्त्वोंमें रुचि, जिनोक्त आगममें श्रद्धा और उसके अर्थमें गाढ निश्चय रखना चाहिये।

३०८। तत्त्व आगम आदिमें श्रद्धा रुचि आदि किसप्रकार करना चाहिये—जो तत्त्व जो आगम श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है वही स-त्य है क्योंकि श्रीजिनेंद्रदेव सर्वज्ञ और वीतराग हैं जो सर्वज्ञ और वीतराग होते हैं वे कभी मिथ्याभाषण नहीं कर सकते

अन्य कपिल बुद्ध आदि सर्वज्ञ वीतराग नहीं थे इसलिये उनके कहे हुए तत्त्व आगम आदि भी कभी सत्य नहीं हो सकते अतएव मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन चार प्रकारके पात्रोंका दान देना ही उत्तम दान है। इनके सिवाय और दान उत्तम दान नहीं हैं। श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजन करना ही उत्तम पूजन है, अन्य किसीकी पूजन करना उत्तम पूजन नहीं है। निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा करना ही उत्तम सेवा है अन्य उत्तम सेवा नहीं है। इत्यादि जो कुछ श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है वह सब सत्य है वह किसीप्रकार अन्यथा नहीं हो सकता। इस प्रकार तत्त्व और आगममें श्रद्धा रुचि प्रतीति आदि करनी चाहिये। ऐसी गाढ श्रद्धा वा रुचि ही सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेवाली है।

३०९। सम्यग्दृष्टी पुरुष चतुर्गतियोंमेंसे किन २ नीच स्थानोंमें उत्पन्न नहीं होते—जिन्होंने आयुका बंध नहीं किया है ऐसे सम्यग्दृष्टी पुरुष तिर्यंच और नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होते, नीच देव नहीं होते, नीच मनुष्य नहीं होते, कुभोगभूमि और म्लेच्छखंडादिकोंमें उत्पन्न नहीं होते और न कभी नीच कुलमें ही उत्पन्न होते हैं।

३१०। तब फिर वे सम्यग्दृष्टीपुरुष किस सुगतिमें उत्पन्न होते हैं—सौधर्मादि उत्तम देवगतिमें अथवा तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदि उत्तम मनुष्यगतिमें ही उत्पन्न होते हैं।

३११। देवगतिमें भी वे कौनसी नीचगति समझी जाती है कि जिनमें सम्यग्दृष्टी उत्पन्न नहीं होते-भवनवासी व्यंतर और ज्योतिष्क तथा कल्पवासियोंमें किल्विषिक, आभियोग्य, प्रकीर्णक, बाहन बननेवाले और सैनिक आदि नीचपदाधिकारी नीचदेव समझे जाते हैं।

३१२। शुद्ध सम्यग्दृष्टी पुरुष स्वर्गमें कैसे उत्तम देव होते हैं-- अनेक महा ऋद्धियोंके धारक इंद्र प्रतींद्र अथवा सामानिक जातिके देव होते हैं जिनको अन्य सब देव नमस्कार करते हैं जो सर्वपूज्य, धर्मात्मा, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अनेक विक्रिया और ऋद्धियोंसे विभूषित होते हैं और जो सदा दिव्यसुखरूपी समुद्रमें निमग्न रहा करते हैं।

३१३। सम्यग्दृष्टी पुरुष मनुष्यगतिमें कैसे मनुष्य होते हैं— प्रताप, उद्यम, धैर्य, तेज, वीर्य, यश, विद्या, विवेक आदि अनेक सद्गुणोंसे सुशोभित होते हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले और दिव्यरूपवान होते हैं। संसारके संपूर्ण भोगोपभोगोंके पदार्थ मानो सदा उनकी सेवा ही किया करते हैं। जगतके प्राणीमात्र उनकी स्तुति किया करते हैं। वे सम्यग्दृष्टी पुरुष इन उपर्युक्त गुण सहित उच्चकुलमें धर्मकी मूर्तिके समान धर्मनिष्ठ तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुष होते हैं।

३१४। सम्यग्दृष्टी पुरुष इस मनुष्यगतिमें कौन २ उत्तम पद पाते हैं

चक्रवर्ती, तीर्थंकर, कामदेव, बलभद्र, विद्याधरेश आदि महाश्रेष्ठ सर्वपूज्य उत्तम पद पाते हैं। इनके सिवाय इस संसारमें वे अनेकप्रकारकी सुखसामिग्रीके स्वामी होते हैं अनेक बड़े २ पुरुषों द्वारा वंद्य और पूज्य होते हैं। वे कभी नीच पद नहीं पाते कभी स्त्री, नपुंसक, गूंगे, अंधे, कुब्जे, लंगड़े अंग उपांगरहित नहीं होते। नीचकुलमें जन्म नहीं लेते। थोड़ी आयु नहीं पाते। और न कभी दरिद्री, बुरे, कुरूपी, रोगी आदि होते हैं।

३१५। सम्यग्दृष्टी पुरुष कितने भव धारण कर मोक्ष जाते हैं--उत्कृष्ट सम्यग्दृष्टी पुरुष दो या तीन भव धारणकर अवश्य मुक्त हो जाते हैं तथा जघन्य सम्यग्दृष्टी पुरुष रत्नत्रय और तपश्चरण पालन करते हुये अधिकसे अधिक सात या आठ भव धारणकर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करलेते हैं। इन मध्यके दो तीन या सात आठ भवोंमें वे मनुष्यगतिके उत्तम सुखोंका तथा देवगतिके सर्वार्थसिद्धितकके उत्तम और अनिर्वाच्य सुखोंका आस्वादन किया करते हैं।

३१६। क्या इस समय इस क्षेत्रमें ऐसे भी उत्तम पुरुष हैं जो एक भवधारण कर ही मुक्त हो जायं—हां हैं। जो अति आसन्नभव्य और रत्नत्रयतपसंयुक्त हैं वे आयु पूर्णकरके इंद्र लौकांतिक आदि उत्तम देव होंगे। वहां के अनेक दिव्यसुख भोग आयु पूर्णकर उत्तम मनुष्य होंगे और दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण कर

के अवश्य ही मोक्ष जायंगे।

३१७। हीनसंहननवाले मनुष्य दीक्षा लेकर तपश्चरण करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है— उत्तम संहननवालोंको हजार वर्ष तपश्चरण करनेसे जो फल मिलता है वही फल हीनसंहननवालोंको एकवर्ष उत्तम तपश्चरणसे अथवा अति कष्टपूर्वक कियेहुये थोड़े दिनके ही तपश्चरणसे प्राप्त हो जाता है।

३१८। यह ऐसा क्यों होता है अर्थात् हीनसंहननवालोंको थोड़े ही तपश्चरणसे ऐसा उत्कृष्ट फल क्यों मिलता है— क्योंकि हीनसंहननवाले मनुष्य बिलकुल अन्नके कीड़े और चंचलचित्त हैं यह जगत सब मिथ्यात्वसे भरा हुआ है इसमें सद्गुरुओंका समागम होना अति कठिन है क्योंकि जगह २ पर भेषी कुलिंगी ही अपना अड्डा जमाये पड़े हैं। ऐसी अवस्थामें जिनोक्त दीक्षा लेकर सम्यक तपश्चरण करना अति कठिन है। अतएव हीनसंहननवाले बड़े कष्टसे सुदीक्षा लेकर तपश्चरण करते हैं उन्हें थोड़ेसे ही तपश्चरणसे क्यों न उत्कृष्ट फल मिलना चाहिये? अर्थात् उन्हें थोड़े ही तपश्चरणसे उत्कृष्ट फल अवश्य मिलता है।

३१९। भगवन् इसका कोई उदाहरण कहिये—पहलेके मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे थे उनके शरीर हड्डी नसें आदि सब वज्रमय थीं और आजकलके मनुष्य केवल एक धनुष ऊंचे होते हैं उनकी शारीरिक संपत्ति अतिशय हीन होती है फिर भी वे

अपने शरीरको भारी कष्ट देकर व्रत धारण करते हैं तपश्चरण करते हैं फिर भला उन्हें उसका उत्तम फल क्यों न मिलना चाहिये।

३२० । इस समय अतिशय पूज्य कौन हैं-जो अंगहीन और दुर्बल होकर भी अपनी शक्ति नहीं छिपाते हैं घोर तपश्चरण और संयम पालन करते हैं। दुष्कर योग धारण करते हैं तथा जो भावलिंगी हैं वे ही संसारमें धन्य हैं, जगतपूज्य हैं वंदना और स्तुति करने योग्य हैं। ऐसे महात्माओंको ही वंदना स्तुति करने आदिसे परंपरा मोक्ष प्राप्त हो सकती है।

३२१ । यह सब समझकर सज्जनोंको क्या करना चाहिये— इंद्रियां और मोह (कषाय) ये शत्रु हैं इन शत्रुओंको नष्ट करके अपनी वह शक्ति प्रगट करलेना चाहिये कि जो दीक्षा और सुतपके सर्वथा योग्य हो।

३२२ । इस संसारमें किसका जन्म लेना सफल है—उसीका कि जिसने अपना हृदय सम्यग्दर्शनरूपी रत्नहारसे विभूषित किया है।

३२३ । किसका जन्मलेना व्यर्थ है-जो मिथ्यात्वको मिथ्यात्व जानता है और सद्गुरुके वचनामृतका आस्वादन करता हुआ भी उसे नहीं छोड़ता उसका जन्म लेना बिलकुल व्यर्थ है।

३२४ । धनाढ्य कौन है— वही जगतमान्य महाधनी है

जिसके पास सम्यग्दर्शनरूपी रत्न है। क्योंकि वही तीनों जगतमें पूज्य माना जाता है।

३२५। यह ऐसा क्यों होता है अर्थात् सम्यग्दृष्टी धनाढ्य माना जाता है और रुपये पैसेवाला नहीं, सो क्यों?— इसका कारण यह है कि जो रुपये पैसेवाले धनी हैं उन्हें इसी लोकमें अनेक सुख दुःख भोगने पड़ते हैं परंतु जो सम्यग्दृष्टी हैं, वे तीनों जगतमें सब जगह महा सुखी रहते हैं अतएव वास्तवमें सम्यग्दृष्टी ही धनाढ्य हैं।

३२६। इस संसारमें कौन सज्जन पूज्य समझे जाते हैं— जिन उत्तम पुरुषोंने मिथ्यात्वरूपी शत्रुको सर्वथा नष्ट करदिया है जो सम्यग्दर्शनसे विभूषित हैं सुतत्त्वोंके विचार करनेमें सदा लीन रहते हैं वे ही सज्जन पूज्य गिने जाते हैं।

३२७। विकल पशु कौन कहलाते हैं— जो मिथ्यादृष्टी कभी सम्यग्दर्शनका विचार तक नहीं करते वे ही कुमार्गमें चलनेवाले निंद्य पशु समझने चाहिये।

३२८। मोक्षरूपी राजमहलपर चढ़नेकेलिये प्रथम सीढी क्या है- निर्मल सम्यग्दर्शन।

३२९। सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रका मूलकारण क्या है— उत्तम सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र बढ़ानेवाला और उसकी प्रतिष्ठा प्रगट करनेवाला है। यही एक इन दोनोंके उत्तम फल लगनेमें प्रधान

कारण है।

३३०। यह ऐसा क्यों है अर्थात् सम्यग्दर्शन ही इन दोनोंका प्रधान कारण क्यों है—क्योंकि सम्यग्दर्शनके बिना बड़े २ तपस्वियोंका भी ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है। एक सम्यग्दर्शनके होनेसे ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान और चारित्र सम्यक्चारित्र कहलाता है अतएव सम्यग्दर्शन ही सर्वत्र प्रधान है।

३३१। क्या सफल करना चाहिये—यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त होगया हो तो उसे तपश्चरणके द्वारा सफल करना चाहिये। सम्यग्दर्शनपूर्वक किया हुआ तपश्चरण सर्वार्थसिद्धि पर्यंतके सुख संपदा देनेवाला होता है। जो तपश्चरण सम्यग्दर्शन रहित है वह कुतप कहलाता है। उससे इंद्र उपेंद्र आदि सत्पद कभी नहीं मिल सकते केवल नीचदेव हो सकते हैं।

३३२। क्या सम्यग्दर्शनरहित मुनिसे सम्यग्दृष्टी श्रावक (गृहस्थ) उत्तम है—अवश्य।

३३३। सम्यक्त्वशून्य मुनिसे सम्यग्दृष्टी श्रावक उत्तम गिना जाता है इसका क्या कारण है— इसका यही कारण है कि जो गृहस्थ सम्यग्दृष्टी है वह मोक्षमार्गमें चला जा रहा है किंतु जो मुनि होकर भी सम्यग्दर्शन रहित है वह मोक्षमार्गसे सर्वथा विमुख है केवल संसारकी वृद्धि करनेवाला है। अतएव ऐसे मुनियोंसे सम्यग्दृष्टी गृहस्थ सर्वथा उत्तम है।

३३४। सम्यग्दर्शनका ऐसा प्रबल माहात्म्य जानकर पंडितोंको क्या करना चाहिये—यही कि आत्मतत्त्वका तथा जीवादि सप्त तत्त्वोंका श्रद्धा न करके निःशांकितादि अष्टगुणोंसे विभूषित चंद्रमाके समान निर्मल इस सम्यग्दर्शनको ही प्राप्त करना चाहिये।

३३५। हे भगवन् निःशांकितादि सम्यक्त्वके आठ अंग कौनकौन हैं—निःशांकित १ निःकांक्षित२ निर्विचिकित्सित३ अमूढदृष्टि४ उपगूहन ५ स्थितिकरण ६ वात्सल्य ७ और प्रभावना ८।

३३६। निःशांकित अंग किसे कहते हैं—सर्वज्ञ वीतराग श्री-जिनेंद्रदेवने जो जीवादि तत्त्व निरूपण किये हैं उनमें अने-क तत्त्व अतिशय सूक्ष्म हैं इंद्रियोंके अगोचर हैं ऐसे पदार्थों को केवल आज्ञासिद्ध मानना उनमें कोई किसीप्रकारकी शंका नहीं करना निंशांकित अंग कहलाता है। इसका भी कारण यह है कि सर्वज्ञ वीतराग कभी मिथ्याभाषण नहीं कर सकते। जो कुछ उन्होंने निरूपण किया है वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इसप्रकार दृढ श्रद्धा न करनेको निःशांकित अंग कहते हैं।

३३७। ऐसी कौन शंकायें हैं जो प्रायः नहीं करनी चाहिये—मेरे पिता पितामह (दादा) जो मिथ्यात्व धर्म पालन करते थे, वह मैंने छोड़ दिया है अतएव मेरे घरमें जो रोग क्लेशादि हो रहे हैं वे सब उन्हीं पितरलोगोंने तो नहीं किये हैं? इस-

प्रकारकी शंकायें जो प्रायः मिथ्यादृष्टियोंके करने योग्य हैं कभी नहीं करना चाहिये।

३३८। ऐसी शंकाओंके त्याग करनेमें क्या विचार करना चाहिये— पिता पितामह आदि अपने २ कर्मबंधके अनुसार चतुर्गति-योंमेंसे किसी गतिमें पहुंच चुके, क्या वे लोग वहां बैठे २ हम लोगोंको पीड़ा दे सकते हैं? अपने कर्मोंके सिवाय क्या कोई कभी किसीको सुख दुःख दे सकता है? कभी नहीं, ऐसा विचार कर उपर्युक्त प्रकारकी शंकायें कभी नहीं करना चाहिये।

३३९। जो प्रसिद्ध मिथ्यात्व कुलपरंपरासे बराबर चला आ रहा है वह कैसे छोड़ा जा सकता है—जैसे लोग धन पाकर कुलपरंपरासे चली आई दरिद्रता छोड़ देते हैं तथा आरोग्यता पाकर कुलपरंपरासे आये हुये कुष्ठआदि अनेक रोगोंको समाप्त कर देते हैं, उसीप्रकार पंडितजन जगतके सारभूत सम्यग्दर्शनको पाकर कुलपरंपरासे आये हुये मिथ्यात्वको भी झट छोड़ देते हैं।

३४०। जिनोक्तपदार्थोंमें शंका करनेसे क्या होता है-जहां जिनोक्त पदार्थोंमें शंका होती है वहां शाकिनी, डाकिनी, रोग, क्लेश, मिथ्यात्व आदि अनेक दोष आ उपस्थित होते हैं।

३४१। निःकांक्षित अंग किसे कहते हैं— कोई भी धर्मकार्य कर उससे धनधान्य भोग उपभोग आदि ऐहिक वा पारलौ-

किक कोई किसीप्रकारकी इच्छा नहीं करना निःकांक्षित अंग कहलाता है।

३४२। जो मूर्खलोग यह समझते हैं कि पार्श्वनाथकी पूजन करनेसे अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं शांतिनाथकी पूजन करनेसे रोग क्लेशादि शांत हो जाते हैं उन्हें क्या फल मिलता है— वे लोग अनिष्ट नष्ट होनेके लिये अथवा रोग क्लेशादि शांत होनेके लिये रातदिन आर्त्तध्यानमें रहते हैं जिससे कि महा पाप होता है मिथ्यात्व की वृद्धि होती है सम्यक्त्वका घात होता है तथा रोग क्लेश आदि अनेक अनिष्ट आ उपस्थित होते हैं।

३४३। निर्विचिकित्सित अंगका क्या स्वरूप है—जो शरीर रत्नत्रयसे पवित्र है वह चाहे कुष्ठआ रोगोंसे नितांत मलिन क्यों न हो मल मूत्रादिसे लिप्त क्यों न हो उसे देखकर घृणा नहीं करना, केवल उसके गुणोंसे प्रीति रखना, निर्विचिकित्सित अंग कहलाता है।

३४४। अमूढदृष्टि अंग किसे कहते हैं—देव धर्म गुरुमें और देवधर्मगुरुके जानकारोंमें मूढता नहीं करना अर्थात् सर्वथा इन्हींको मानना। इनसे भिन्न कुदेव कुधर्म कुगुरु अथवा इनके माननेवालोंकी कभी प्रशंसा नहीं करना आदि अमूढदृष्टि अंग कहा जाता है।

३४५। उपगूहन अंग किसे कहते हैं—यह जिनमार्ग अतिशय विशुद्ध है इसमें कहीं कोई लेशमात्र भी दोष नहीं है

परंतु यदि कदाचित् किसी अजान रोगी वा दुर्बल मनुष्य द्वारा इस पवित्र जिनमार्गमें कोई किसीप्रकारका दोष लगता हो तो उसे आच्छादन करना छिपाना उपगूहन अंग कहलाता है। इसका दूसरा नाम उपबृंहण भी है। उपबृंहणका अर्थ है गुणोंका प्रगट करना अथवा बढ़ाना। दोषोंको छिपाना और गुणोंको प्रगट करना ही इस अंगका तात्पर्य है।

३४६। स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं—जो कोई सम्यग्दर्शन ज्ञान वा व्रत चारित्र आदिसे च्युत होता हो उन्हें छोड़ता हो तो उसे उसीमें स्थिर करना दर्शन व्रत आदि छोड़ने नहीं देना सो स्थितिकरण अंग कहलाता है।

३४७। वात्सल्य अंग क्या है—जैसे गाय और उसके बच्चेमें स्वाभाविक प्रेम होता है उसीप्रकार सहधर्मी लोगोंसे केवल धर्मवृद्धिकेलिये स्वाभाविक प्रेम रखना वात्सल्य अंग कहा जाता है।

३४८। जो लोग सहधर्मी लोगोंसे द्वेष रखते हैं उनकी क्या हानि होती है—उनका सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत चारित्र आदि सब नष्ट हो जाते हैं, संसारमें उनकी अपकीर्त्ति फैल जाती है और पापका बंध होता है।

३४९। प्रभावना अंग किसे कहते हैं— अज्ञानांधकारको दूर कर बड़े ज्ञानी विद्वानों द्वारा जैनधर्मका माहात्म्य प्रगट करना अथवा पूजा प्रतिष्ठा व्रत तप आदि धारणकर जैनधर्म-

की महिमा प्रगट करना उसे प्रभावना अंग कहते हैं।

३५०। इन आठ अंगोंसे क्या लाभ होता है— सम्यग्दर्शन प्रबल हो जाता है और जैसे मंत्री पुरोहित सेना आदि संपूर्ण अंग सहित राजा अपने शत्रुको शीघ्र जीत लेता है उसीप्रकार इन अष्टांग सहित सम्यग्दर्शनके द्वारा यह जीव कर्मरूपी शत्रुकी सेनाको शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

३५१। अंगहीन सम्यग्दर्शन कैसा गिना जाता है— कर्मसमूहके नष्ट करनेमें तथा सुगति देनेमें असमर्थ है जैसे मंत्री सेना आदि अंगसे रहित राजा कुछ नहीं कर सकता उसीप्रकार अंगहीन सम्यग्दर्शन भी कुछ नहीं कर सकता।

३५२। इस सम्यग्दर्शनके पालन करनेका क्या फल मिलता है— जो पुरुष प्रयत्नपूर्वक इसके संपूर्ण दोषोंको दूरकर मनवचनकायसे इसे सांगोपांग पालन करता है वह शीघ्र ही सिद्धाधिपति हो जाता है।

३५३। हे भगवन् सम्यग्दर्शनके दोष कौन २ हैं—तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन और शंका आकांक्षा आदि आठ ये पचीस दोष हैं।

३५४। तीन मूढता कौन हैं— लोकमूढता देवमूढता और शास्त्रमूढता।

३५५। लोकमूढता किसे कहते हैं— संसारके मूर्खलोक जैसा करते हों उसीप्रकार स्वयं करने लगना लोकमूढता कह-

लाती है। जैसे श्राद्ध[1] करना तर्पण करना आदि। यह लोकमूढता नरककी कारण है।

३५६। देवमूढता क्या है—भले बुरे सब देवोंका आराधन करना देवमूढता कहलाती है।

३५७। शास्त्रमूढता किसे कहते हैं— जिनेंद्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंसे भिन्न महाभारत आदि शास्त्रोंको केवल आत्म कल्याण होनेके लिये पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आदि शास्त्र मूढता है।

३५८। इन तीन मूढताओंमे क्या हानि होती है- समय २ पर महापापका बंध होता रहता है तथा आत्माके सम्यग्दर्शन आदि गुण सब नष्ट हो जाते हैं।

३५९। मद कौन २ हैं--जाति १ कुल २ ऐश्वर्य ३ रूप ४ ज्ञान ५ तप ६ बल ७ और शिल्प ८ इनका अहंकार करना आठ मद कहलाते हैं।

३६०। जाति किसे कहते हैं—माताके वंशको जाति कहते हैं सद्धर्म प्राप्त करानेवाली जाति उत्तम जाति गिनी जाती है।

३६१। कुल किसे कहते हैं-पिताके वंशको कुल कहते हैं। दीक्षा योग्य कुल उत्तम कुल गिना जाता है।

१। पितरोंको पहुंचने और तृप्त करनेके लिये जो श्राद्ध तर्पण किया जाता है वह लोकमूढता है। यदि वही श्राद्ध जिनोक्त (श्रद्धापूर्वक उत्तम श्रावकोंको दान देना आदि किया जाय तो वह लोकमूढतामें शामिल नहीं है।

३६२। मातापिताका संबंध मनुष्य और तिर्यंचगतिमें होता है अतएव इन दोनों गतियोंमें आजतक कितनी मातायें हो चुकी हैं— इन दोनों गतियोंमें इतनी मातायें हो चुकी हैं कि उनका पीया हुआ दूध यदि इकट्ठा किया जाय तो समुद्रके जलसे भी अधिक हो जायगा अथवा उन माताओंके वियोगसे नेत्रोंसे जो आंसू गिरे थे यदि वे इकट्ठे किये जायं तो वे भी समुद्रके जलसे बहुत अधिक हो जायंगे।

३६३। पिताओंकी संख्या कितनी होगी—जितनी संख्या माताओंकी है नीच ऊंच दोनों कुलोंमें उतनी ही संख्या पिताओंकी जानना।

३६४। इस संसारमें यह जीव कैसा २ ऐश्वर्य पा चुका है— करोड़ों जन्मोंमें महा ऐश्वर्यवान् राजा हो चुका है और करोड़ों ही जन्मोंमें क्षुद्र कीड़ा और दरिद्री हो चुका है।

३६५। सुंदर रूपका मद किसप्रकार छोड़ना चाहिये— यह विचारकर कि सुंदरसे सुंदर रूप एक छोटेसे छोटे रोगके कारण क्षणभरमें अतिशय कुरूपी किसी भिक्षुकके रूप सरीखा हो जाता है। अथवा क्षणभरमें यह शरीर ही नष्ट हो जाता है फिर भला ऐसे शरीर किंवा रूपका क्या अहंकार करना।

३६६। ज्ञानका अहंकार किसप्रकार छोड़ना चाहिये— ग्यारह अंग और चौदह पूर्वरूप श्रुतज्ञान एक महा समुद्र है इसका पार कौन पा सकता है? कौन इसे पूर्णरूपसे जान सकता

है? इत्यादि विचारकर ज्ञानका मद सर्वथा छोड़देना चाहिये।

३६७। तपका मद किसप्रकार दूर किया जाता है—जो अंग-हीन और दुर्बल हैं वे भी बड़े २ कठिन तप करते हैं उनके साम्हने मेरा तप कितना है? इत्यादि विचारकर तपका मद कभी नहीं करना चाहिये।

३६८। बलका मद किसप्रकार छोड़ना चाहिये- किसी थोड़ेसे रोग क्लेशादिके होनेसे क्षणभरमें यह बल नष्ट हो जाता है। फिर भी इसका अहंकार करना बिलकुल व्यर्थ है।

३६९। शिल्प अर्थात् कला कौशल्यका अहंकार किसप्रकार छोड़ना चाहिये—संसारमें हजारों लाखों ऐसे मनुष्य हैं जो अनेक विज्ञान अनेक कला विद्या चित्र आदि अनेक कलाकौशल्य जानते हैं उनके सामने मेरा कलाकौशल्य कितना है इत्यादि विचारकर शिल्पसंबंधी अहंकार सब छोड़देना चाहिये।

३७०। जाति कुल आदि उपर्युक्त संपूर्ण मद एकसाथ किसप्रकार छोड़ना चाहिये—संसारके संपूर्ण पदार्थोंको अनित्य और क्षणस्थायी समझकर।

३७१। मद करनेसे क्या होता है—सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत विनय आदि सद्गुण सब नष्ट हो जाते हैं और मिथ्यात्व अज्ञान उद्धतता आदि अवगुण सदा बढ़ते रहते हैं।

३७२। अनायतन कौन २ हैं— धर्मके स्थानोंको आयतन और अधर्मके स्थानोंको अनायतन कहते हैं अनायतन छह;

हैं निंद्य मिथ्यादर्शन १ कुशास्त्रोंमे उत्पन्न हुआ मिथ्याज्ञान २ मिथ्याचारित्र ३ मिथ्यादर्शनको धारण करनेवाले मिथ्यात्वी ४ कुशास्त्रोंको पढ़नेपढ़ानेवाले मिथ्याज्ञानी ५ और मिथ्याचारित्रको धारणकरनेवाले जटाधारी आदि भेषी गुरु ६।

३५३। ये उपर्युक्त छह अनायतन कैसे हैं— नरकके साक्षात् कारण हैं। अनेक पापोंको उत्पन्न करनेवाले और आत्माके दर्शनज्ञान आदि गुणोंको घात करनेवाले हैं।

३५४। इनके सेवन करनेसे क्या होता है-रत्नत्रयका नाश हो जाता है, संसारमें चिरकालतक परिभ्रमण करना पड़ता है, और अनेकप्रकारके अनर्थ दुःख आदि सहन करने पड़ते हैं।

३५५। शंकादि आठ दोष कौन २ हैं— ऊपर जो निःशंकित आदि सम्यक्त्वके आठ अंग कहे हैं उनके प्रतिकूल आठ दोष होते हैं। जैसे शंका १ आकांक्षा २ विचिकित्सा ३ मूढदृष्टि ४ अनुपगूहन ५ स्थितिकरण ६ अवात्सल्य ७ और अप्रभावना ८। जिनोक्त पदार्थोंमें अश्रद्धारूपसे शंका करना शंका दोष है। कोई भी धर्मकार्यकर उससे ऐहिक वा पारलौकिक सुखसामग्री चाहना आकांक्षा है। मुनि आदिके मलिन शरीरको देखकर उनसे घृणा करना उनके गुणोंकी ओर लक्ष्य न देना विचिकित्सा है। कुदेव, कुधर्म, कुगुरु और कु-

१ इनके प्रतिकूल धर्मके आयतन भी छह हैं सम्यग्दर्शन १ ज्ञान २ चारित्र ३ और इनके धारण करनेवाले सम्यक्त्वी ४ ज्ञानी ५ और व्रती मुनि आदि ६। ये छह सम्यक्त्वके गुण कहे जाते हैं।

नके माननेवालोंकी स्तुति प्रशंसा आदि करना मूढदृष्टि है। किसी अशक्त वा बाल वृद्ध धर्मात्माके कारण इस निर्मल जिनधर्ममें यदि कोई दोष लगा हो तो उसे आच्छादन नहीं करना प्रगट कर देना अथवा धर्मात्माओंके गुण प्रगट नहीं करना अनुपगूहन दोष है। सम्यग्दर्शन ज्ञान वा चारित्र आदिसे च्युत होते हुये किसी मनुष्यको स्थिर नहीं करना उसे भ्रष्ट होने देना, उसके भ्रष्ट होनेसे बचानेका कोई उपाय नहीं करना स्थित्यकरण दोष कहलाता है। धर्मात्मा भाइयोंसे कोई किसीप्रकारका द्वेष रखना अथवा उनसे गाढप्रेम नहीं रखना अवात्सल्य है। धर्मात्मा भाइयोंका अज्ञान दूर नहीं करना अथवा इस पवित्र जैनधर्मका महत्व प्रगट नहीं करना अप्रभावना है।

३७६। इन उपर्युक्त पच्चीस दोषोंसे रहित सम्यग्दर्शन कैसा गिना जाता है—संसार भरके संपूर्ण कल्याण करनेवाला और मुक्तिरूपी स्त्रीको सुंदर दर्पणके समान अतिशय प्रिय।

३७७। संपूर्ण धर्मोंमें उत्कृष्ट धर्म कौनसा है—संपूर्ण धर्मोंमें सम्यग्दर्शन ही उत्तम धर्म है। इस सम्यक्त्व धर्मके समान तीनों काल और तीनों जगतमें अन्य कोई धर्म नहीं है।

३७८। पापोंमें सबसे बडा पाप कौन है—मिथ्यात्व। इस मिथ्यात्वके समान तीनों काल और तीनों जगतमें अन्य कोई पाप नहीं है।

३७९। यह समझकर कि उत्तम धर्म सम्यक्त्व है और सबसे बडा पाप मिथ्यात्व है मनुष्यको क्या करना चाहिये—अनेक कारणसामग्री मिलाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये। यदि वह प्राप्त हो गया हो तो बडे प्रयत्नसे उसकी रक्षा करनी चाहिये किसी भयसे अथवा किसी अन्य दोषके संसर्गसे उसे कभी नहीं छोडना चाहिये। यहां तक कि प्राणनाश होनेपर भी सम्यक्त्वकी ही रक्षा करनी चाहिये।

३८०। सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं—जो परस्पर अविरुद्ध सप्तभंगात्मक श्रुतज्ञान अर्थरूपसे श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है, और उसीको गणधर देवने ग्यारह अंग चौदहपूर्वमें पदरूपसे पृथक २ निरूपण किया है, जो भव्य जीवोंको तीनों जगत के संपूर्ण पदार्थ दिखलानेकेलिये दीपकके समान है, प्राणीमात्रका हित करनेवाला है, वही सम्यग्ज्ञान है। यही सम्यग्ज्ञान पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप निरूपण करनेवाला है। यही एक मुक्तिका मुख्य साधन है।

३८१। इस सम्यग्ज्ञानरूप महासागरके पार होनेका क्या उपाय है—इससे पार होनेके लिये अष्टप्रकारके आचारपूर्वक बुद्धिमानों को निरंतर अभ्यास करना ही एक नौका है इसी अभ्यासरूपी नौकाकेद्वारा इस सम्यग्ज्ञानरूप महासागरका पार पाया जा सकता है।

३८२। वे आठ प्रकारके आचार कौन २ हैं— कालाध्ययन १

विनय २ उपधान ३ बहुमान ४ गुर्वाघनपह्नव ५ व्यंजनाचार ६ अर्थाचार ७ और उभयाचार ८। ये आठ प्रकारके आचार श्रुतज्ञान बढानेके लिये मुख्य कारण हैं। सदा पठन पाठन करनेवालोंको इनका पालन अवश्य करना चाहिये।

३८३। कालाध्ययन किसे कहते हैं—सिद्धांत अथवा आगम का (किसी भी शास्त्रका) पठन पाठन पठनपाठनके योग्य समयमें ही करना, प्रातःकाल मध्याह्नकाल सायंकाल अर्द्धरात्रि ग्रहण आदि सदोष समयमें पठन पाठन नहीं करना कालाध्ययन आचार कहलाता है।

३८४। विनयाचार क्या है—आगमकी स्तुति और नमस्कारादि कर श्रुतभक्तिपूर्वक आगमका पठन पाठन करना ज्ञान का उत्तम विनयाचार कहलाता है।

३८५। उपधान किसे कहते हैं—गत्ता वेष्टनसे सुरक्षित रख कर शास्त्रका अध्यन करना उपधानाचार कहलाता है।

३८६। बहुमान आचार कौन कहलाता है—पूजा आसन प्रणाम करके निरंतर ज्ञानका अभ्यास करना अर्थात् आगमके पठन पाठनका अभ्यास निरंतर करना और वह उत्तम आसनसे पूजा प्रणामादि सत्कार पूर्वक करना बहुमान आचार कहलाता है।

३८७। अनपन्हव किसे कहते हैं—गुरु पाठक शास्त्र आदि

के गुण प्रकाश करना, उनके गुण और नाम नहीं छिपाना अनपन्हव आचार है।

३८८। व्यंजनाचार किसे कहते हैं—शुद्ध और व्यक्त अक्षरों में मूलमात्र (अर्थशून्य) आगमका पठन पाठन करना व्यंजनाचार कहलाता है।

३८९। अर्थाचार क्या है—पूर्ण अर्थ सहित सिद्धांतका पठन पाठन करना अर्थाचार कहलाता है।

३९०। उभयाचार किसे कहते हैं—शुद्ध शब्द और शुद्ध अर्थ सहित सिद्धांतका पठन पाठन करना उभयाचार कहलाता है

३९१। जो भव्यजीव इन आठ प्रकारके आचार पूर्वक आगमका पठन पाठन करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है—उन्हें संपूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति होती है, संपूर्ण विद्याओंकी सिद्धि हो जाती है, वे शीघ्र ही ज्ञानसागरके पारंगत हो जाते हैं। उनकी बुद्धि अतिशय विशाल हो जाती है, अनेक कर्मोंका संवर और क्षय हो जाता है कीर्त्ति विवेक आदि उत्तम२ गुण उनके सदा बढ़ते रहते हैं।

३९२। जो लोग उपर्युक्त आठ प्रकारके आचारसे रहित कालशुद्धि आदिके विना ही सिद्धांतका पठन पाठन करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है—उनका ज्ञान नष्ट हो जाता है, बुद्धि मंद पड़ जाती है, विवेकादि उत्तम गुण जाते रहते हैं, निरंतर कर्मका आस्रव होता रहता है। उनके शुभ आचार इष्टसिद्धि कभी नहीं हो सकती

३९३। वह कौनसा शास्त्र है जो योग्य समयमें ही पढ़ना चाहिये

प्रातःकालादि असमयमें नहीं पढ़ना चाहिये-जो शास्त्र गणधर देवों के रचे हुये हैं अथवा ग्यारह अंग दशपूर्वधारियोंके रचे हुये हैं तथा श्रुतकेवलियोंके रचे हुये हैं अथवा प्रत्येकबुद्धि-ऋद्धिके धारण करनेवाले योगियोंके रचेहुये हैं वे शास्त्र योग्य समयमें ही पढ़ने चाहिये। असमयमें कभी नहीं पढ़ने चाहिये

३९४। इन उपर्युक्त शास्त्रोंके सिवाय साधारण आचार्योंके बनाये हुये और भी अनेक शास्त्र हैं वे असमयमें पढ़ना चाहिये या नहीं--जो पंचाचार अर्थ अथवा आराधना आदिको निरूपण करने वाले शास्त्र हैं अथवा तीर्थंकरोंके पुराण हैं,जो शास्त्र चारित्र और धर्मको निरूपण करनेवाले हैं, वा कथा स्तोत्रादिके ग्रंथ हैं अथवा उपर्युक्त शास्त्रोंसे भिन्न जो अनेक प्रकारके शास्त्र हैं वे सब सदा पढ़ने योग्य हैं।

३९५। जो पुरुष सदा ज्ञानका अध्ययन करते रहते हैं उन्हें क्या फल मिलता है-उनकी पांचो इंद्रियां वश हो जाती हैं मन वश हो जाता है और रागद्वेष सब दूर हो जाते हैं। राग द्वेष के नष्ट हो जानेसे तथा इंद्रियें और मनके वश हो जानेसे उन्हें धर्म्य शुक्लादि सद्ध्यान और शुभ लेश्याओंकी प्राप्ति होती है। सद्ध्यान और शुभ लेश्या होनेसे कर्मोंका क्षय होता है और कर्मक्षय होनेसे स्वर्ग मोक्षादिकी अनेक सुख संपदायें प्राप्त होती हैं।

३९६। जो घोर तपश्चरण करनेवाले हैं किंतु अज्ञानी हैं उन्हें उस

तपसे क्या फल मिलता है—उन्हें सदा कर्मरूप संपदाओंकी प्राप्ति होती रहती है अर्थात् उनके सदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है। कर्मोंका आस्रव होनेसे उनका संसार (जन्ममरण) बढ़ता है और संसार बढनेसे उन्हें सदा दुःख ही भोगने पड़ते हैं।

३९७। यह ऐसा क्यों होता है अर्थात् अज्ञान पूर्वक तपश्चरणसे कर्मास्रव क्यों होता है—इसका कारण यह है कि जो अज्ञानी है वह न तो आस्रव संवरको ही जानता है और न उनके कारणोंको जानता है। हेय (छोडने योग्य राग द्वेषादि) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य उत्तमक्षमा रत्नत्रय आदि) तत्त्वोंको भी वह नहीं जानता। इसीलिये अज्ञानीका तपश्चरण करना व्यर्थ है।

३९८। मुनियोंके लिये ऐसा उत्तम नेत्र कौनसा है जो संसारके संपूर्ण पदार्थ देख सके—आगमका ज्ञान। यह शास्त्रज्ञान ही तीनों जगत के संपूर्ण तत्त्वोंको दिखानेकेलिये दीपकके समान है।

३९९। अंधा कौन है—जो ज्ञानरूपी नेत्रसे रहित है हेय उपादेय आदि तत्त्वोंको नहीं जानता वही संसार परंपराको बढानेवाला अंधा है।

४००। अज्ञानी ही संसारपरंपराको बढानेवाला क्यों है—क्योंकि अज्ञानी पुरुष जिस कर्मको असंख्यात जन्मोंमें कायक्लेशादि घोर तपश्चरण कर नष्ट करेगा उसी कर्मको गुप्ति समिति

आदि संवरोंके कारणोंको धारण करनेवाला ज्ञानी पुरुष ध्यानरूपी अग्निकेद्वारा क्षणभरमें नष्ट कर सकता है। अतएव कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करना ज्ञानसाध्य ही है।

४७१। अज्ञानीपुरुषके तपोबलसे कर्मक्षय क्यों नहीं होता है— क्योंकि अज्ञानी पुरुष तपश्चरणसे जितने कर्म नष्ट करता है उनसे कहीं अधिक कर्म अज्ञानवश वह उपार्जन कर लेताहै।

४७२। कान किसके निष्फल हैं— जिन्होंने अपने कानोंसे संसारभावके हित करनेवाले अहिंसा धर्मको प्रगट करनेवाला श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ आगम नहीं सुना है उनके कान सर्वथा व्यर्थ हैं। केवल छिद्र समान हैं।

४७३। किसके कान सफल हैं—जो पूर्णज्ञान संपादन करनेके लिये निरंतर इस जिनागमका श्रवण करते हैं उन्हींके कान सफल और हित करनेवाले हैं।

४७४। कौनसी जिह्वा सफल है— जो जन्म मरणके संताप शांत करनेके लिये निरंतर ज्ञानरूपी अमृत पिया करती है अर्थात् जिस जिह्वासे निरंतर पठन पाठन होता रहता है वहीं जिह्वा सार्थक और उत्तम है।

४७५। व्यर्थ जिह्वा कौनसी है-जिसने सम्यग्ज्ञानरूपी अमृतका आस्वादन करना अर्थात् जिनागमका पठन पाठन करना तो छोड़ दिया है और भारत रामायण आदि मिथ्याशास्त्र तथा कुकथा आदिमें सदा लीन रहती है वही जिह्वा

पापिनी सर्पिणीके समान व्यर्थ है।

४०६। मिथ्याशास्त्र कौन २ कहलाते हैं—जो धूर्त्तलोगोंने संसारको ठगनेकेलिये अनेक मत मतांतरोंके निरूपण करनेवाले अनेकप्रकारके स्मृति वेद आदि बनाये हैं वे सब मिथ्याशास्त्र हैं।

४०७। मिथ्याशास्त्रोंके पढनेमे क्या फल होता है—बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जानेसे मूर्खता बढ जाती है इसके सिवाय इन ग्रंथोंके पठनपाठनमात्रसे नरकादिकके अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

४०८। हृदय किसका सार्थक समझना चाहिये— जो लोग केवल मुक्तिकेलिये निरंतर जिनागमका चिंतवन करते रहते हैं ध्यान करते रहते हैं उन्हींका हृदय सार्थक गिना जाताहै।

४०९। सम्यग्ज्ञानका इतना बड़ा माहात्म्य समझकर पंडितोंको क्या करना उचित है—अज्ञान नष्ट करनेकेलिये और केवलज्ञानकी प्राप्तिहोनेकेलिये प्रयत्नपूर्वक निरंतर ज्ञानाभ्यास करना उचित है।

४१०। भगवन् चारित्र कितनेप्रकारका है—तेरह प्रकारका है। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति, यही तेरहप्रकारका चारित्र तीनों जगतमें मान्य और वंद्य है स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला भी यही है।

४११। पांच महाव्रत कौन २ हैं— अहिंसामहाव्रत, सत्यम-

हाव्रत, अचौर्यमहाव्रत, ब्रह्मचर्यमहाव्रत, और परिग्रहत्याग-महाव्रत, अर्थात् हिंसा झूठ चोरी अब्रह्म और अंतरंग बहिरंग परिग्रह इन पांचों पापोंका मन बचन काय तथा कृत कारित अनुमोदनासे पूर्णतया सर्वथा त्याग करदेना महाव्रत कहलाते हैं, ये महाव्रतही संपूर्ण अर्थोंको सिद्ध करनेवाले हैं।

४१२। इनको महाव्रत क्यों कहते हैं—चारों पुरुषार्थोंमें मोक्ष-पुरुषार्थ ही महान् और पूज्य है उसकी प्राप्ति इन महाव्रतोंसे ही होती है इसलिये इनको महाव्रत कहते हैं। अथवा तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदि महापुरुषोंने भी इन्हें स्वयं धारण किया था इसलिये भी ये महाव्रत कहलाते हैं। ये व्रत सबसे बड़े हैं, पूज्य हैं, संपूर्ण अर्थोंको सिद्ध करनेवाले हैं इसलिये इनकी महाव्रत संज्ञा सार्थक है।

४१३। अहिंसामहाव्रत किसे कहते हैं—शुद्ध मन बचन कायसे तथा कृत कारितअनुमोदनासे गमनआगमनादि संपूर्ण क्रियाओंमें सब जगह सदा अपने आत्माके समान प्रयत्नपूर्वक षट्कायके संपूर्ण जीवोंकी रक्षा करना अहिंसामहाव्रत कहलाता है। यह अहिंसमहाव्रत ही अन्य संपूर्ण व्रतोंका मूल कारण है और सज्जनोंके संपूर्ण कल्याण करनेवाला है।

४१४। अहिंसामहाव्रत ही अन्य संपूर्ण व्रतोंका मूलकारण क्यों है—क्योंकि श्रीजिनेंद्रदेवने गुप्ति समिति आदि अन्य संपूर्ण व्रत केवल इसी अहिंसामहाव्रतको दृढ़ करने और इसकी रक्षा

करनेकेलिये निरूपण किये हैं।

४१५। सत्यमहाव्रत किसे कहते हैं— भव्यजीवोंको केवल धर्मोपदेश देनेकेलिये सबका हित करनेवाले, प्रिय, विरोध-रहित, परिमित, साररूप, यथार्थ, किसी पदार्थ वा किसी उत्तम कथाको कहनेवाले, और परनिंदा तथा आत्मप्रशंसासे रहित बचन कहना सत्यमहाव्रत कहलाता है।

४१६। यह सत्य महाव्रत किसके हो सकता है—उसीके कि जो सदा मौन धारण पूर्वक रहता है अथवा कभी २ केवल धर्मसिद्धिके लिये विचारपूर्वक हित मित रूप थोड़ी बात चीत करता है।

४१७। जो मिथ्या भाषण करनेवाले झूठा उपदेश देनेवाले भेषी गुरु हैं वे कैसे समझे जाते हैं—ऐसे लोग अन्यलोगोंको ठगनेमें नितांत चतुर और चांडालके समान अति निंद्य समझे जाते हैं

४१८। अचौर्य महाव्रतका क्या स्वरूप है—विना दिया हुआ तृणमात्र भी पर द्रव्य मनवचनकायसे तथा कृतकारित अनुमोदनासे ग्रहण नहीं करना, चाहे वह द्रव्य किसी घर मार्ग वा बनमें पड़ा हो चाहे उसे कोई भूल गया हो अथवा [वह] नष्ट होकर पड़ा हो वह कैसा ही क्यों न हो कालसर्पके [स]मान उसे कभी ग्रहण नहीं करना और न ग्रहण करनेकी [क]भी इच्छा करना अचौर्य महाव्रत कहा जाता है।

४१९। जो लोग अचौर्य महाव्रतको धारण नहीं करते उनकी

क्था गति होती है—उन्हें वध बंधन आदि अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं उनका सर्वनाश हो जाता है और अंतमें उन्हें नरकादि दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़ते हैं।

४२० । ब्रह्मचर्य महाव्रत क्या है—संसारकी संपूर्ण स्त्रीमात्रको माता बहिन और पुत्रीके समान मानना अर्थात् जो स्त्रियां छोटी हैं उन्हें पुत्रीके समान मानना, जो बराबरवाली युवती हैं उन्हें बहिनके समान मानना, और जो वृद्धा हैं उन्हें माताके समान मानना तथा कामोत्पादक कुत्सित रागादिकोंको छोड़कर, ब्रह्मचर्यको घात करनेवाली दश विराधनाओंका त्याग कर सर्वथा वीतराग धारण करलेना ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है।

४२१ । ब्रह्मचर्यको घात करनेवाली दश प्रकारकी विराधना कौन २ हैं—स्त्रियोंके साथ संबंध रखना १ सरस और पौष्टिक आहार करना २ अतर फुलेल आदि सुगंधी पदार्थ तथा फूल माला आदिका सेवन करना ३ अतिशय मृदुशय्या तथा मृदु आसनका व्यवहार करना ४ अच्छे २ वस्त्र और आभूषणोंसे शरीरको सुसज्जित रखना ५ गीत वाद्य आदि कामोद्दीपक सामिग्रियोंका संयोग मिलाना ६ धन धान्यादिका संग्रह करना ७ कुशील और निंद्य लोगोंकी संगतिमें रहना ८ राजा महाराजा आदि बड़े आदमियोंकी सेवा करना ९ और रात्रिमें इधर उधर घूमना १० ये दश शीलकी विराधना (शी-

लको घात करनेवाली) कही जाती हैं।

४२२। स्त्रियोंके साथ संबंध रखनेसे क्या दोष है— स्त्रियोंके साथ संबंध रखनेसे अतिशय असह्य कामाग्नि प्रज्वलित होती है जिससे चिरकालसे पालन किया हुआ ब्रह्मचर्य भी नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य नष्ट होनेसे संपूर्ण व्रत क्षय होजाते है, व्रतक्षय होनेसे घोर पाप उत्पन्न होता है, पापसे वध बंधनादिके दुःख भोगने पड़ते हैं और दुःख भोगनेसे इस आत्माका सर्वनाश हो जाता है अर्थात् इसके ज्ञानादि गुण सब नष्ट होजाते हैं जिससे उसे नरकादि दुर्गतियोंमें अवश्य भ्रमण करना पड़ता है।

४२३। ब्रह्मचर्य नष्ट हो जानेसे और क्या होता हैं— चित्त चंचल हो जाता है चित्त चंचल होजानेसे शुभ ध्यान नहीं हो सकता, इसके सिवाय संसारमें अपकीर्ति फैल जाती है और कलंक तो तत्काल ही ऐसा लगजाता है जो कभी छूट ही नहीं सकता।

४२४। सरस और पौष्टिक आहारसे क्या हानि होती है—काम रूप अग्नि उद्दीपन हो जाती है जिससे संपूर्ण व्रत भस्म हो जाते हैं और अंतमें अनेक दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़ते हैं।

४२५। गंधमाल्य आदि सुगंधित पदार्थ सेवन करनेसे क्या होता है- अनेक उत्कट रोग हो जाते हैं रोग होनेसे उद्धतता मादकता पागलपन आदि अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे

कि फिर चिरकालतक अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

४२६। कोमल शय्या और कोमल आसन आदिका व्यवहार करनेसे क्या हानि होती है —कोमल शय्या पर सोने किंवा कोमल आसन पर बैठनेसे स्पर्शन इंद्रियको सुख मिलता है स्पर्शन इंद्रियको सुख मिलनेसे तत्काल ही तीव्र कामज्वर हो आता है जिससे फिर वही संसारके नाना दुःख भोगने पड़ते हैं।

४२७। वस्त्र आभूषण आदि पहननेसे क्या होता हैं--राग द्वेष काम क्रोध आदि अंतरंग शत्रुओंकी वृद्धि होती है। इनके बढनेसे महा पाप होता है और पाप होनेसे नरक निगोदादिके दुःख भोगने पड़ते हैं।

४२८। सराग गीत वाद्य आदि सुननेसे क्या हानि होती है-संवेग वैराग्य आदि आत्माके उत्तम २ गुण सब नष्ट हो जाते हैं और आत्माके गुण नष्ट हो जानेसे जन्म लेना ही निरर्थक हो जाता है।

४२९। धन धान्यादि संग्रह करनेसे क्या हानि होती है—महाव्रत सब नष्ट हो जाते हैं। महाव्रत नष्ट हो जानेसे वह भ्रष्ट हो जाता है और भ्रष्ट होनेसे सैंकडों अनर्थ आ उपस्थित होते हैं।

४३०। कुशील और व्यभिचारी लोगोंके साथ रहनेसे क्या हानि होती है-शील ब्रह्मचर्य आदि सद्गुण सब नष्ट हो जाते

हैं सद्गुण नष्ट हो जानेसे संसारमें अपकीर्त्ति फैलती है, अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और परलोकमें दुर्गतियोंके दुःख भोगने पड़ते हैं।

४३१। राजा महाराजाओंकी सेवा करनेसे क्या होता है— रत्नत्रय नष्ट हो जाता है एक रत्नत्रय के नष्ट होनेसे सद्गुण भी सब नष्टभ्रष्ट हो जाते हैं और नरकादि दुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है।

४३२। रात्रिमें इधर उधर घूमनेसे क्या हानि है— रात्रिमें प्रायः व्यभिचारिणी स्त्रियां और चोर फिरा करते हैं। रात्रिमें घूमनेवालोंको प्रायः इन्हींसे भेंट और समागम होता है जिससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है, धन हरण हो जाता है अ-पकीर्त्ति फैल जाती है और परलोकमें दुर्गतियोंमें जाना पड़ता है।

४३३। जो पुरुष उपर्युक्त शीलके दोषोंमेंसे कोई भी दोष नहीं छोडता उसके क्या हानि होती है—जब ये एक एक दोष अनेक अनर्थं उत्पन्न करनेवाले हैं तब समस्त दोष मिलकर क्या सं-पूर्ण व्रतोंको नष्ट नहीं कर सकते ? अवश्य करदेंगे। अर्थात् इन दोषोंसे सब व्रत नष्ट हो जाते हैं और व्रत नष्ट होनेसे [illegible]सारके अनेक दुःख देखने पड़ते हैं।

४३४। ब्रह्मचर्य के घात करनेवालोंको क्या २ दुःख उठाने पड़ते हैं— [illegible]धे सूकर आदि नीच पशुओंके समान जगह जगहसे उन्हें

निकलना पड़ता है जगह २ अपमान सहने पड़ते हैं और जगह जगह उन्हें मार खानी पड़ती है।

४३५। दृढतासे ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंको क्या लाभ होता है— इंद्रादिक बड़े बड़े देव उनके चरणकमलोंको नमस्कार करते हैं और सेवकके समान उनकी सेवा करते हैं इसके सिवाय परलोकमें भी उन्हें स्वर्ग मोक्षके अनेक सुख प्राप्त होते हैं।

४३६। परिग्रह त्याग महाव्रत किसे कहते हैं—मिथ्यात्व १ स्त्री-वेद २ पुंवेद ३ नपुंसकवेद ४ हास्य ५ रति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्सा १० क्रोध ११ मान १२ माया १३ लोभ १४ ये चौदह अंतरंग परिग्रह हैं तथा क्षेत्र १ वास्तु २ धन ३ धान्य ४ दासीदास ५ हाथी घोडे आदि ६ शय्या ७ आसन८ रथपालकी आदि सवारी ९ और रुपये पैसे धातु वर्त्तन आदि १० ये दश बाह्य परिग्रह हैं। जो पुरुष शुद्ध मन बचन काय से इन चौबीस परिग्रहोंका पूर्णतया त्याग करता है और म-मत्व रूप मूर्च्छा[1] को चित्तसे सर्वथा हटा देता है उसके यह पूज्य आकिंचन्य नामका परिग्रह त्याग महाव्रत होता है।

४३७। परिग्रह रखनेसे क्या २ हानि होती है—क्रोध लोभ भय आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं शुभ ध्यान शुभ लेश्या आदि आत्माके उत्कृष्ट गुण सब क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं

---

१ शुद्ध आत्मासे भिन्न शरीर परिग्रहादि वस्तुओंको पालन पोषण रक्षण आदि करनेकी इच्छाविशेषको मूर्च्छा कहते हैं।

और उनके बदले अशुभ ध्यान और अशुभ लेश्या आदि उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे महापाप होता है और पापसे नरक निगोद आदि अनेक दुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है।

४३८। परिग्रह त्याग करनेसे क्या लाभ होता है-क्रोध मान माया लोभ आदि अंतरंग शत्रुओंका नाश हो जाता है अंतरंग शत्रुओंके नाश होनेसे धर्म्यध्यान अथवा शुक्लध्यानकी प्राप्ति होती है और धर्म्य वा शुक्लध्यानकी प्राप्ति होनेसे स्वर्ग मोक्षादिके अनेक सुख प्राप्त होते हैं।

४३९। मुनियोंको सुंदर ग्रंथ अथवा और भी सुंदर धर्मोपकरण रखनेसे क्या हानि लाभ है—सुंदर धर्मोपकरण रखनेसे चित्त क्षोभित हो जाता है, और चित्त क्षोभित हो जानेसे तप नष्ट हो जाता है। यद्यपि सुंदर धर्मोपकरण रखनेसे शुभ ध्यान और शुभ लेश्यायें हो सकती है और उनसे देवगतिमें उत्पन्न होना आदि कुछ कल्याण भी हो सकता है परंतु मोक्षरूप सद्गति उनसे कभी नहीं हो सकती।

४४०। जो मुनि भेषी परिग्रह सहित हैं वे कैसे हैं—जो मुनि कर भी परिग्रह रखते हैं अथवा परिग्रह रखनेकी आकांक्षा रते हैं वे निंद्य कुत्तोंके समान हैं केवल बाह्य सुख आस्वान करनेमें ही सदा लीन रहते हैं।

४४१। समिति कौन २ हैं—ईर्यासमिति, भाषासमिति,

एषणासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और प्रतिष्ठापनसमिति ये पांच समिति हैं ये समिति अहिंसा सत्य आदि व्रतों की जननी हैं और कर्मोंका आस्रव रोकनेके लिये तथा भव्य-जीवोंको मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये ही श्रीजिनेंद्रदेवने इनका विधान निरूपण किया है।

४४२। ईर्यासमिति किसे कहते हैं—जब सूर्य खूब चढ़ आता है गाड़ी घोड़े सब चलने लगते हैं जिनसे कि मार्ग सब प्रासुक (निर्जीव) हो जाता है तब मुनिगण उस प्रासुक मार्ग से आगेकी चार हाथ भूमि नेत्रोंसे अच्छी तरह देख शोध कर धीरे २ बड़े यत्नसे गमन करते हैं और वह भी केवल धर्मवृद्धिकेलिये करते हैं उनके इसप्रकार गमन करनेको उत्तम ईर्यासमिति कहते हैं।

४४३। रात्रिमें गमन करनेसे क्या हानि है-रात्रिमें गमन करनेसे उनके पैरसे स्थूल पंचेंद्रिय जीव भी मर जाते हैं फिर भला सूक्ष्म जीवोंकी तो बात ही क्या है। अतएव अनेक जीवोंका घात होनेसे रात्रिमें गमन करनेवालोंके अहिंसादिक सब व्रत नष्ट हो जाते हैं।

४४४। भाषासमिति क्या है—ऐसे वचन कहना कि जो हितरूप हो, परिमित हों, प्रिय हों, साररूप हों, धर्म अथवा तत्त्वोंका निरूपण करनेवाले हों, दश प्रकारकी कुभाषाओंसे रहित

हों आगमानुसार और जगत मान्य हों तथा जो केवल मोक्ष-मार्गकी प्रवृत्तिके लिये ही कहे गये हों। ऐसे बचन कहनेको भाषासमिति कहते हैं।

४४५। दशप्रकारकी कुभाषा कौन २ हैं-कर्कशा १ कटुक २ पुरुष ३ (कठिन) निष्ठुर ४ दूसरोंको क्रोध उत्पन्न करनेवाली ५ मध्यकृशा ६ मानिनी ७ अभयंकरी ८ छेदंकरी ९ और भयंकरी १०।

४४६। जो लोग भाषासमितिका पालन नहीं करते उन्हें क्या फल मिलता है—उनके सदा पापसंग्रह होता रहता है जिससे उन्हें नरकादि दुर्गतियोंमें पड़ना पड़ता है। अतएव ऐसे लोगोंकी दीक्षा लेना और तप करना सब व्यर्थ है।

४४७। एषणासमिति किसे कहते हैं —मुनि लोग भिक्षावृत्ति से जो नौ प्रकारसे विशुद्ध चौदह मल बत्तीस अंतराय और ब्यालीस दोषोंसे रहित केवल शरीरकी स्थिति रखनेके लिये शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं उसे ऐषणासमिति कहते हैं।

४४८। मुनि लोग भिक्षाभोजन भी क्यों करते हैं—केवल क्षुधा की बेदनाको शांत करनेकेलिये और वैयावृत्ति षट् आवश्य-क उत्तम संयम प्राणरक्षा तथा उत्तम क्षमा आदि दशलाक्ष-णिक धर्म पालन करनेकेलिये ही मुनिलोग शुद्ध अनिंद्य भोजन ग्रहण किया करते हैं। उपवासके बाद पारना रूपसे ग्रहण करते हैं अन्यथा सदा एकबार ही ग्रहण किया करते हैं

४४९। सदोष आहार ग्रहण करनेवालोंकी क्या हानि होती है- सदोष आहार ग्रहण करनेसे षट्कायके जीवोंकी हिंसा होती है और हिंसा होनेसे उनका मौनव्रत यम उपवास योग आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं।

४५०। आदाननिक्षेपणसमिति किसे कहते हैं --पुस्तक कमंडलु आदि धर्मोपकरण कहीं रखने हों अथवा कहींसे उठाने हों तो मुनिगण उसे खूब देखकर और कोमल पीछीसे बारं बार शोधकर रक्खेंगे वा उठावेंगे जिससे किसी सूक्ष्म जीव का घात न हो जाय इसीको अर्थात् धर्मोपकरणको देख शोधकर उठाने रखनेको आदाननिक्षपेणसमिति कहते हैं।

४५१। पिच्छिका (पीछी) कैसी होनी चाहिये--जो रज (धूलि) को हटा सके स्वेद (पसीना) को सोख सके जो मृदु हो सुकोमल हो और छोटी हो अर्थात् जिसमें रजको हटाना पसीना सोखना मृदुता कोमलता और लघुता ये पांच गुण हों वही पीछी उत्तम है। ये गुण प्रायः मयूरपुच्छकी बनी हुई पीछीमें ही पाये जाते हैं।

४५२। इस आदाननिक्षेपणसमितिके विना क्या हानि होती है- मुनियोंके धर्मोपकरण रखने उठाने आदि कार्योंमें स्थूल तथा सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा होती है और हिंसा होनेसे उनका दीक्षा लेना तप करना और जन्म लेना सब व्यर्थ हो जाता है

४५३। प्रतिष्ठापनासमिति किसे कहते हैं— किसी एकांत भूमिको बड़े प्रयत्नसे देख और पीछीसे शोधकर मलमूत्र आदि

का उत्सर्ग करना प्रतिष्ठापना समिति कहलाती है ।

४५४। इस प्रतिष्ठापनसमितिके विना क्या हानि होती है—प्रतिष्ठापनासमितिके विना छोटे २ पंचेंद्रिय जीवों तककी हिंसा और उनको पीड़ा होती है फिर विकलत्रय जीवोंके घातका तो कहना ही क्या है। अर्थात् उनकी भी हिंसा होती है और हिंसा होनेसे नरकादि दुर्गतियां अवश्य भोगनी पड़ती है।

४५५। हे भगवन्! श्रीजिनेंद्रदेवने इन पांच समितियोंका निरूपण किस लिये किया है —केवल अहिंसा महाव्रतकी पूर्णतया सिद्धि होनेकेलिये। क्योंकि ये समिति अहिंसाव्रतकी जननी हैं। इनसे पूर्णतया अहिंसाव्रत पालन होता है।

४५६। जो मुनि समितियोंका पालन नहीं करते उनकी क्या हानि होती है-उनके महाव्रत सब नष्ट हो जाते हैं तप करना और घर छोड़ना भी व्यर्थ हो जाता है उनका केवल संसार ही बढ़ता रहता है। क्योंकि समतियोंके बिना हिंसा अवश्य होती है और हिंसासे ये उपर्युक्त सब बातें होती हैं।

४५७। समितियोंका पालन करनेसे क्या लाभ होता है-उनके महाव्रत पूर्णतया पालन होते हैं समितियोंके पालन करनेसे संवर निर्जरा ध्यान तप और अनर्घ मोक्षपदकी प्राप्ति होती है।

४५८। तीन गुप्ति कौन २ हैं——मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति। मनवचनकायकी क्रियाको रोकना गुप्ति कहलाती है ये गुप्तिही आस्रवको रोकनेवाली और मोक्ष देनेवाली हैं।

४५९। मनोगुप्ति किसे कहते हैं-मनके संपूर्ण संकल्प रोक

कर उसे केवल ध्यान अध्ययन और संयममें लगाना मनो-गुप्ति कहलाती है ।

४६० । मुनियोंको मनोगुप्तिसे क्या लाभ होता है—संपूर्ण कर्मों-का संवर होता है, ध्यानकी शुद्धि होनेसे अनंत कर्मोंका क्षय होता है और कर्मक्षय होनेसे शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

४६१ । मनोगुप्ति पालन न करनेसे क्या हानि होती है—चिर-कालतक संसारमें परिभ्रमण करना पड़ता है इसलिये मनो-गुप्ति पालन न करनेवालोंका तपश्चरण करना सर्वथा व्यर्थ है

४६२ । वचनगुप्ति किसे कहते हैं-मौन धारण कर वचनरूप क्रियाको सर्वथा रोकना अथवा बचनकी अन्य क्रियाओं को रोक कर उसे केवल सिद्धांतके पठन पाठनमें लगाना वच-नगुप्ति कहलाती है ।

४६३ । वचनगुप्तिसे क्या लाभ है-रागद्वेष सब छूट जाते हैं निर्विघ्नतासे उत्तम ध्यानकी प्राप्ति होती है और ध्यानसे स्वर्ग मोक्षादि संपूर्ण अर्थोंकी सिद्धि हो जाती है ।

४६४ । वचनगुप्तिके विना क्या हानि होती है-जो मुनि वचन गुप्ति पालन नहीं करते उनसे बहुतसे बचन यद्वा तद्वा, अ-नर्थक और धर्मसे रहित भी निकल जाया करते हैं जिससे कि उन्हें संसारमें परिभ्रमण करना पड़ता है ।

४६५ । कायगुप्ति किसे कहते हैं—कायोत्सर्ग आदि दृढ आ-सन धारण कर शरीरको पर्वतके समान निश्चल रखना काय-गुप्ति कहलाती है ।

४६६। तीनों गुप्तियोंके पालन करनेसे क्या लाभ होता है—धर्म्य ध्यान अथवा शुक्लध्यानकी प्राप्ति होती है जिससे आत्माको शुद्धात्मजन्य एक अद्भुत आनंदकी प्राप्ति होती है। उस आनंदसे अनंत कर्मोंका क्षय हो जाता है और ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय ये घातिया कर्म सब नष्ट हो जाते है। घातियाकर्मोंके नष्ट होनेसे लोकालोकको प्रकाश करने वाले उस केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है जिसे त्रैलोक्यनाथ तीर्थंकर भी पूज्य समझते हैं और अंतमें अनंतसुखोंके समुद्र मोक्षपुरुषार्थकी प्राप्ति होती है।

४६७। इन गुप्तियोंके पालन न करनेसे क्या हानि होती है— जो गुप्तियोंका पालन नहीं करते उनके न संवर ही होता है और न निर्जरा होती है। उनके सदा कर्मोंका आस्रव ही होता रहता है जिससे उन्हें फिर संसारमें भ्रमण करना पड़ता है।

४६८। मनवचनकायकी क्रियाओंमेंसे ऐसी कौनसी क्रिया है जिससे निरंतर कर्मका आस्रव होता रहता है—ऐसी मनकी क्रिया है। क्योंकि चंचलचित्त होनेसे निरंतर कर्मका आस्रव होता है और वचन तथा कायकी क्रियासे कभी २ कर्मास्रव होता है।

४६९। तीनों गुप्तियोंमेंसे किस गुप्तिके द्वारा कर्मक्षय अधिक होता है— मनोगुप्तिके द्वारा। क्योंकि सद्ध्यान मनोगुप्तिसे ही होता है और सद्ध्यानसे क्षणभरमें अनंत कर्मोंका क्षय हो जाता है।

४७०। इसका क्या कारण है अर्थात् मनकी क्रियासे कर्मास्रव अधिक अधिक क्यों होता है और मनोगुप्तिसे क्यों अधिक कर्मक्षय होता है—

क्योंकि रागद्वेषरूप मनके विकल्पोंमे क्षणभरमें अनंत कर्मों का बंध हो जाता है, और रागद्वेषरहित वीतराग अवस्थासे क्षणभरमें अनंतकर्मोंका क्षय हो जाता है इसीलिये ऐसा कहा गया है।

४३१। ऊपर कहे हुये तेरहप्रकारके चारित्र पालन करनेसे क्या-लाभ होता है—सर्वार्थसिद्धि तकके उत्तम २ सुख और महोदय प्राप्त होते हैं।

४३२। इस संसारमें किसका जीवन प्रशंसनीय है— उसीका कि जो प्रमादरहित चंद्रमाके समान निर्मल चारित्रका पालन करता है।

४३३। किसका जीवन निष्फल है—जो व्रतोंको धारण करके भी मोहके वश होकर निर्मल चारित्र पालन नहीं कर सकते उनका यह जीवन सर्वथा निष्फल है।

४३४। आयुष्य किसका प्रशंसनीय है—जो पुरुष स्वर्ग और मोक्षके कारण थोडेसे भी व्रतोंका बड़े प्रयत्नसे पालन करते हैं उन्हींका आयुष्य प्रशंसनीय गिना जाता है।

४३५। निंदनीय आयुष्य किसका है-जो इस पवित्र चारित्रका पालन नहीं करते निरंतर दुर्गतिके कारण पापोंका ही संग्रह करते रहते हैं उनका चिरकाल तक जीवित रहना भी निंदनीय है।

४३६। यह उपर्युक्त विषय समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना उचित है-मोहरूपी तस्करको मारकर मोक्षप्राप्त होनेकेलिये

जगतके सारभूत इस पवित्र चारित्रका पालन करना ही बुद्धिमानोंको सर्वथा उचित है।

४७७। संसारके सारभूत पदार्थोंमें उत्तम साररूप क्या है—यह रत्नत्रय ही तीनों जगतमें उत्कृष्ट साररूप है श्रीजिनेंद्रदेवके समान जगद्वंद्य यही है।

४७८। इन तीनों लोकोंमें सबसे दुर्लभ वस्तु क्या है—अंधेके लिये अद्भुत निधान (खजाना) के समान मनुष्योंकेलिये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति होनाही अतिशय दुर्लभ है।

४७९। इंद्र जिनेंद्र आदि बडे २ पुरुष भी निरंतर किसकी आराधना करते हैं-नितांत एकांत बनमें रहनेवाले योगी जिन आदि सभी बडे यत्नसे निरंतर इस रत्नत्रयका ही आराधना किया करते हैं।

४८०। इंद्र आदि बडे २ देव भी क्या २ चाहते रहते हैं—सदा रत्नत्रयका पालन करना और मोक्षकी प्राप्ति होना।

४८१। मनुष्योंकोलिये सबसे उत्तम भूषण क्या है—संसारमें सबसे अच्छी शोभा बढानेवाला तथा तीनों लोकोंकी लक्ष्मीको वश करनेवाला अतिउत्तम एक रत्नत्रय ही परम आभूषणहै।

४८२। मुक्तिरूपी सुंदर स्त्री किसपर आसक्त रहती है—जो पुरुष रत्नत्रय आभूषणसे सुसज्जित है तपोधनसे धनाढ्यहै उसी पुरुषपर यह मुक्तिकामिनी सदा प्रसन्न रहती है।

४८३। संपूर्ण जैनसिद्धांतोंका सारभूत रहस्य क्या है—महात्मा-

ओंकेलिये सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रकी पूर्ण प्राप्तिका होना ही जैनसिद्धांतोंका रहस्य है। संपूर्ण कल्याणोंको देने-वाला भी उनकेलिये यही है।

४८४। मुनियोंका जीवन क्या है-यह ही रत्नत्रय।

४८५। संसारके संपूर्ण प्राणियोंको हित करनेवाला कौन है—यह ही रत्नत्रय।

४८६। पूज्य महात्मओंकेलिये सदा प्रियवस्तु कौन है-यहही रत्नत्रय

४८७। तीनों लोकोंमें अति उत्तम वस्तु क्या है-यहही रत्नत्रय।

४८८। विश्वनाथ श्रीजिनेंद्रदेव भी किसको नमस्कार करते हैं—इसी निर्मल रत्नत्रयको।

४८९। ऊर्ध्व और मध्यलोकमें सज्जनोंके परमपूज्य वस्तु क्या है--यह ही विशुद्ध रत्नत्रय।

४९०। पूर्वकालके दक्षपुरुष किसकारणसे मोक्ष गये—इसी रत्न-त्रयके सेवन करनेसे।

४९१। अब किस कारणसे भव्यजीव मोक्ष जा रहे हैं-इसी रत्नत्रयके सेवन करनेसे।

४९२। आगे किसकारणसे मोक्ष जांयगे—इसी रत्नत्रयके सेवन करनेसे।

४९३। क्या २ शुभाचरण करनेसे सज्जन पुरुषोंको यह रत्नत्रय सिद्ध होता है--जीवादिक यथार्थ तत्त्वोंकी श्रद्धा करनेसे उन-का यथार्थ ज्ञान होनेसे और तद्रूप आचरन करनेसे यह उत्कृष्ट रत्नत्रय सिद्ध हो जाता है।

४९४। यह तत्त्वश्रद्धानरूप व्यवहार रत्नत्रय किसका साधक है—
यह व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रयका साधक है।

४९५। योगियोंके जो निश्चय रत्नत्रय होता है उसका क्या लक्षण है--
निश्चय रत्नत्रयका स्वरूप आगेके परिच्छेदमें निरूपण करेंगे।

यह रत्नत्रय जोकि मुक्तिरूप स्त्रीको वश करनेवाला है जन्ममरणरूप संसारको हरण करनेवाला है, कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला है, जगत्पूज्य है, गुणोंका घर है, संपूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला है समस्त सुखोंको देनेवाला है, संसारमें जिसको अन्य कोई उपमा नहीं। जिसको सब वंदना करते हैं तीनोंलोक नमस्कार करता है, जो सब धर्मोंका सार है और जिसका स्वरूप इस अध्यायमें मैंने निरूपण किया है वह निर्मल रत्नत्रय सदा मेरे हृदयमें प्रगटरूपसे विराजमान रहो।

सबके हित करनेवाले जिन तीर्थंकरदेवने भव्यजीवोंको मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये यह श्रुतज्ञान निरूपण किया है तथा जो सिद्ध भगवान् इसी श्रुतज्ञानके प्रभावसे अशरीर होकर मुक्त हुये हैं जो आचार्य स्वपर कल्याणार्थ बड़ी भक्तिसे निरंतर इसी श्रुतज्ञानका उपदेश देते रहते हैं जो उपाध्याय और साधु रातदिन इसका मनन करते रहते हैं उन सबको मैं बारंबार नमस्कार करता हूं।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रंथे सकलकीर्त्याचार्य विरचिते
मोक्षमार्गवर्णनो नाम तृतीयपरिच्छेदः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

संपूर्ण तत्त्वोंको निरूपण करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेव तथा सिद्धभगवानकी और इन्हीं तत्त्वोंका उपदेश देनेवाले आचार्य उपाध्याय साधुगणोंकी मैं (सकलकीर्तिआचार्य) स्तुति करता हूं ।

४९६ । भगवन् निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं—अपने अंतःकरणमें चिदानंदस्वरूप पंच परमेष्ठियोंका और सिद्धोंके शुद्ध स्वरूपके समान अपने शुद्ध आत्माका विश्वास करना, प्रतीति करना तथा श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है यह शुद्ध आत्माका श्रद्धान व्यावहारिक संपूर्ण विकल्पोंसे रहित है और मुक्तिरूपी स्त्रीको साक्षात वश करनेवाला है ।

४९७ । निश्चयनयसे यह अपना आत्मा सिद्धोंके समान कैसे हो सकता है—सिद्धोंमें जो गुण हैं वे निश्चयनयसे इस आत्मामें भी पाये जाते हैं इसलिये यह आत्मा सिद्धोंके समान कहा जाता है ।

४९८ । तब फिर सिद्ध और संसारी जीवोंमें क्या भेद है—सिद्धोंमें जो अनंत दर्शनज्ञानादि गुण हैं वे सब संसारी जीवोंमें विद्यमान हैं । अंतर केवल इतना ही है कि सिद्धोंके ज्ञानावरणादि कर्म सर्वथा क्षय हो गये हैं इसलिये उनके वे गुण व्यक्त हो गये हैं और संसारीजीवोंके कर्मोंका उदय विद्यमान

है इसलिये उनके वे गुण व्यक्त नहीं हुये हैं कर्मोंसे ढके हुये शक्तिरूपमे विद्यमान हैं। बस यही गुणोंके व्यक्ताव्यक्त भेद से सिद्ध और संसारी जीवोंमें भेद है।

४९९। यह किस दृष्टांतसे समझा जाय कि संसारी जीवोंमें सिद्धोंके संपूर्ण गुण शक्तिरूपसे विद्यमान हैं—जैसे दूधमें घी है और तिलोंमें तेल है इसीप्रकार इस आत्मामें शक्तिरूपसे परमात्मा विद्यमान है।

५००। निश्चयज्ञान किसे कहते हैं—जिस स्वसंवेदन ज्ञानमें निर्विकल्परूपसे अपने आप अपने आत्माका परिज्ञान होता है ऐसा वीतराग मुनियोंके जो ज्ञान है वही केवलज्ञान विभूतिको देनेवाला निश्चयज्ञान कहलाता है।

५०१। ज्ञान आत्मासे भिन्न है या आत्मस्वरूप ही है—आत्मा सब ज्ञानस्वरूप ही है अर्थात् ज्ञान आत्मासे भिन्न नहीं है आत्मस्वरूप ही है और जिस ज्ञानस्वरूप आत्मा है वही निश्चयज्ञान है।

५०२। निश्चयचारित्र किसे कहते हैं—अपने शुद्ध स्वरूप आत्मामें निश्चयज्ञानकेद्वारा अथवा बार बार किये हुये ध्यान रूप आचरणकेद्वारा बाह्य और आभ्यंतर क्रियाओंका रुक जाना अर्थात् शुद्ध आत्माका केवल आत्मस्वरूप ही परिणत होने लगना महात्माओंका निश्चयचारित्र कहलाता है। अ-

नंतज्ञानदर्शनआदि नौ लब्धियां इसी निश्चयचारित्रसे प्राप्त होती हैं।

५०३। इस उपर्युक्त निश्चय रत्नत्रयके पालन करनेसे क्या फल होता है यह निश्चयरत्नत्रय चरमशरीरियोंके ही होता है और उन्हें इसीके प्रतापसे केवलज्ञान प्राप्त होता है तथा वे जगतपूज्य भी इसी निश्चय रत्नत्रयसे होते हैं।

५०४। यह रत्नत्रय आत्मासे भिन्न है या अभिन्न—अभिन्न। क्योंकि निश्चयनयसे संपूर्ण आत्मा सदा रत्नत्रय स्वरूप ही है। कोई जीव ऐसा नहीं है जो रत्नत्रयस्वरूप न हो।

५०५। इसका क्या कारण है अर्थात् यह आत्मा निश्चयनयसे रत्नत्रय स्वरूप क्यों है—क्योंकि निश्चयनयसे ये संपूर्ण जीव अनादिकालसे स्वतः स्वभाव सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र स्वरूप ही है। वे न कभी इनसे अलग हुये और न कभी अलग हो सकते हैं इसलिये वे सदा रत्नत्रयस्वरूप हीं हैं।

५०६। रत्नत्रय चाहनेवालोंको क्या करना चाहिये—बाह्य संपूर्ण संकल्प विकल्प छोडकर निरंतर आत्मध्यान करना उचित है यह आत्मध्यान ही रत्नत्रय देनेवाला है।

५०७। जिन तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है वे तत्त्व कौन २ हैं—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष जिनशासनमें ये ही सात तत्त्व कहे हैं। निश्चयरत्नत्रय

केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग क्षायिकवीर्य, सम्यक्त्व और चारित्र।

के ये ही मूलकारण हैं। क्योंकि इनका श्रद्धान करना सम्य-ग्दर्शन, इनको जानना सम्यग्ज्ञान और इन रूप आचरण करना सम्यक्चारित्र कहलाता है।

५०८। जीवतत्त्व किसे कहते हैं—चेतना ही जिसका लक्षण है तथा जो उपयोगस्वरूप है और जिसमें अन्य अनेक स्वाभाविक गुण पाये जाते हैं उसे जीव कहते हैं।

५०९। इसकी जीव संज्ञा क्यों है—क्योंकि दश प्राणोंके द्वारा यह अनादिकालसे जीवित था तथा उन्हीं दश प्राणोंसे अब भी जीवित है और आगे भी जीवित रहैगा इसलिये सदा जीवित रहनेसे इसकी जीव संज्ञा सार्थक है।

५१०। दश प्राण कौन २ हैं—स्पर्शन १ रसन २ घ्राण ३ चक्षु ४ और श्रोत्र ५ ये पांच तो इंद्रियें तथा मन ६ वचन ७ काय ८ ये तीन योग और आयु ९ तथा श्वासोच्छ्वास १० ये संसारी जीवोंके बाह्य दश प्राण कहलाते हैं।

५११। चेतना किसे कहते हैं—आत्माके परिणाम विशेषोंको चेतना कहते हैं। यह चेतना दो प्रकारकी है, एक शुद्ध चेतना और दूसरी अशुद्ध चेतना। कर्मरहित शुद्ध आत्माके ज्ञानरूप परिणामोंको शुद्धचेतना कहते हैं और कर्मसहित शुद्ध आत्माके रागद्वेषरूपपरिणामोंको अशुद्धचेतना कहते हैं।

५१२। उपयोग कौन २ हैं-आत्माके चेतनारूप परिणामोंको

ही उपयोग कहते हैं। यह उपयोग भी दो प्रकार है शुद्धोपयोग और अशुद्धोपयोग। केवल ज्ञान और केवलदर्शन आदि आत्माके शुद्धपरिणामोंको शुद्ध उपयोग कहते हैं और चक्षुरादिक इंद्रियोंसे होनेवाले मतिज्ञान श्रुतज्ञान आदि चेतनारूप अशुद्ध परिणामोंको अशुद्ध उपयोग कहते हैं।

५१३। आत्माके स्वाभाविक गुण कौन २ हैं—केवलज्ञान, केवल दर्शन, अनंतवीर्य और अनंतसौख्य आदि आत्माके स्वाभाविक गुण हैं।

५१४। वैभाविक गुण कौन २ हैं-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, ये वैभाविक गुण हैं। इन स्वाभाविक और वैभाविकगुणोंमेंसे स्वाभाविक गुण-ग्रहण करने योग्य हैं और वैभाविक गुण सर्वथा त्याज्य हैं।

५१५। यह जीव कर्मोंका कर्त्ता है अथवा अकर्त्ता—यह जीव व्यवहारनयसे शरीर तथा ज्ञानावरणादि कर्मोंका कर्त्ता है परंतु निश्चयनयसे यह किसीका भी कर्त्ता नहीं है इसलिये अकर्त्ता है।

५१६। यह जीव कर्मोंका भोक्ता है या नहीं—यह आत्मा व्यवहारनयसे वेदनीय ज्ञानावरणादि कर्मोंके विपाकरूप सुख दुःखादिका भोक्ता है किंतु निश्चयनयसे किसीका भोक्ता नहीं है

५१७। यह जीव मूर्त्तिमान् (मूर्त्तिक) है या अमूर्त है-मूर्त्ति-

मान् उसे कहते हैं जिसमें स्पर्श रस गंध वर्ण ये पुद्गलके गुण पाये जायं। निश्चयनयसे जीवमें ये कोई गुण नहीं पाये जाते इसलिये निश्चयनयसे यह जीव अमूर्त्त है। किंतु व्यवहारनयसे मूर्त्तिमान् है क्योंकि पौद्गलिक शरीरादि कर्मसहित है।

५१८। इस जीवका परिमाण कितना है अर्थात् यह जीव कितना बड़ा है—निश्चयनयसे यह जीव असंख्यात प्रदेशी है किंतु व्यवहारनयसे प्राप्तशरीरके परिमाणके बराबर ही रहता है। जैसे दीपकके प्रकाशमें संकोच विस्तारकी शक्ति है वह जितने छोटे बड़े कमरेमें रक्खा जाता है उतना ही छोटा बड़ा हो जाता है उसीप्रकार आत्माके प्रदेशोंमें भी संकोच विस्तार होनेकी शक्ति है वे प्रदेशभी कर्मानुसार जितना छोटा बड़ा शरीर पाते हैं समुद्घात[1] अवस्थाको छोड़कर उतने ही छोटे बड़े हो जाते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि यह जीव पर्यायार्थिकनयसे अपने शरीरके परिमाणके बराबर है।

५१९। समुद्घात कितने हैं—सात। वेदना, कषाय, वैक्रियक मारणांतिक, तैजस, आहार और केवल समुद्घात।

५२०। यह जीव कब मुक्त (सिद्ध) होता है- जब यह जीव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्तकर तपश्चरणके द्वारा कर्मरूपी शत्रुओंको सर्वथा नाश करदेता है तब

१ आत्माके प्रदेश मूल शरीरको विना छोडे शरीरसे बाहर निकलकर फैल जाते हैं उसे समुद्घात कहते हैं।

यह सिद्ध अथवा मुक्त कहलाता है। कर्मोंको नाश किये विना यह कभी सिद्ध नहीं हो सकता।

५२१। सिद्ध किसे कहते हैं और वे कितने हैं-जो अष्टकर्मरहित हैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप और दिव्य अष्ट गुणोंसे विभूषित हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। ऐसे सिद्धोंकी संख्या अनंत है।

५२२। सिद्धोंके गुण कौन २ हैं-सिद्धोंके आठ गुण हैं क्षायिकसम्यक्त्व १ क्षायिकज्ञान २क्षायिकदर्शन ३ अनंतवीर्य ४ सूक्ष्मत्व ५ अवगाहन ६ अगुरुलघुत्व७ और अव्यावाध ये गुण अतिशय दिव्य और उपमारहित हैं।

५२३। सिद्धोंके कौनसा सुख है—जो सुख सर्व संकल्प विकल्परहित है, अति उत्तम है केवल आत्मजन्य है, अन्य सर्व विषयोंसे रहित है सर्वोत्कृष्ट है, अंतररहित है, आधिव्याधि रहित है, उपमा रहित है, सदा रहनेवाला नित्य है तथा जिसको प्राप्त करनेकेलिये अन्य किसी द्रव्यकी अपेक्षा वा आवश्यकता नहीं होती ऐसे अनंत सुखको वे सिद्ध सदा अनुभव किया करते हैं।

५२४। क्या वह सिद्धोंका सुख इंद्र अहमिंद्र आदिके सुखोंसे भी अधिक है—इंद्र अहमिंद्र तथा संपूर्ण देव विद्याधर चक्रवर्त्ती राजा महाराजा भोगभूमिज आदि बड़े २ पुण्याधिकारी पुरुष जिस अनंत सुखको भोग चुके, भोग रहे हैं, और भोगेंगे उस अनंत सुखका अनुभव सिद्ध भगवान केवल एक समयमें

कर लेते हैं। इससे सहजही सिद्ध होता है कि इन बड़े २ पुण्याधिकारियोंसे भी सिद्धोंका सुख अतिशय अनंत है।

५२५। लोकशिखरपर निवास करनेवाले इन सिद्धभगवानको कौन २ नमस्कार करता है तथा कौन इनका ध्यान करता है—गणधर मुनिवर तथा त्रैलोक्यनाथ तीर्थंकर आदि संपूर्ण उत्कृष्ट पदाधिकारी पुरुष सिद्धोंका ही ध्यान करते हैं उन्हींको प्रणाम करते हैं और उन्हींका पद प्राप्त होनेकेलिये निरंतर आकांक्षा किया करते हैं।

५२६। सिद्धोंका ध्यान करने और उन्हें नमस्कार करनेसे क्या फल मिलता है—जो जीव अन्य सबको छोड़कर निरंतर इनका ध्यानादि करते हैं वे शीघ्र वैसे ही अर्थात् सिद्ध हो जाते हैं।

५२७। सिद्धोंका ध्यान नमस्कार आदि करनेसे ऐसा उत्तम फल मिलता है यह समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—हमें तुम्हें तथा और भी जो मोक्षाभिलाषी पुरुष हैं उन्हें सदा सिद्धोंका ध्यान करना चाहिये। उनकी स्तुति और उन्हें सदा प्रणाम करते रहना चाहिये। जिससेकि शीघ्रही सिद्धपदको प्राप्तहो

५२८। यदि गुणोंकी भिन्नतासे भेद किये जायं तो जीवोंके कितने भेद होते हैं—तीन। बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा।

५२९। बहिरात्मा किन्हें कहते हैं—जो जीव धर्म अधर्मकी तत्त्व कुतत्त्वकी; शास्त्र कुशास्त्रकी, देव कुदेवकी तथा गुरुकुगुरुकी परीक्षा करना नहीं जानते, न धर्मायतनोंमें दान देना

जानते हैं जो दान कुदानमें अंतर ही नहीं समझते, तथा जो विवेकशून्य हैं, कुबुद्धि हैं और उन्मत्तके समान हिताहित विचार रहित मूर्ख हैं वे बहिरात्मा कहलाते हैं।

५३०। बहिरात्मा और कौन कहलाते हैं—जो लोग सुख मानकर हलाहल विष से भी अधिक दुःख देनेवाले इन इंद्रियोंके सुखोंका सेवन करते हैं वे अतिशय मूर्ख बहिरात्मा कहलाते हैं।

५३१। इनके सिवाय और बहिरात्मा कौन है—जो पुरुष हेय और उपादेय पदार्थोंका विचार नहीं करते और न अपना कल्याण ही समझते हैं वे मूर्ख भी बहिरात्मा कहलाते हैं।

५३२। तीव्र बहिरात्मा किन्हें कहते हैं—जो पुरुष गाढमिथ्यात्वी हैं सदा खोटे मार्ग और खोटे मतोंमें लीन रहते हैं वे अतिशय मूर्ख और आत्मकल्याणसे रहित तीव्र बहिरात्मा कहलाते हैं।

५३३। ये बहिरात्मा जीव अपनी मूर्खतासे क्या कार्य करते हैं—ये कुमार्गमें चलनेवाले बहिरात्मा जीव पुण्य मानकर अनेक प्रकारके कायक्लेश सहन करते हैं परंतु ये पुण्यके बदले उस से महापाप उपार्जन करते हैं।

५३४। इन बहिरात्माओंको परलोकमें क्या फल मिलता है—नरक अथवा तिर्यंचगतिमें निरंतर भ्रमण करना पड़ता है। अथवा नीच मनुष्ययोनिमें किंवा कभी २ नीचदेवगतिमें घूमना पड़ता है।

५३५। अंतरात्मा किन २ गुणोंसे कहलाते हैं—जो पुरुष देव शास्त्र गुरु धर्म पात्र अपात्र आदिकी परीक्षा करनेमें बहिरात्मासे विपरीत हैं अर्थात् जो देव शास्त्रादिकी परीक्षा करनेमें कसौटीके समान हैं सम्यग्दष्टी और विचारज्ञ हैं वे विद्वज्जन अंतरात्मा कहलाते हैं।

५३६। अंतरात्मा और कौन हैं— जो जीव इंद्रियविषयोंसे उत्पन्न हुये सुखको हलाहल विषके समान मानते हैं वे भी अंतरात्मा कहलाते हैं।

५३७। अंतरात्माओंका अंतः क्या है अर्थात् जिसके निमित्तसे वे अंतरात्मा कहलाते हैं वह क्या है—देव शास्त्र गुरुकी नित्य पूजा करना, उत्तम क्षमादि धर्म धारण करना, पात्रदान देना तथा और भी अनेक गुण धारण करना अंतरात्माओंका अंतः अर्थात् अंतरात्मा बननेके लक्षण कहलाते हैं।

५३८। उत्कृष्ट अंतरात्मा कौन हैं—जो जीव शरीरादिसे सर्वथा भिन्न चिदानंद स्वरूप आत्माका चिंतवन करते हैं जो आठ नौ दश ग्यारह बारह इन गुण स्थानोंमें रहते हैं वे उत्कृष्ट अंतरात्मा कहलाते हैं तथा जो पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें रहते हैं वे मध्यम अंतरात्मा कहलाते हैं, जो जीव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान गुणसे सुशोभित हैं चौथे अविरत गुणस्थानमें रहते हैं वे जघन्य अंतरात्मा कहलाते हैं। किसी एक दिन इन जघन्य अंतरात्माओंके भी घातिया कर्म न-

ष्ट होते हैं और केवलज्ञानादि उत्तम गुण प्रगट होते हैं। उ-त्कृष्ट और मध्यम अंतरात्माकी तो कथा ही क्या है उनके तो ये गुण अवश्य होते हैं।

५३९। परमात्मा कैसे होते हैं—परमात्मा दो प्रकारके होते हैं सकल और निकल। जो दिव्य परमौदारिक शरीर सहित होते हैं वे सकल परमात्मा कहलाते हैं और जो शरीरकर्मरहित हो-ते हैं वे निकल परमात्मा कहलाते हैं।

५४०। सकल परमात्मा किन्हें कहते हैं—जिनके दिव्य पर-मौदारिक शरीर है चार घातियाकर्म जिनके नष्ट होगये हैं अ-नंत केवलज्ञान जिनके प्रगट होगया है इंद्र धरणेंद्र चक्रव-र्त्ती आदि सभी भव्यजन जिनकी पूजा वंदना स्तुति आदि करते हैं जो बारह सभाके मध्य विराजमान रहते हैं वे अरहंत देव सकल परमात्मा कहलाते हैं।

५४१। सकल परमात्मा और कौन हैं—जिनमें अरहंतके सं-पूर्ण गुण हैं ऐसे जगतपूज्य सामान्यकेवली भी सकल परमा-त्मा गिने जाते हैं।

५४२। निकल परमात्मा कौन हैं—जो लोकशिखरपर विरा-जमान हैं, शरीररहित हैं कर्मरहित हैं सम्यक्त्वादि अष्ट गुण विशिष्ट हैं जिन्हें तीर्थंकर गणधर मुनीश्वर आदि सब नम-स्कार करते हैं जिनका सब ध्यान करते हैं वे गुणस्थानर-हित सिद्धभगवान निकल परमात्मा कहलाते हैं।

५४३। इन तीनों आत्माओंमेंसे हेय कौन हैं—उन्मत्त, धर्मरहित, बिकलेंद्रिय पशुओंके समान बाहेरात्मा ही हेय हैं।

५४४। उपादेय कौन हैं—उत्तम अंतरात्मा उपादेय हैं तथा तत्त्वविचार करते समय उपेक्षाबुद्धिसे अर्थात् त्याग करनेकेलिये बहिरात्मा भी उपादेय हैं।

५४५। साक्षात् उपादेय कौन हैं—जगज्ज्येष्ट जगद्वंद्य और सर्वज्ञ ऐसे सकल निकल परमात्मा ही साक्षात् उपादेय हैं।

५४६। उपादेय और कौन हैं—संपूर्ण भव्य जीवोंका हित करनेवाला महापुरुषोंमें भी अत्युत्तम ऐसे पूज्य अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी उपादेय हैं।

५४७। बहिरात्मा पुरुषोंकी संगति करनेसे क्या हानि होती है—सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत आदि गुण सब नष्ट होजाते हैं और दुर्बुद्धि मूढता आदि पाप उत्पन्न करनेवाले दोष सब आ उपस्थित होते हैं। अतएव सर्प सिंहादि हिंसक जीवोंका संसर्ग करना अच्छा है, जलती हुई अग्निमें पडजाना वा जलमें डूब मरना अच्छा है, विष खाकर मर जाना, बनमें निवास करना वा प्राण त्याग देना अच्छा है किंतु मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा पुरुषोंके साथ एक क्षण भी संसर्ग करना अच्छा नहीं है।

५४८। अंतरात्मा पुरुषोंकी संगति करनेसे क्या लाभ होता है—अंतरात्मा पुरुषोंकी संगति करनेसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र संवेग वैराग्य आदि उत्तम २ गुण सदा बढ़ते रहते हैं।

५४९। संगतिसे गुण दोष बढते हैं इसका दृष्टांत क्या है—जैसे जल अग्निके संयोगसे उष्ण हो जाता है और कतकफल (निर्मली) फिटकरी आदिके संयोगसे निर्मल तथा स्वच्छ हो जाता है। यदि सुगंध पदार्थके साथ एक क्षण भी दुर्गंध पदार्थका संयोग हो जाय तो वह सुगंध पदार्थ उसी समय दुर्गंध हो जाता है। यदि स्वेतपदार्थके साथ एक क्षण भी कृष्ण (काले) पदार्थके साथ संयोग हो जाय तो वह सफेद पदार्थ उसी क्षणमें काला हो जाता है इन उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि जैसा संयोग और संगति होती है वैसे ही गुण प्राप्त हो जाते हैं। अच्छी संगतिसे संसारके सारभूत उत्तम गुण प्राप्त होते हैं और कुसंगतिसे दोष ही दोष प्राप्त होते हैं।

५५०। इस प्रकार सुसंगति कुसंगतिका फल जानकर सज्जनोंको क्या करना चाहिये—जो गुणवान् हैं अथवा धर्मात्मा हैं उन्हीं की सदा भक्ति करनी चाहिये, उन्हींमें प्रीति करना चाहिये और उन्हींकी सदा संगति करना चाहिये।

५५१। सकल परमात्मा अर्थात् अरहंतोंकी भक्ति सेवा आदि करनेसे क्या फल मिलता है—अतिशय कल्याण होता है धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है और क्रमसे मोक्ष पुरुषार्थ भी सिद्ध होता है।

५५२। जो पुरुष अरहंतोंकी अनन्यभक्ति करते हैं उन्हें कैसा उत्तम फल मिलता है—उन्हें तीनों लोकोंको क्षोभ करनेवाले अ-

रहंतपदकी प्राप्ति होती है तथा शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त होती है।

५५३। निकलपरमात्मा अर्थात् सिद्धोंका ध्यान करनेसे तथा उन्हें प्रणाम करनेसे सज्जनोंको क्या फल मिलता है—तीनों लोकोंके सारूप उत्तम २ सुख प्राप्त होते हैं तथा अनुक्रमसे सिद्धपदकी प्राप्ति होती है।

५५४। परमात्माकी भक्ति सेवा आदिका ऐसा फल जानकर पंडितोंको क्या करना चाहिये—स्वयं परमात्मा होनेकेलिये जप ध्यान स्तोत्र आदिक द्वारा अन्य सबको छोडकर केवल उन्हीं परमात्माका ध्यान करना चाहिये और उन्हें ही नमस्कार वंदना आदि करना चाहिये।

५५५। स्वाभाविक उर्ध्वगमन करनेवाले अर्थात् मुक्त जीवोंकी शीघ्रगति कितनी हो सकती है—गतिमान मुक्त जीवोंकी स्वाभाविक गति नीचेसे ऊपरकी ओर एक समयमें सात राजू होती है।

५५६। संसारी जीवोंके विभाव पर्याय कौन २ हैं—व्यवहारनयसे अपने २ कर्मके अनुसार होनेवाले मनुष्य तिर्यंच, देव और नारकी ये संसारी जीवोंके विभाव पर्याय हैं।

५५७। निश्चयनयसे आत्माके स्वभावपर्याय कौन २ हैं—प्रत्येक जीवके जो असंख्यात प्रदेश हैं वे शुभ प्रदेश ही निश्चयनयसे संपूर्ण जीवोंके स्वभाव पर्याय हैं।

५५८। सिद्धोंके पर्याय कौनसी मानी जाती है—संपूर्ण कर्मोंके क्षय होनेसे जो आत्माके प्रदेश अंतके शरीरके आकरसे कुछ

कम आकारमें परिणत हो जाते हैं वही सिद्धोंकी पर्याय है।

५५९। इसप्रकार जीवतत्त्वका स्वरूप जानकर भव्यजीवोंको क्या करना उचित है—उन्हें मुक्ति प्राप्त होनेकेलिये अपना आत्मा रत्नत्रय तपश्चरण आदिसे विभूषित करना चाहिये।

५६०। हे भगवन् अब मेरेलिये यथाक्रमसे अजीव तत्त्वका उपदेश दीजिये—पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये पांच अजीव तत्त्व हैं। ये पांचों ही गुणपर्यायसहित हैं और उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक हैं। इनमेंसे पुद्गलके छह और आकाशके दो भेद हैं।

५६१। अजीव तत्त्व किसे कहते हैं—जो जीव न हो उसे अजीव कहते हैं अर्थात् जिसमें जीवका चेतना लक्षण न पाया जाय उसे अजीवतत्त्व कहते हैं।

५६२। पुद्गलोंके छह भेद कौन २ हैं—सूक्ष्मसूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म, स्थूल और स्थूलस्थूल ये छह भेद पुद्गलोंके हैं। जो पुद्गल पृथक् पृथक् परमाणु रूप हैं उन्हें सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं। जो पुद्गल ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप परिणत हो गये हैं वे सूक्ष्म कहलाते हैं। जो पुद्गल नेत्रगोचर नहीं होते किंतु अन्य स्पर्शन रसन घ्राण और श्रोत्र इंद्रियोंसे जाने जाते हैं ऐसे सुगंध स्वाद शब्द आदि पदार्थ सूक्ष्मस्थूल कहलाते हैं। छाया आतप उद्योग आदि पदार्थ जो नेत्रगोचर तो हैं किंतु पकडनेमें न आवें उन्हें स्थूलसूक्ष्म कहते हैं। जल वा-

यु आदि स्थूल पदार्थ कहलाते हैं और पृथिवी पर्वत आदि स्थूलस्थूल कहे जाते हैं। इनके सिवाय अणु और स्कंधोंके भेदसे और भी अनेक भेद होते हैं।

५६३। पुद्गलोंके स्वाभाविक गुण कौन २ हैं—स्निग्ध, रूक्ष, लघु, गुरु, मृदु; कठिन शीत, उष्ण ये आठ स्पर्श, सुगंध, दुर्गंध भेदसे दो गंध, मीठा कड़वा चिरपरा कषायला खट्टा ये पांच रस तथा श्वेत पीत नील कृष्ण रक्त ये पांच वर्ण। इस प्रकार ये बीस गुण जब परमाणुमें एक अविभागीप्रतिच्छेद[1] रूपसे रहते हैं तब स्वाभाविक गुण कहलाते हैं।

५६४। पुद्गलोंके वैभाविक गुण कौन २ हैं—ये उपर्युक्त स्पर्शादिक बीस गुण जब पुद्गलस्कंधमें अनेक अविभागीप्रतिच्छेदरूपसे रहते हैं तब वैभाविक गुण कहलाते हैं।

५६५। पुद्गलोंके स्वभावपर्याय कौन २ हैं—पृथक् पृथक् परमाणु स्वभाव पर्याय हैं।

५६६। पुद्गलोंकी विभाव पर्याय कौन २ हैं—शब्द, बंध सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत, आतप आदि स्कंधरूप सब विभाव पर्याय हैं।

५६७। ये पुद्गल, जीवोंका क्या उपकार करते हैं—शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास, सुख, दुःख, जीवित, मरण तथा रोग, आरोग्य आदि अनेक प्रकारसे ये स्कंधरूप पुद्गल नित्य

---

१ गुणोंके सबसे छोटे भागको एक अविभागीप्रतिच्छेद कहते हैं।

जीवोंका उपकार किया करते हैं। अर्थात् शरीर बचनादिके द्वारा जीवोंका जो उपकार होता है यह पुद्गलका ही उपकार है

५६८। जीव क्या उपकार करते हैं—जीव परस्पर उपकार करते हैं। जैसे गुरु सदुपदेश देकर शिष्यकाउपकार करता है और शिष्य सेवा वैयावृत्ति आदिसे गुरुका उपकार करता है इसीप्रकार संपूर्ण जीव परस्पर एक दूसरेका उपकार किया करते हैं। ये जीव अन्य पुद्गल धर्म अधर्म आदि द्रव्योंका कभी कुछ उपकार नहीं करते।

५६९। धर्मद्रव्य किसे कहते हैं—जो गमन करनेमें सहायक है, निष्क्रय है, नित्य है, अमूर्त्त है, तीनों लोकोंमें व्याप्त असंख्यात प्रदेशी है और गुणवान् है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं।

५७०। इस धर्मद्रव्यका मुख्य गुण क्या है—मछलीको जलके समान गतिरूप परिणमें जीवपुद्गलोंके गमन करनेमें सहायक होना ही इसका मुख्य गुण है।

५७१। अधर्मद्रव्य किसे कहते हैं—जो लोकमें व्याप्त है, असंख्यातप्रदेशी है, अमूर्त्त है, निष्क्रिय है, नित्य है और जीव पुद्गलोंकी स्थितिमें सहायक है वह गुणवान् अधर्मद्रव्य है।

५७२। अधर्मद्रव्यमें कौनसा मुख्य गुण है—पथिकोंको छायाके समान स्थिररूप परिणमें जीवपुद्गलोंको स्थित होनेमें सहायता करना ही इसका मुख्य गुण है।

५७३। आकाशद्रव्य किसे कहते हैं—जो नित्य, निष्क्रिय, अमूर्त्त,

और संपूर्ण पदार्थोंको अवकाश देनेवाला है तथा जिसके लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद हैं उसे आकाश-द्रव्य कहते हैं।

५७४। लोकाकाश किसको कहते हैं—जितने आकाशमें जीव पुद्गल धर्म अधर्म और काल ये पांच द्रव्य देखे जाते हैं उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं ऐसे इस लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं।

५७५। अलोकाकाश किसे कहते हैं—जो अन्य संपूर्ण द्रव्यों से भिन्न, अमूर्त्त और अनंतप्रदेशी एक अखंड द्रव्य है उसे आलोकाकाश कहते हैं।

५७६। आकाशका मुख्य गुण क्या है—संपूर्ण द्रव्योंको अवकाश देना ही आकाशका मुख्य गुण है।

५७७। इस अखंड आकाश द्रव्यकी पर्यायें कौन २ हैं—व्यवहार नयसे घटाकाश मठाकाश आदि अनेक पर्याय हैं।

५७८। काल किसे कहते हैं—जो पदार्थोंकी नवजीर्णादि अवस्था बदलनेमें कारण है अमूर्त्त और निष्क्रिय है गुणवान् है तथा जिसके निश्चय और व्यवहार ये दो भेद हैं उसे काल द्रव्य कहते हैं।

५७९। निश्चय काल किसे कहते हैं—रत्नोंकी राशिके समान लोकाकाशके एक २ प्रदेश पर पृथक् २ एक २ कालाणु स्थित है और उन कालाणुओंकी संख्या लोकाकाशके प्रदेशोंके स-

मान असंख्यात है जिनशासनमें इन्हीं असंख्यात कालाणु-ओंको निश्चयकाल कहते हैं।

५८० । इस निश्चयकालका मुख्य गुण क्या है—जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें तथा स्वकीय परिणमनमें सहायता करना ही इसका मुख्य गुण है।

५८१ । व्यवहारकाल किसे कहते हैं—समय घड़ी घंटा पहर दिन महीना वर्ष आदि व्यवहारकाल कहलाता है।

५८२ । व्यवहारकालके गुण क्या हैं—जीव पुद्गलादि पदार्थोंको उनकी पर्यायोंद्वारा नवीनसे जीर्ण कर देना व्यवहार-कालका मुख्य गुण है।

५८३ । व्यवहारकालकी पर्यायें कौन २ हैं—समय पहर दिन वर्ष आदि इसकी अनेक पर्याय हैं।

५८४ । छह द्रव्य कौन २ कहलाते हैं—उपर्युक्त धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल और जीव ये ही छह द्रव्य श्रीजिनेंद्र देवने कहे हैं।

५८५ । पंचास्तिकाय कौन २ कहलाते हैं—काल द्रव्यके विना जीवादिक पांच द्रव्य ही पांच अस्तिकाय कहलाते हैं। जिसकी सत्ता विद्यमान हो और जो बहुप्रदेशी हो उसे अस्तिकाय कहते हैं। काल बहुप्रदेशी न होनेसे अस्तिकाय नहीं हैं।

५८६। पुद्गलपरमाणु भी एकप्रदेशी है फिर उसकी अस्तिकाय संज्ञा

क्यों है—उपचारसे है क्योंकि वह अन्य किसी स्कंधमें मिल कर बहुप्रदेशी हो सकता है इसलिये शक्तिकी अपेक्षासे उसे अस्तिकाय कहते हैं।

५८७। उपचारसे कालाणु भी काय क्यों नहीं कहलाता-- क्योंकि उसमें न स्निग्धगुण है और न रूक्षगुण है। स्निग्ध व रूक्ष गुणके बिना बंध नहीं हो सकता और बिना बंधके वह कभी किसी स्कंधमें मिल नहीं सकता इसलिये वह कालाणु उपचारसे भी आस्तिकाय नहीं हो सकता।

५८८। प्रदेश किसे कहते हैं—आकाशके जितने भागको एक अविभागी पुद्गलपरमाणु रोक लेता है उसे प्रदेश कहते हैं।

५८९। यह अजीवतत्त्व ग्रहण करने योग्य है अथवा छोड़ने योग्य- अजीवतत्त्व केवल तत्त्वोंके विचार करते समय ग्राह्य है और ध्यान करते समय हेय है। ध्यानके समय केवल जीवतत्त्व ही ग्राह्य है।

५९० पुद्गलोंकी स्वाभाविक मंदगति कैसी है तथा स्वाभाविक शीघ्र गति कैसी है—पुद्गलपरमाणु एक समयमें अपनी स्वाभाविक मंदगतिसे आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक जा सकता है और शीघ्रगतिसे चौदह राजू तक गमन कर सकता है।

५९१। आस्रवतत्त्व किसे कहते हैं—आत्माके प्रति जो कर्म-

रूप परिणित हुये पुद्गल परमाणु आते हैं उसे आस्रवतत्त्व कहते हैं। वह आस्रव दो प्रकारका है एक भावास्रव और दूसरा द्रव्यास्रव।

५९२। भावास्रव क्या है—आत्माके जिन रागद्वेषादि परिणामोंसे निरंतर कर्म आते रहते हैं उन्हें भावास्रव कहते हैं।

५९३। द्रव्यास्रव किसे कहते हैं—रागद्वेषादि भावास्रवको निमित्त पाकर आत्माके प्रति जो कर्मसमूह आते हैं उसे द्रव्यास्रव कहते हैं।

५९४। भावास्रवके कारण कौन हैं—मिथ्यात अविरत प्रमाद कषाय और योग ये पांच भावाश्रवके कारण हैं, येही अनर्थों के समुद्र हैं।

५९५। मिथ्यात्व किसे कहते हैं— अल्पज्ञानियोंने जिनशासनके अन्य जो मिथ्यामत कल्पना करलिये हैं उनको मानना वा भला समझना मिथ्यात्व हैं। संक्षेपसे मिथ्यात्वके पांच भेद हैं एकांत विपरीत वैनयिक सांशयिक और अज्ञान इनमेंसे भी प्रत्येकके अनेक भेद हैं और वे सब नरकके कारण हैं।

५९६। एकांतमिथ्यात्व किसे कहते हैं-आत्माको किसीप्रकार कर्त्ता वा भोक्ता नहीं मानना उसे सर्वथा क्षणि क ही मानना

---

१ पुद्गलपरमाणुओंका कर्मरूपपरिणतहोना अर्थात् रागद्वेषादिकेनिमित्तसे उनमें सुखदुःखादि देनेकीशक्ति होजानाहीं कर्मसमूहका आना कहलाता है।

इत्यादि बौद्धादि कल्पित सर्वथा एक धर्मात्मक ही पदार्थोंका स्वरूप मानना एकांतमिथ्यात्व कहलाता है।

५९७। विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते हैं—रागी द्वेषी वा स्त्री आयुध सहित देवोंको पूजना, परिग्रहसहित रागी द्वेषी भेषी गुरुओंको पूज्य समझना, जीवोंको घात करनेवाली यज्ञादिक क्रियाओंको धर्म मानना, गाय आदि पशुओंको नमस्कार करना अतिथिदान समझकर चीलकौवोंको निरंतर खिलाना आदि जो ब्राह्मणोंने अनेकप्रकार कल्पना कर रक्खी हैं उन्हें विपरीतमिथ्यात्व कहते हैं।

५९८। वैनयिकमिथ्यात्व किसे कहते हैं— अपने कल्याणार्थ संपूर्ण गुणियोंको संपूर्ण देव कुदेवोंको नमस्कार करना उनका विनय करना आदि तापसादि प्रणीत वैनयिकमिथ्यात्व कहलाता है।

५९९। सांशयिकमिथ्यात्व किसे कहते हैं-केवली भगवानको कवलाहारी मानना, स्त्रीको उसीभवमें मुक्त होना मानना मुनिअवस्थामें भी स्वेच्छानुसार अन्नपान ग्रहण करना, धर्मोपकरण मानकर लकड़ी रखना, भोजनके पात्र रखना कठिनबालोंकी पीछी रखना आदि स्वेतांबर जैन सांशयिक मिथ्यादृष्टी कहलाते हैं।

६००। अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते हैं—किसी कल्पित ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता मानना भक्ष्य अभक्ष्य आदिका कुछ वि-

चार नहीं करना आदि म्लेच्छोंसे उत्पन्न हुआ धर्म अज्ञान-मिथ्यात्व कहलाता है।

६०१। अविरति क्या है—मन और पंच इंद्रियोंके विषयों-को स्वेच्छानुसार सेवन करना तथा षट्कायके जीवोंकी रक्षा नहीं करना यह बारहप्रकारकी अविरति कहलाती है।

६०२। प्रमाद कौन २ हैं—राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा ये चार विकथा, क्रोध मान माया लोभ ये चार दुष्टकषाय धर्मको चुरानेवाले पांचों इंद्रियोंके पांच विषय तथा स्नेह और निद्रा ये पंद्रह प्रमाद हैं ये सब पापरूप शत्रुको-बढ़ानेवाले महाशत्रु हैं इसलिये यत्नाचाररूप खड्गके द्वारा इनका नाश करना ही सर्वथा योग्य है।

६०३। कषाय कौन २ हैं— अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान-क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान-क्रोध मान माया लोभ, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ तथा हा-स्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसक-वेद ये नव नोकषाय। इसप्रकार सब पच्चीस कषाय हैं और उत्तम क्षमादिके द्वारा नाश करने योग्य हैं।

६०४। योग कितने हैं—पंद्रह। चार मनोयोग, चार वचन योग, और सात काययोग। सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग उभयमनोयोग अनुभयमनोयोग ये चार मनोयोग कहलाते हैं। सत्यवचनयोग असत्यवचनयोग उभयवचनयोग अनु-

भयवचनयोग ये चार वचनयोग कहलाते हैं, औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण ये सात काययोग कहलाते हैं। ये सब पंद्रह योग हैं। शुभाशुभ करनेवाले ये ही हैं।

६०५। अनादिकालसे लगे हुये महापाप मिथ्यात्वसे कैसा आस्रव होता है— मिथ्यादृष्टियोंको मिथ्यात्वसे वह आस्रव होता है जिससे इस जीवको सातवें नरकतकके अनंत दुःख भोगने पड़ते हैं।

६०६। अविरतियोंसे कैसा आस्रव होता है—इंद्रिय और मन को वशमें नहीं रखनेसे तथा जीवोंका घात करनेसे निरंतर महापापका आस्रव होता रहता है जिससे इस जीवको अपरिमित दुःखसागरमें अनेक गोते खाने पड़ते हैं।

६०७। प्रमादसे कैसा आस्रव होता है—विकथा अशुभध्यान वृथा वृक्षादिकोंका घातकरना आदि प्रमाद करनेवाले जीवों के निरंतर पापका आस्रव ही होता है।

६०८। कषायसे कैसा आस्रव होता है—संसारके अनंत दुःख देनेवाला और पापकर्मोंकी अनंत परंपरा संततिको बढ़ानेवाला आस्रव।

६०९। योगोंसे कैसा आस्रव होता है— योग दो प्रकारके हैं शुभ और अशुभ। शुभयोगोंसे शुभास्रव होता है शुभास्रवसे इस जीवको सुखकी सामग्री मिलती है और अशुभास-

वसे दुःखकी सामग्री मिलती है।

६१० । मिथ्यात्वरूप शत्रु किसप्रकार नष्ट होता है-सम्यग्दर्शनरूपी तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे।

६११ । अविरतियोंका नाश कैसे होता है—जीवोंपर दया करने और इंद्रियोंका निग्रह करनेसे।

६१२ । प्रमादोंको किसप्रकार नष्ट करना चाहिये—धर्म यम नियम आदि पालन करने और यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति रखनेसे प्रमाद नष्ट होते हैं।

६१३ । कषाय किसप्रकार जीतने चाहिये—क्षमा मार्दव आर्जव और संतोषकेद्वारा अर्थात् क्षमाकेद्वारा क्रोध, मार्दवकेद्वारा मान, आर्जवकेद्वारा माया और संतोषकेद्वारा लोभ जीतना चाहिये।

६१४ । योगोंका निग्रह किसप्रकार किया जाता है—ध्यान अध्ययन आदि आयुधोंकेद्वारा योगोंका निग्रह होता है। इस प्रकार अपने २ प्रतिपक्षियोंकेद्वारा मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग इन सबका नाश होता है।

६१५ । कर्मोंका आस्रव होता रहनेसे क्या होता है—सदा अशुभास्रव होनेसे व्रत यम नियम पालन करना, मनुष्ययोनिमें जन्म लेना, तपश्चरण करना, दीक्षा लेना आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं।

६१६। इसका क्या कारण है अर्थात् अशुभास्रव होते हुए तपश्चरणादि सब व्यर्थ, क्यों हो जाते हैं—क्योंकि व्रत तपादिके द्वारा जितने कर्मोंका निरोध होता है उससे अधिक कर्मोंका आस्रव हो जाता है जिससे संसारकी वृद्धि ही होती है। तपश्चरणादिके द्वारा मोक्ष प्राप्त होना चाहिये था सो नहीं होता अतएव उसके द्वारा कियेहुये तपश्चरणादि सब व्यर्थ ही हैं।

६१७। भगवन् इसे किसी दृष्टांतकेद्वारा समझाइये—जैसे ऋण (करज) लेनेवाला पुरुष बार २ ऋण लेता है और बार २ चुकाता रहता है परंतु वह उस देने लेनेसे कभी सुखी नहीं होता सदा दुखी ही रहता है इसीप्रकार जिस जीवके सदा कर्मास्रव होता रहता है वह सदा दुःखी ही रहता है।

६१८। आस्रवको इतना दुःखप्रद समझकर सज्जनोंको क्या करना चाहिये—अपनी इंद्रियोंका निग्रह कर पूर्णप्रयत्नोंसे समस्त कर्मोंके आस्रवका निरोध करना ही सर्वथा उचित है।

६१९। बंध किसे कहते हैं—आये हुये कर्मपुद्गलोंके साथ आत्माके प्रदेशोंका संबंध होना बंध कहलाता है। वह दो प्रकारका है भावबंध और द्रव्यबंध।

६२०। भावबंध किसे कहते हैं—आत्माके जिस रागद्वेषादि परिणामसे कर्मसमूह बंधते हैं उसे भावबंध कहते हैं।

६२१। द्रव्यबंध किसे कहते हैं—भावबंधके द्वारा आत्मप्रदेश और कर्मप्रदेशोंका परस्पर मिलजाना द्रव्यबंध क-

हलाता है।

६२२। बंधके कितने भेद हैं—चार। प्रकृतिबंध, स्थितिबंध अनुभागबंध और प्रदेशबंध।

६२३। प्रकृतिबंध किसे कहते हैं–ज्ञान दर्शन आदि आत्माके भिन्न २ गुणोंको घात करनेवाले भिन्न २ स्वभावरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि अनेक प्रकार कर्मसबंधको प्रकृतिबंध कहते हैं।

६२४। स्थितिबंध किसे कहते हैं—आत्माके साथ जितने दिनतक कर्म टिकते हैं उसे स्थिति कहते हैं वह स्थिति तीनप्रकारकी है उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।

६२५। अनुभागबंध किसे कहते हैं—कर्मोंमें सुख दुःखादि देनेकी शक्ति होना अनुभागबंध कहलाता है। इसी हीनाधिक शक्तिके अनुसार कर्मोंका उदय हुआ करता है।

६२६। प्रदेशबंध किसे कहते हैं—आत्मप्रदेशोंके साथ प्रति समय जो अनंतानंत कर्मवर्गणाओंका बंध (एकपना) होता है उसे प्रदेशबंध कहते हैं।

---

१ प्रकृतिका अर्थ स्वभाव है। कर्मोंमें आत्माके गुणोंके घातकरनेका स्वभाव अर्थात् शक्ति हो जाना प्रकृतिबंध कहलाता है। प्रकृतिबंध आठप्रकारका–है ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय। ज्ञानको ज्ञानावरण, दर्शनको दर्शनावरण, अव्याबाधको वेदनीय, सम्यक्त्वको मोहनीय, अगुरुलघुत्वको गोत्र, सूक्ष्मत्वको नाम, अवगाहनको आयु और अनंतवीर्यको अंतराय कर्मघात करता है।

६२७। प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध किससे होता है— मनवचन कायके योगोंसे।

६२८। स्थितिबंध और अनुभागबंध किससे होता है—कषाय समूहसे।

६२९। यह जीव कर्मबंधसे दुःखी कैसे रहता है—जैसे रस्सी संकल आदिसे बंधाहुआ कोई पुरुष बंदीगृहमें पड़ा २ अनेक दुःख भोगता है उसीप्रकार कर्मबंधनसे बंधाहुआ यह आत्मा नरक निगोदादि दुर्गतियोंमें पड़ा २ अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है।

६३०। यह समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—रत्नत्रय और तपश्चरण आदि शास्त्रोंकेद्वारा शीघ्र ही बंधरूप शत्रुका नाश करना चाहिये और तीनों लोकोंके साम्राज्यरूप मोक्षकी प्राप्ति करना चाहिये।

६३१। आस्रव और बंध हेय हैं अथवा उपादेय—रागी गृहस्थियोंकेलिये पापास्रव और पापबंधकी अपेक्षा पुण्यास्रव तथा पुण्यबंध उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है और पापास्रव तथा पापबंध सर्वथा छोड़ने योग्य है। क्योंकि ये दोनों ही अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवाले हैं। किंतु जो वीतराग मुनि हैं उन्हें पुण्यास्रव पापास्रव पुण्यबंध पापबंध सब छोड़देनें योग्य हैं।

६३२। संवर किसे कहते हैं—आतहुये कर्मरूप जलका निरोध करना संवर है। वह दो प्रकारका है भावसंवर और द्रव्यसंवर।

६३३। द्रव्यसंवर किसे कहते हैं—भावसंवरके द्वारा ज्ञानी पुरुषोंके जो कर्मास्त्रवरुक जाते हैं उसे द्रव्यसंवर कहते हैं।

६३४। भावसंवर किसे कहते हैं—आत्माका जो परिणाम कर्मास्त्रव रोकनेमें कारण हैं वह शुद्ध भावसंवर कहलाता है।

६३५। भावसंवरके कारण कौन २ हैं—पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, उत्तमक्षमादिक दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परिषहोंका विजय, पांच चारित्र, ध्यान-, श्रुताभ्यास आदि भावसंवरके कारण हैं।

६३६। बारह अनुप्रेक्षा कौन २ हैं—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और उत्तमधर्म ये वैराग्यकी जननी बारह अनुप्रेक्षा कही जाती हैं।

६३७। अनित्यानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—अपनी आयु, संपदा, घर, बंधु, स्त्री, कुटुंब आदि संपूर्ण परिग्रह बिजलीके समान चंचल और क्षणस्थायी मानकर तद्रूप ही उनका अनुभव अर्थात् उनके संयोग वियोगादिमें हर्ष विषादि नहीं करना अनित्यानुप्रेक्षा कही जाती है।

६३८। तब फिर संसारमें नित्य किसको मानना—निर्वाण अर्थात् मोक्ष ही एक नित्य और उत्कृष्ट तत्त्व है। अनंतगुणों और कल्याणोंका सागर भी यही है। तपश्चरण और रत्नत्रयके द्वारा सज्जनोंको यह प्राप्त हो सकता है।

६३९। अशरणानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—जैसे सिंहके मुखमें पड़ेहुये हरिणको कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार इस जीवको भी रोग क्लेश और मृत्यु आदि दुःखोंसे कोई नहीं बचा सकता है। इस प्रकार सबको अशरण चिंतवन करना अशरणानुप्रेक्षा है।

६४०। क्या मंत्र तंत्र ओषधी आदि शरण नहीं हैं अर्थात् क्या इनसे यह जीव नहीं बच सकता—नहीं। क्योंकि मंत्र तंत्र और ओषधीवाले जीव भी रोग क्लेश और मृत्यु आदिसे दुःखी देखे जाते हैं। इसलिये सिद्ध है कि इस जीवका मंत्र तंत्रादि कोई शरण नहीं है।

६४१। क्या देव भी इस जीवको मृत्यु आदिकसे नहीं बचा सकते-नहीं। क्योंकि आयु पूरण होनेपर उन्हे स्वयं इंद्र अहमिंद्र आदि ऊंचे २ पद छोड़ कर कालके मुखमें जाना पड़ता है। जब वे अपनी ही स्वयं रक्षा नहीं कर सकते, तब वे दूसरोंकी रक्षा कैसे कर सकते हैं।

६४२। मंत्र तंत्रादि करनेसे रोगी पुरुषोंको क्या फल मिलता है-उनके रोग क्लेशादि निरंतर बढ़ते चले जाते हैं और यह शेष

जीवन भी उन्हें निःशेष करदेना पड़ता है। क्योंकि मंत्र तंत्रादि करना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वसे पापास्रव होता है और पापसे रोगक्लेशादि बढते हैं।

६४३। तब फिर मंत्रवादी मंत्र तंत्रादि क्यों करते हैं—वे संसारको ठगनेवाले धूर्त्त और अज्ञानी हैं मंत्रतंत्रवादी लोग केवल अपना पेट भरनेकेलिये ही ये सब ढोंग किया करते हैं।

६४४। किसप्रकार जानना चाहिये कि यह सब उनकी धूर्तता और ढोंग है—वे लोग पलपलपर झूठ बोलते हैं मंत्रतंत्रादि के बदलेमें द्रव्य लेते हैं और तरह २ के विचित्र उन्मार्ग (धर्मविरुद्ध तथा लोकविरुद्ध कार्य) किया करते हैं जिनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि ये सब मंत्रतंत्रादि करना केवल उनकी धूर्तता और ढोंग है।

६४५। ऐसे लोग कौन हैं—जो घर २ अपना मस्तक नचाते फिरते हैं ऐसे भील और उनकी स्त्रियां आदि हैं जो महापापी पाखंडी और दुष्ट होते हैं।

६४६। कैसे मालूम हो कि ये लोग वास्तवमें धूर्त्त और ढोंगी हैं—जो लोग हर किसीके सुख दुःखादिको यों ही यद्वा तद्वा पूछा करते हैं अथवा जो अपना शरीर जलाकर अज्ञानी लोगोंको झूठा विश्वास दिलाया करते हैं समझ लेना चाहिये कि ये लोग अवश्य महामूर्ख, धूर्त्त और ढोंगी हैं।

६४७। तब फिर रोग क्लेशादिको शांत करनेकेलिये क्या उपाय

करना चाहिये — संपूर्ण अनिष्ट शांत करनेकेलिये तपश्चरण कर ना चाहिये नमस्कारादि मंत्रोंका जप करना चाहिये। अथ- वा पंच परमेष्ठियोंकी पूजा करनी चाहिये।

६४८। संसारमें शरण कौन हैं—जगत्प्रसिद्ध अरहंत, सिद्ध भगवान् आचार्य, उपाध्याय, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये ही सबके रक्षक और शरण हैं।

६४९। ये अरहंतादिक ही शरण क्यों हैं—क्योंकि अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये ही चारों मंगलदायक हैं ये ही लोकोत्तम हैं और येही उत्तम शरण हैं। इनके सिवाय न तो कोई मंगलदायक हैं न लोकोत्तम है और न कोई शरण है।

६५०। इन चारोंकी शरण लेनेसे क्या लाभ होता है—जैसे वायु- के चलनेसे मेघ विलीन होजाते हैं उसीप्रकार इन अरहंता- दिकी शरण लेनेसे रोग क्लेश आदि संपूर्ण दुःख क्षणभरमें नष्ट होजाते हैं इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

६५१। इन अरहंतादिकोंकी शरण लेनेसे और क्या लाभ होता है- पाप सब नष्ट होजाते हैं उत्कृष्ट धर्मकी प्राप्ति होती है और तीनों लोकोंकी शोभा और सुखके समुद्ररूप मोक्षकी प्राप्ति होती है।

६५२। अरहंतादिकोंकी शरण लेनेसे पाप सब नष्ट होजाते हैं और मोक्षादिकी प्राप्ति होती है यह बात क्या कहीं प्रत्यक्ष भी देख

पड़ती है-हां अवश्य। क्योंकि जो पुरुष संसारके दुःखोंसे अतिशय संत्रस्त होजाते हैं वे मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये अन्य सबको छोडकर केवल इन्हीं अरहंतादिकोंका शरण लेते हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इनकी शरण लेनेसे अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है किंतु अवश्य सिद्ध होता है।

६५३। इन अरहंतादिकोंका ऐसा अद्भुत माहात्म्य जानकर पंडितोंको क्या करना चाहिये-ऐहिक और पारलौकिक संपूर्ण पदार्थोंकी सिद्धि होनेकेलिये इन्हीं अरहंतादिकोंके चरणकमलोंका सेवन करना चाहिये।

६५४। ऐसा कौन है जो इस जीवको सदा शरण हो—अनंत सुख देनेवाला मोक्ष ही इस जीवको सदा शरण है। संसारके दुःखोंसे भयभीत हुये पुरुषोंको तपश्चरण और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकेद्वारा यही एक मोक्ष संपादन करलेना उचितहै

६५५। संसारानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—यह जन्ममरणरूप संसार अनंत है दुःखोंका सागर है कल्याणरहित है अनादि अनिधन है नित्य है और पंच परावर्तन द्वारा परिभ्रमणरूप है इसप्रकार संसारका दुःखप्रद स्वरूप चिंतवन करनेको संसारानुप्रेक्षा कहते हैं।

६५६। परावर्त्तन पांच कौन २ हैं-द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव। इनके भेदसे संसार भी पांच प्रकार कहलाता है।

६५७। द्रव्यसंसार किसे कहते हैं-द्रव्यसंसार (पुद्गलपरावर्त्तन)

दो प्रकार है एक नोकर्मद्रव्यसंसार और दूसरा कर्मद्रव्य संसार। औदारिक वैक्रियक आहारक इन तीन शरीर और छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गलवर्गणाओंकी नोकर्म और ज्ञाना-वरणादिकी कर्म संज्ञा है। यह जीव प्रति समय कर्मनोकर्म वर्गणाओंका ग्रहण करता रहता है। मानलो कि किसी जीव-ने किसी एक समयमें नोकर्मवर्गणा ग्रहण की और वे द्वितीय तृतीय आदि समयमें निर्जीर्ण होगईं। उन वर्गणाओंकी जितनी संख्या थी और जितना उनमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध तथा इनका तीव्र मध्यम मंद परिणाम था कालांतरमें वे ही वर्गणा उतनी ही संख्या परिणामको लिये जब यह जीव ग्रहण करे तब एक नोकर्म संसार होता है। मध्यके अपरिमित समयमें इस जीवने अनंत अग्रहीत[1] वर्गणा ग्रहणकी अनंतमध्यग्रहीत और अनंतमिश्रवर्गणा ग्रहण की परंतु वे सब गिनतीमें नहीं हैं।

इसीप्रकार किसी जीवने किसी समय में ज्ञानव-रणादिकर्मोंके योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहण की और वे द्वितीय तृतीयादि समयमें निर्जीर्ण होगईं। उन वर्गणाओं

---

१ जो पुद्गलवर्गणा अबतक ग्रहण न की हों उन्हें अगृहीत कहते हैं। गृहीत तथा अगृहीत इन दोनों की मिली हुई वर्गणाओंको मिश्र कहते हैं। जिन वर्गणाओंके समूहमें पार्श्ववर्त्ती वर्गणायें अगृहीत हों और मध्यकी वर्गणा गृहीत हों उन्हें मध्य गृहीत कहते हैं।

की भी जितनी संख्या और जितना उसमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध तथा इनका तीव्र मंद मध्यम परिणाम था कालांतरमें वह जीव उतनी ही संख्या और परिणामको लिये उन्हीं वर्गणाओंको जब ग्रहण करेगा तब एक द्रव्यकर्मसंसार गिना जायगा। मध्यमें अगृहीत मिश्र वा मध्यगृहीत अनंतबार ग्रहण करेगा परंतु वह ग्रहण इस परिवर्त्तनकी गिनतीमें नहीं है। इसप्रकार इस संसारमें भ्रमण करते हुये इस जीवने नोकर्मके योग्य तथा ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोंकी संपूर्ण पुद्गलवर्गणायें अनंतबार ग्रहण कीं और छोड़दीं इसप्रकारके विस्तृत परिभ्रमणको द्रव्यसंसार कहते हैं।

६५८। क्षेत्र संसार क्या है—कोई सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव जघन्य अवगाहनाके शरीरको धारणकर मेरुके नीचे लोकके मध्यभागमें जन्म ले और वह इसप्रकार जन्म ले कि जिसमें उस जीवके मध्यके आठ प्रदेश लोकके मध्यके आठ प्रदेशोंमें आजांय। आयु पूर्ण होनेपर मरजाय। फिर संसारमें भ्रमण कर किसी कालमें वहीं उसीप्रकार जन्म ले मरकर फिर संसारमें भ्रमणकर वहीं उसीप्रकार जन्म ले। इसप्रकार भ्रमण करता २ असंख्यातबार वहीं उसीप्रकार जन्म ले। अनंतर एक प्रदेश अधिक क्षेत्रमें जन्म ले। फिर भ्रमण करता २ किसीकालमें दो प्रदेश अधिक क्षेत्रमें जन्म ले। इसीप्रकार श्रेणीवद्ध क्रमसे एक २ प्रदेश बढता हुआ

लोकाकाशके संपूर्ण प्रदेशोंमें जन्म ले क्रमरहित प्रदेशोंमें जन्म लेना इसमें शामिल नहीं होता इसप्रकार जितने अपरिमितकालमें वह जीव अपने जन्म द्वारा लोकाकाशके संपूर्ण प्रदेश पूरा करे उतना उसका वह अपारीमित काल क्षेत्रपरिवर्त्तन कहलाता है।

६५९। कालसंसार क्या है—कोई जीव उत्सर्पिणीकालके पहले समयमें उत्पन्न हुआ। मरकर संसारमें भ्रमण करता २ फिर किसी दूसरी तीसरी या चौथी उत्सर्पिणीकालके दूसरे समयमें उत्पन्न हो इसीप्रकार प्रत्येक किसी उत्सर्पिणीके तीसरे चौथे आदिसमयमें जन्म लेकर क्रमसे उत्सर्पिणीके अवसर्पिणीके संपूर्ण समयोंको अपने जन्म द्वारा पूरा करे। मरण द्वारा भी इसीप्रकार क्रमसे उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके सब समयोंको पूरा करे। क्रमरहित मध्यके समयोंमें जन्ममरणकरना इसमें शामिल नहीं है। इसप्रकारका सुविस्तृत परिभ्रमण एक कालपरिवर्त्तन वा कालसंसार कहा जाता है।

६६०। भवसंसार किसे कहते हैं—कोई जीव प्रथमनरकमें दशहजारकी जघन्य आयु पाकर उत्पन्न हुआ और आयु समाप्तकर मरगया। अनंतर फिर संसारमें भ्रमण करता हुआ किसीकालमें वहीं उतनी ही आयु पाकर उत्पन्न हुआ और मरगया, पश्चात् फिर भ्रमण करता२ तीसरी चौथी आदिबार वहीं उसीप्रकार जन्म ले। इसप्रकार दशहजार वर्षके स-

मयोंके बराबर वहीं जन्म ले, तदनंतर फिर किसी समयमें एक समय अधिक दशहजार वर्षकी आयु पाकर जन्म ले। फिर किसी कालमें दो समय अधिक दशहजार वर्षकी आयु पाकर जन्म ले। इसप्रकार एक २ समय अधिक आयुपाकर जन्म लेता हुआ नरकायुके तेतीस सागर पूरा करे। क्रमप्राप्त आयुसे हीनाधिक आयु पाकर नरकमें जन्म लेना इस गिनतीमें नहीं हैं इसीप्रकार क्रमसे तिर्यंच योनि और मनुष्य योनिकी अंतर्मुहूर्त्तसे लेकर तीन पल्यतककी आयु पाकर जन्म ले। फिर देवगतिमें भी इसीप्रकार जघन्य दशहजार वर्षकी आयुसे लेकर इकतीस सागरतककी आयु पाकर जन्म मरण करै। यहां सबजगह भी क्रमप्राप्त आयुसे हीनाधिक आयु पाकर जन्म मरण करना गिनतीमें नहीं है। इस प्रकारका यह महा विस्तृत परिभ्रमण भवसंसार कहाजाताहै

६६१। इस भवसंसारके परिभ्रमणमें देवगतिकी तेतीस सागरकी आयु क्यों नहीं लीगई—नवग्रैवेयककी उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर है। मिथ्यात्वयुक्त यह जीव नवग्रैवेयक तक ही जाता है। इसलिये भवसंसारके परिभ्रमणमें इकतीस सागर तक की आयु ही ली गई है। नव ग्रैवेयकके आगे अनुदिश और अनुत्तरविमानोंमें सम्यग्दृष्टी जीव ही उत्पन्न होते हैं जो कि एक या दो भव धारण कर अवश्य मुक्त हो जाते हैं। उन्हें संसारमें अधिक भ्रमण नहीं करना पडता इसलिये उनकी

आयु इस परिभ्रमणमें शामिल नहीं हैं।

६६२। भावसंसार किसे कहते हैं—अनंत परिणामोंके द्वारा संसारमें परिभ्रमण करना भाव संसार कहलाता है। यह जीव कर्मोंकी स्थितिके कारण संसारमें भ्रमण करता है। स्थितिके लिये कषायाध्यवसायस्थान कारण है और कषायध्यवसायकेलिये अनुभागस्थान और अनुभागस्थानकेलिये योगस्थान कारण होते हैं। उत्कृष्ट मध्यम जघन्य जैसी स्थिति होगी उसकेलिये वैसे ही कषायाध्यवसाय,अनुभागाध्यवसाय और योगाध्यवसाय कारण होंगे।

मानलो कि किसी संज्ञी पंचेंद्रियपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवने भाव परावर्त्तन प्रारंभ किया। उसके ज्ञानावरणकर्मकी जघन्यस्थिति अंतःकोडाकोडी[1] सागर पड़ती है उसकी उस जघन्य स्थितिकेलिये असंख्यात लोकपरिमाण कषायाध्यवसायस्थान कारण होते हैं (स्मरण रहे कि एक २ कषायाध्यवसायस्थानमें अनंतानंत अविभागीप्रतिच्छेद होते हैं और वे षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप होते हैं) एक २ कषायाध्यवसायस्थानकेलिये असंख्यात लोकपरिमाण अनुभागाध्यवसायस्थान कारण होते हैं एक २ अनुभागाध्यवसायस्थानकेलिये श्रेणीके असंख्यातभाग परिमाण योग-

---

१। करोडको करोडसे गुणा करनेसे कोडाकोडी होता है। एक कोडाकोडी सागर के भीतरकी स्थिति अंतःकोडाकोडी सागर कहलाती है।

स्थान कारण होते हैं। अभिप्राय यह है कि—जघन्यस्थितिके लिये जैसे जघन्य योगस्थान चाहिये उनमेंसे एक हुआ फिर चतुःस्थान वृद्धिहानि रूप होता हुआ दूसरा हुआ, तीसरा हुआ इसप्रकार जब उनकी संख्या श्रेणीके असंख्यातवें भाग परिमाण हो जायगी तब एक अनुभागाध्यवसायस्थान होगा फिर इसीप्रकार दूसरा अनुभागाध्यवसायस्थान होगा। इस प्रकार जब असंख्यात लोकपरिमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान होजांयगे तब एक कषायाध्यावसाय स्थान होगा इसीक्रमसे, दूसरा तीसरा आदि असंख्यात लोकपरिमाण कषायाध्यवसायस्थान होने पर एक जघन्यस्थिति स्थान होगा। यह जघन्यस्थितिस्थान उस पंचेंद्रिय जीवका वही अंतःकोड़ाकोड़ी सागर समझना चाहिये। अंतःकोड़ाकोड़ी सागरस्थितिके योग्य कषायाध्यवसायस्थान पूर्ण होजाने पर फिर एक समय अधिक अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिके योग्य कषायाध्यवसाय, अनुभागाध्यवसाय और योगाध्यवसायस्थान लेने चाहिये। अनंतर दो समय अधिक अंतःकोड़ाकोड़ी सागरस्थितिके योग्य कषायाध्यवसायदि स्थान लेने चाहिये। इसप्रकार मूलोत्तरप्रकृतियोंकी जघन्यस्थिति से लेकर उत्कृष्टस्थिति तकके योग्य संपूर्ण कषायाध्यवसाय अनुभागाध्यवसाय और योगस्थानरूप आत्माके परिणाम पूर्ण हो जांय तब एक भावपरिवर्त्तन होता है।

द्रव्यपरिवर्त्तनका अनंतकाल है उससे अनंतगुणा-क्षेत्रपरिवर्त्तनका, उससे अनंतगुणा कालपरावर्त्तनका, उससे अनतंगुणा भवपरावर्त्तनका और उससे अनंतगुणा भावपरिवर्त्तनका काल है। इस जीवने अबतक ऐसे २ अनंत परावर्त्तन किये हैं।

५६३। कौन २ जीव इन पंच परावर्त्तनोंमें परिभ्रमण किया करते हैं— अव्रती मिथ्यादृष्टी जीव ही इनमें परिभ्रमण करते रहते हैं सम्यग्दृष्टी जीवोंको कभी इनमें भ्रमण नहीं करना पड़ता।

६६४। इस संसारमें सुख कितना है और दुःख कितना—पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे उत्पन्न हुआ सुख केवल सरसोंके समान है और उन विषयोंके सेवन करनेसे जो पाप होते हैं उनसे उत्पन्न हुआ दुःख मेरुपर्वतके समान है।

६६५। तब फिर संसारी जीव इस बातको क्यों नहीं जानते हैं— क्योंकि वे मोहनीय कर्मके उदयसे उन्मत्तके समान हो रहे हैं उन्हें कार्य अकार्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिये वे नहीं जान सकते कि विषयभोग जरासा सुख दिखाकर अंतमें महा दुःख देने वाले हो जाते हैं।

६६६। ज्ञानी लोग इन विषयभोगोंसे उत्पन्न हुए सुखको कैसा मानते हैं-ज्ञानीलोग जानते हैं कि विषयसेवन करनेसे अनंत पाप उत्पन्न होता है और पापोंसे दुःख होता है। इसलिये वे इस सुखाभासको संपूर्ण दुःखोंका निधान और अशुभ ही मानते हैं।

६६७ । जो लोग पंचेंद्रियोंके सेवन करनेसे कल्याण और सुख चाहते हैं वे कैसे हैं—वे मूर्ख मिथ्यादृष्टी लोग कालकूट विषः पीकर जीवित रहना चाहते हैं।

६६८ । पंचेंद्रियोंसे उत्पन्न हुये सुख निषिद्ध क्यों हैं–क्योंकि ये सुख वास्तविक सुख नहीं हैं। केवल भूख प्यास आदि दुःखोंके शांत करनेकेलिये एक प्रतीकारमात्र हैं जैसे किसी रोगकेलिये कोई औषधि प्रतीकार हो।

६६९ । यह बात कैसे प्रगट हो कि ये इंद्रियोंसे उत्पन्नहुए विषयभोग केवल भूख प्यास आदि दुःखोंके प्रतीकार मात्र ही हैं-यदि भूख प्यास आदिका कोई किंचित मात्र भी दुःख न हो और उस समय अच्छेसे अच्छा भी भोजन किया जाय अथवा दूध पानी आदि पिया जाय तो उस समय उस भोजन पानसे किंचित सुख नहीं मिलताहै। यदि इंद्रियोंसे उत्पन्नहुये विषयोंसे सुखकी प्राप्ति होती तो विना भूख प्यासके भोजनपान करनेपर भी सुखकी प्राप्ति होनी चाहिये थी। किंतु नहीं होती इससे स्पष्ट सिद्ध है कि विषयसेवन केवल प्रतीकारमात्र है सुखजनक नहीं हैं।

६७० । तब फिर इस संसारमें चक्रवर्त्ती आदि महापुण्यवान् पुरुष तो अवश्य सुखी होंगे–नहीं। क्योंकि उन्हेंभी मानभंग आदि अनेक दुःख देखने पड़ते हैं। जैसे श्रीवृषभदेव तीर्थंकरके पुत्र भरतचक्रवर्त्तीको मानभंगका दुःख सहनकरना पड़ाथा;

६७१। संसारी जीवोंको कैसे २ दुःख भोगने पड़ते हैं—पाप कर्मके उदयसे उन्हें अनेकप्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं जैसे कोई किसी रोगसे दुःखी है कोई किसी बंधु मित्रादिके विरहसे ही पीड़ित है। कोई किसीके शोकमें ही डूबा है कोई दरिद्रताके दुःख भोग रहा है कोई लोभके फँदेमें फँसकर विषयरूपी घोर अटवीमें (बनमें) इधर उधर घूम रहा है। कोई सेवा कर रहा है कोई अन्य परिश्रम कर रहा है कोई कामज्वर से जरजरित हो रहा है। कहांतक कहा जाय वे लोग सदा दुःखी रहते हैं उन्हें कभी लेशमात्र भी सुख नहीं मिलता है।

६७२। भगवन्! कोई उदाहरण देकर समझाइये—जैसे गाय के सींगोंसे दूध नहीं निकलता, दावानल अग्निसे कमल उत्पन्न नहीं होता, सर्पके मुखमें अमृत नहीं रहता और विष भक्षण करनेसे जीवितव्य नहीं रहता। इसीप्रकार विषय सेवन करनेसे बुद्धिमानोंको लेशमात्र भी सुख कहीं नहीं देख पड़ता है।

६७३। तब फिर इस दुःखसागर संसारमें कोई सुखी है या नहीं—हां हैं। जो वीतराग मुनींद्र हैं अथवा परम संतोषी हैं वे ही इस संसारमें सुखी हैं। इनके सिवाय संसारमें अन्य कोई सुखी नहीं है।

६७४। इन मुनियोंको कैसा सुख प्राप्त होता है-जो सुख परमोत्कृष्ट कहलाता है, केवलज्ञानगोचर है, ध्यानके द्वारा पर-

मानंदस्वरूप आत्मासे उत्पन्न होता है और जो चितारूपी अग्निसे संतप्त हृदयवाले इंद्र चक्रवर्ती आदि महा पुण्यवान् पुरुषोंको करोड़ों उपाय करनेसे भी नहीं प्राप्तहो सकता वह केवल आत्मजन्य सुख उन मुनियोंको सदा प्राप्त होता रहता है ।

६७५ । निश्चयनयसे मुनियोंको किस सुखकी प्राप्ति होती है— निर्वाणजन्य परम सुखकी ।

६७६ । बुद्धिमानोंको वह निर्वाण किसप्रकार प्राप्त होता है— रत्नत्रयके द्वारा ।

६७७ । स्वात्महित चाहनेवालोंको यह शुद्ध व्याख्यान सुनकर क्या करना उचित है–तपश्चरणरूपी शस्त्रके द्वारा मोहोदयसे उत्पन्न हुये इंद्रियरूपी शत्रुओंको दमनकरके शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहिये ।

६७८ । एकत्वभावना किसे कहते हैं—इस संसारमें यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है। अकेला ही सुखी, अकेला ही दुःखी, अकेला ही रोगी-और अकेला ही नीरोगी रहता है। कर्मरूपी शत्रुके फंदेमें पड़ा हुआ यह जीव अकेला ही चतुर्गतियोंमें भ्रमण करता है अन्य कोई भी इसको सहायक नहीं होसकता। इसप्रकार चिंतवन करनेको एकत्वानुप्रेक्षा कहते हैं।

६७९ । यह जीव अपना कुटुंब पालन पोषण करनेकेलिये प्रतिदिन

अनेक पाप किया करता है उसका फल किस २ को भोगना पड़ता है—
इन पापोंके करनेवाले इस जीवको ही वे सब पापोंके कटुक-
फल भोगने पड़ते हैं। उन कटुकफलोंसे कुटुंबी जन सर्वथा
अलग रहते हैं।

६८० । वास्तवमें यह कुटुंब क्या है— जैसे अनेक पक्षीगण
इकट्ठे होकर केवल फल खानेकेलिये किसी फले फूले वृक्षपर
बैठ जाते हैं और जब वह वृक्ष फलरहित होजाता है तब वे
सब पक्षी उसपरसे उड़जाते हैं। ठीक इसीप्रकार स्त्री पुत्र
भाई बहिन आदि कुटुंबी और स्वजन जन केवल अपने २
स्वार्थकेलिये इस कुलरूपी वृक्षपर आ बैठते हैं और चले
जाते हैं।

६८१ । 'यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है, यह धन मेरा है' इत्या-
दि कहने और चिंतवन करनेवाले लोगोंको उन स्त्री पुत्रादिकोंसे क्या
लाभ होता है—उन्हें उन स्त्री पुत्रादिकोंसे लाभ तो कुछ नहीं
होता किंतु वे लोग रातदिन उनकेलिये पापउपार्जन करते
रहते हैं और अंतमें उन सबको छोड़कर दुर्गतियोंमें पड़े २
अनेक दुःख भोगा करते हैं।

६८२ । हे नाथ ! वास्तवमें यह कुटुंब कैसा है—मोही जीवों-
केलिये यह कुटुंब धर्मको नाश करनेवाला, पापको बढाने
वाला और नरकका मुख्य कारण है।

६८३ । इस जीवको कुटुंबके निमित्तसे ऐसा पाप क्यों होता है–

क्योंकि मोही गृहस्थके दोनों ही शुभ ध्यान सर्वथा नहीं होते और वह कुटुंबकेलिये अनेक दुःख देनेवाले महापाप उपार्जन किया करता है ।

६८४ । तब फिर कुटुंबका क्या करना चाहिये —सर्वथा त्याग।

६८५ । कुटुंबको छोड़कर क्या करना चाहिये —बनमें जाकर दीक्षित हो जाना चाहिये ।

६८६ । दीक्षा लेकर क्या करना चाहिये—संयम और तपश्चरण पालन करना चाहिये । एकत्वभावनाका चिंतवन करना चाहिये और सदा अपने आत्मध्यानमेंही लीन रहना चाहिये

६८७ । एकत्वभावनाके चिंतवन करनेसे क्या फल मिलता है— एकत्वभावनाके चिंतवन करनेसे कर्म क्षय हो जाते हैं कर्मोंके अत्यंत क्षय हो जानेसे मोक्षगति प्राप्त होती है और वहां इसे आत्माको शुद्ध एकत्व सिद्धपद प्राप्त हो जाता है ।

६८८ । घर कुटुंबादिकोंमें ममत्व रखनेसे क्या होता है--अनेक पाप और दुःख भोगने पड़ते हैं आत्माके ममत्वरूप परिणामोंसे मरणसमयमें अशुभ आर्त्त रौद्रादिक ध्यान हो जाता है और अशुभ ध्यानसे अवश्य दुर्गतियोंमें पड़ना पड़ता है।

६८९ इसका क्या कारण है अर्थात् ममत्वरूपपरिणामोंसे इसे पाप और दुःख क्यों भोगने पड़ते हैं —क्योंकि इस जीवके प्रतिसमय निर्ममत्व (मोह वा ममत्वरहित) परिणामोंसे अनंत कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है और ममत्वरूप परिणामोंसे प्रतिसमय

अनंत कर्मोंका आस्रव, बंध होता रहता है। इसलिये ममत्व-रूप परिणामोंसे इसे सदा पाप और दुःख ही भोगने पड़ते हैं

६९० । यह सब समझबूझकर बुद्धिमानोंको क्या करना उचित है-उन्हें सदा ध्यानरूपी अग्नि प्रज्वलितकर इसी एकत्व भावनाका चिंतवन करना चाहिये और वह चिंतवन भी इसप्रकार करना चाहिये कि जो आत्मा ज्ञानदर्शनस्वरूप है सम्यक्त्व-रूप है अनंतसुखका स्थान है और अनंतगुणोंका समुद्र है वह मेरा आत्मा ही सदा नित्य है वही मेरी संपत्ति है। इस आत्मासे अन्य शरीरादिक मेरे नहीं हैं वे तो कर्मजन्य पौद्ग-लिक हैं। इनसे मेरा कुछ भी संबंध नहीं है इत्यादि।

६९१ । अन्यत्वभावना किसे कहते हैं—ये पुत्र स्त्री गृह कुटुंब धनादिक मेरे आत्मासे बिलकुल भिन्न हैं मेरे नहीं हैं और न मेरा इनसे कोई संबंध है। क्योंकि ये सब कर्मोदयसे होते हैं। जो जो कर्मोदयसे होते हैं वे सब आत्मासे भिन्न होते हैं इत्या-दि चिंतवन करना अन्यत्व भावना कहलाता है।

६९२ । पुत्र स्त्री शरीरादिक कहां और किसप्रकार आत्मासे भिन्न देखे जाते हैं—जन्म मरण जरा रोग क्लेश आदिके समय ये शरीरादिक प्रत्यक्ष आत्मासे भिन्न जान पड़ते हैं उस समय मूर्ख विद्वान् सबको यह प्रतीति हो जाता है। क्योंकि आत्मा ज्योंका त्यों रहता है जन्म मरण जरा रोगादिक शरीरको ही होते हैं। इसलिये ये आत्मासे अवश्य भिन्न हैं।

६९३। क्या इस आत्माके साथ २ उत्पन्न होनेवाले इंद्रिय और शरीर भी इस आत्माके निजके नहीं हैं— नहीं। ये इंद्रिय शरीरादिक आत्माके साथ २ उत्पन्न होकर तथा सदा साथ २ रहकर भी इसी आत्माके उत्तम क्षमादिक अथवा सम्यग्दर्शनादिक धर्मरूपी रत्नोंके भीतरी चोर हैं। इसलिये ये कभी आत्माके निजके नहीं हो सकते।

६९४। आत्माके खास प्रदेशोंके साथ होनेवाली मनवचनकायकी क्रियायें आत्माकी निजकी हैं या नहीं—नहीं। क्योंकि ये मनवचनकायकी क्रियायें कर्मके द्वारा दियेहुए दंडके समान हैं कर्म प्रायः इन्हींके द्वारा आत्माको दुःखादिक दिया करता है। इसके सिवाय नवीन दुष्कर्म आनेकेलिये ये मूल कारण हैं शरीरको वधबंधनादिकमें डालनेवाली और अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवाली हैं। इसलिये ये मनबचनकायकी क्रियायें भी आत्माकी निजकी कभी नहीं हो सकती।

६९५। तब फिर आत्माका निजका क्या है— सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप स्वकीय आत्मा ही इस आत्माका स्वकीय (निजका) है। इस आत्मासे भिन्न शरीर पुत्र धनादिक इस आत्माके निजका कभी नहीं हो सकते।

६९६। अन्यत्वभावनाके चिंतवन करनेसे क्या लाभ होता है— यह जीव सदा सुखी रहता है स्त्री पुत्र धनादिके वियोग होने पर भी इस भावनाके चितवन करनेसे इसको कभी दुःख

नहीं होता किंतु ऐसे समयमें भी इसका संवेग गुण सदा ब-
ढता जाता है। यह अपूर्व लाभ केवल इसी भावनाके चित-
वन करनेसे होता है।

६९७। इस भावनाके चिंतवन करनेसे परलोकमें क्या लाभ होता है—
इन अनित्य शरीरादिकसे सर्वथा भिन्न शुद्ध बुद्ध चिदानंद-
स्वरूप आत्माकी प्राप्ति होती है। अर्थात् अनित्यानुप्रेक्षाके
चिंतवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होती है।

६९८। अनित्यानुप्रेक्षाका ऐसा सुंदर और उत्तम फल समझकर
बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—उन्हें शीघ्र मोक्ष प्राप्त करलेनेके
लिये हृदयसे संपूर्ण ममत्वरूप परिणाम छोड़कर शरीरादिक-
से सर्वथा भिन्न शुद्ध बुद्ध चिदानंद स्वरूप अपने आत्माका
ही सदा चिंतवन और ध्यान करते रहना चाहिये।

६९९। अशुचिभावना किसे कहते हैं—यह शरीर हड्डी मांस
रुधिरसे बना हुआ है मल मूत्रादिकसे भरा हुआ है महा अ-
पवित्र और वीभत्स है इत्यादि चिंतवन करना अशुचि भाव-
ना कहलाती है।

७००। वस्त्रालंकारादिकसे विभूषित यह शरीर बाहरसे शोभायमान
दृष्टिगोचर होता है परंतु यह भीतरसे कैसा है—ठीक वैसा ही जैसे
कि किसी चीजसे ढके हुये मलमूत्रादिक।

७०१। इस शरीररूपी झोंपड़ेमें इसके साथ साथ उत्पन्न होनेवाली
कौन २ अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है—इस शरीररूप झोंपड़ेमें

क्षुधा तृषा काम क्रोध रोग कषाय आदि दुःसह दावानल सदा प्रज्वलित रहा करती है।

७०२। इस शरीरमें धर्मभक्षक कौन २ हैं—दुर्धर कषायादिक।

७०३। धर्मको हरण करनेवाले कौन २ इस शरीरमें रहते हैं—इंद्रियरूपी चोर।

७०४। जो लोग स्वेच्छानुसार अपने शरीरका पालन पोषण करते हैं उन्हें इस लोकमें क्या फल मिलता है और परलोकमें क्या मिलता है—उन्हें इसलोकमें रातदिन सैकड़ों रोग क्लेशादिक घेरे रहते हैं और परलोकमें नीचदुर्गतियोंके अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

७०५। शरीरके पालनपोषण करनेवालोंको रोग क्लेशादि दुःख क्यों सहने पड़ते हैं—जिन्हें एक उपवास करनेकी शक्ति है वे एक उपवास भी नहिं करके जब कभी रोगी होते हैं तब उन्हें महीनोंका लंघन करना पड़ता है। भावार्थ—उपवास करना आरोग्यताका भी कारण है महीनेमें दो चार उपवास अवश्य करना चाहिये। जो पुरुष कभी उपवास नहीं करता निरंतर शरीर पुष्ट करता रहता है वह अवश्य ही रोगग्रस्त हो जाता है और उसे महीनोंके लंघन करने पड़ते हैं।

७०६। उपवासादिके करनेसे क्या लाभ होता है--आरोग्यता बढ़ जाती है नेत्रादि इंद्रियोंका तेज बढ़ जाता है और परलोकमें स्वर्ग मोक्षादिके सुख प्राप्त होते हैं।

७०७। शरीर किसका सफल है—जिन्होंने तपश्चरण व्यु-

त्सर्ग और ध्यानादिके द्वारा अपना शरीर कृष करलिया है उन्हीका वह कृष शरीर सार्थक है तथा वही शरीर पूज्य है।

३०८। सर्वथा असाररूप इस शरीरमें सार क्या है–स्वर्ग और मोक्षके साधनरूप तपश्चरण करना, धर्म पालन करना श्रेष्ठ आचरण पालना और यम नियमादिकका पालन करना ही इस शरीरमें सार है।

३०९। वह सब समझकर और यह उत्तम मनुष्य शरीर पाकर बुद्धिमानोंको इससे क्या काम ले लेना चाहिये–बुद्धिमानोंको इस शरीरसे उत्पन्न हुये किंचित सुखमें भूलना नहीं चाहिये किंतु इससे शीघ्र ही स्वर्ग मोक्षादिका उपाय संचय कर लेना चाहिये।

३१०। आस्रवानुप्रेक्षा किसे कहते हैं–इस आत्माकेमनवचनकायद्वारा जो प्रतिसमय कर्म आते रहते हैं उनका चिंतवन करना आस्रवानुप्रेक्षा है। इस आस्रवका स्वरूप चिंतवन करनेसे वैराग्य उत्पन्न होता है तथा संवरकी ओर चित्त बढता है।

३११। निरंतर कर्मास्रव होनेसे क्या होता है–कर्मास्रवसे ही यह जीव संसाररूपीसमुद्रमें सदा गोते खाता रहता है और अपरिमित पंच परावर्त्तनोंमें भ्रमण करता रहता है। जैसे किसी नावमें छिद्र हो जानेसे बराबर जल आ रहा हो तो वह नाव शीघ्र ही डूब जाती है ठीक इसीप्रकार कर्मास्रव होने-

से यह जीव संसाररूप समुद्रमें डूब जाता है।

७१२। संवरानुप्रेक्षा किसे कहते हैं--आते हुये कर्मोंका रुकना कैसे हो इत्यादि विचार करते रहना संवरानुप्रेक्षा कहलाती है

७१३। संवरसे सज्जनोंको क्या लाभ होता है--जैसे किसी जहाजके छिद्र बंद हो जानेसे उसमें आता हुआ पानी रुक जाता है तब यह मनुष्य उस जहाजकेद्वारा शीघ्र ही इष्ट स्थानपर पहुंच जाता है। ठीक इसीप्रकार संवरके द्वारा यह जीव संसाररूपी समुद्रसे पार होकर अपने इष्टस्थान मोक्षरूपी महाद्वीपमें पहुंच जाता है।

७१४। निर्जरानुप्रेक्षा किसे कहते हैं--तपश्चरणके द्वारा अथवा स्वतः स्थिति पूर्ण होजाने पर एकदेश कर्मका क्षय होना निर्जरा कहलाती है। निर्जराका चिंतवन करना निर्जरानुप्रेक्षा कहलाती है। यह निर्जरा दो प्रकार की है एक सविपका निर्जरा और दूसरी अविपाक निर्जरा।

७१५। सविपाकनिर्जरा किसे कहते हैं--जो कर्म अपना फल देकर स्वयं गल जाते हैं उसे सविपाकनिर्जरा कहते हैं। यह सविपाकनिर्जरा प्रत्येक प्राणीके प्रतिसमयमें हुआ करती है और प्रायः संपूर्ण कर्मोंकी हुआ करती है।

७१६। अविपाकनिर्जरा किसे कहते हैं--मुनिगण मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये घोर तपश्चरणके द्वारा जो कर्मक्षय करते हैं वह

अविपाक निर्जरा है। यह अविपाकनिर्जरा ही साक्षात् मोक्ष देनेवाली है।

७१७। इन दोनों निर्जराओंमें कौनसी निर्जरा हेय है और कौनसी उपादेय है--संपूर्ण जीवोंके स्वयं कर्मके उदयसे होनेवाली सविपाकनिर्जरा ही हेय अर्थात् त्याग करने योग्य है क्योंकि यह निर्जरा अन्य नवीन कर्मोंका आस्रव करनेवाली है। अर्थात् जैसा २ कर्मोदय होता रहता है उसीप्रकार आत्माके राग द्वेषादिरूप परिणाम होते रहते हैं और उनसे फिर नवीन कर्मोंका आस्रव होता रहता है, इसलिये स्वयं कर्मोदयसे होनेवाली सविपाकनिर्जरा सदा हेय है।

७१८। उपादेयनिर्जरा कौनसी है—तपश्चरणादिके द्वारा मुनियोंके होनेवाली अविपाकनिर्जरा उपादेय अर्थात् ग्राह्य है क्योंकि यह निर्जरा ही साक्षात् मोक्षप्रद है।

७१९। कौनसी निर्जरा श्रेष्ठ गिनी जाती है-जो निर्जरा संवर पूर्वक होती है तथा तपश्चरण संयम और ध्यानादिके द्वारा होती है और उसीभवमें साक्षात् मोक्ष देनेवाली होती है वह निर्जरा अतिशय श्रेष्ठ गिनी जाती है।

७२०। इस उपर्युक्त निर्जरासे सज्जनोंको मोक्ष कैसे हो जाती है-ज्यों ज्यों यह संवरपूर्वक निर्जरा होती जाती है त्यों त्यों मोक्ष भी समीप ही आती जाती है। क्योंकि संवर होनेसे नवीन कर्मोंका आना रुक जाता है और समयसमयमें कर्म क्षय हो-

ते ही जाते हैं। ऐसी अवस्थामें संपूर्ण कर्म अवश्य क्षय हो जांयगे। संपूर्ण कर्मोंका क्षय होना ही मोक्ष है। इसलिये संवरपूर्वक निर्जरासे अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है।

७२१। इस संवरपूर्वक निर्जरासे मोक्षकी प्राप्ति कब होती है— ध्यानादिके द्वारा जब संपूर्ण कर्म क्षय हो जाते हैं उसीसमय उन योगियोंको साक्षात् आत्मस्वभावरूप मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

७२२। निर्जराके गुण कौन २ हैं-संसारिक दुःखोंका नाश हो जाना, उत्तमसुख सद्धर्म तथा अनेक ऋद्धियोंकी प्राप्ति होना और केवलज्ञानादि उत्तमगुणोंकी प्राप्ति होना आदि निर्जराके उत्तम २ गुण हैं।

७२३। निर्जराके ऐसे उत्तम गुण जानकर क्या करना चाहिये- मोक्षार्थी पुरुषोंको अपनी संपूर्ण शक्ति और संपूर्ण यत्नोंसे संपूर्ण कर्मोंके नाश करनेवाली इस पूज्य निर्जरा होनेका उपाय करना चाहिये।

७२४। लोकानुप्रेक्षा किसे कहते हैं-अधो मध्य ऊर्ध्वलोकका चिंतवन करना सो तीनों लोकोंको प्रकाश करनेवाली दीपकके समान लोकानुप्रेक्षा है।

७२५। अधो मध्य ऊर्ध्व इन तीनों लोकोंका आकार कैसा है-अधो-

लोक वेत्रासनके[1] समान नीचे अधिक चौडा और ऊपर कम चौड़ा है। मध्यलोक थालीके समान सपाट और गोल है और ऊर्ध्वलोक ठीक मृदंग के (पखावजके) समान है।

३२६। यह लोक कृत्रिम है या अकृत्रिम। अर्थात् इसे किसीने बनाया है या नहीं–यह लोक न किसी ब्रह्माने बनाया है न किसी विष्णुने पालन किया है और न किसी ईश्वरने इसका प्रलय किया है।

३२७। तब फिर यह लोक कैसा है–यह सदा नित्य और अकृत्रिम है। अधोलोक मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे इसके तीन भेद होगये हैं यह समस्त लोक जीवादि द्रव्यों से सर्वथा भरा हुआ है।

३२८। इसके अधोभागमें क्या है--सात नरक हैं। उन नरकोंमें चौरासीलाख बिल हैं और वे बिल सब नारकियोंसे भरे हुये हैं।

३२९। लोकके मध्य भागमें क्या है–मध्यलोकमें असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। उन सबके मध्यभागमें जंबूद्वीप है। इसका व्यास एक लाखयोजन है। जंबूद्वीप थालीके समान गोल है। इसके चारों ओर कंकणके समान लवणसमुद्र है। इसकी

---

१ वेत्रासन मूढेको कहते हैं और वह मूढा इसप्रकारका समझना चाहिये जो नीचे अधिक चौड़ा हो और ऊपर कम चौंडा हो। जैसी कि चार पैरकी गोल तिपाई होती है।

एक ओरकी चौड़ाई दो लाख योजन है । लवणसमुद्रके बाद धातकीद्वीप है । वह भी लवणसमुद्र को घेरेहुये चार लाख योजन चौड़ा है । इसीप्रकार उत्तरोत्तर द्विगुण द्विगुण चौड़ाईवाले असंख्यात द्वीप समुद्र पड़े हुये हैं । जंवूद्वीपके मध्यभागमें एक लाख योजन ऊंचा गोल सुदर्शन नामका मेरुपर्वत है । इसके सिवाय इस द्वीपमें लवणसमुद्रके तट तक पूर्व पश्चिम लंबे दीवारकी तरह छह कुल पर्वत और पड़े हुये हैं, इनसे इस दीपके सात खंड होजाते हैं जोकि भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र कहलाते हैं । छह कुलपर्वतोंपर छह हृद हैं । इनसे गंगा सिंधु आदि चौदह नदियां निकलती हैं और वे प्रत्येक क्षेत्रमें दो दो के हिसाबसे उपर्युक्त सातों क्षेत्रोंमें बहती हैं । प्रथम और अंतपर्वतके हृदसे तीन तीन नदियां और शेष हृदोंसे दो दो नदियां निकलती हैं । भरतक्षेत्रमें पूर्वकी ओर गंगा और पश्चिमकी ओर सिंधुनदी बहती है । इसके मध्यभागमें लवणसमुद्रके तटतक पूर्व पश्चिम लंबा एक वैताड्य पर्वत और पड़ा हुआ है जिसकी भिन्न २ दो गुफाओंमेंसे गंगा सिंधु नदियां पार होती हैं । इन गंगा सिंधु और वैताड्यपर्वतसे इस भरतक्षेत्र के छह खंड हो जाते हैं जिनमेंसे पांच म्लेच्छ खंड और एक (गंगा सिंधु वैताड्य और लवणसमुद्रके वीच वाला खंड) आर्यखंड वा आर्यक्षेत्र क-

हलाता है। म्लेक्षखंडोंमें म्लेक्ष आर्यक्षेत्रमें आर्य और वैताड्य पर्वतपर विद्याधर रहते हैं। ऐरावतक्षेत्रमें सब रचना भरत-क्षेत्रके समान है। हैमवत और हैरण्यवतक्षेत्रमें जघन्य भोग-भूमि है। हरि और रम्यक क्षेत्रमें मध्यम भोगभूमि है। विदे-हक्षेत्रके अंतर्गत देवकुरु तथा उत्तरकुरुमें उत्तम भोगभूमि है भरत ऐरावत और शेषके विदेहक्षेत्रोंमें कर्मभूमि है द्वितीय धातकीद्वीपमें मेरु, कुलपर्वत और क्षेत्र नदियोंकी सब रचना जंबूद्वीपसे दूनी है। धातकी द्वीपके बाद कालोद समुद्र और कालोदसमुद्रके बाद पुष्करद्वीप है। पुष्कर द्वीपके बीचों बीच कंकणाकार एक मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है जिससे इस द्वीपके दो भाग हो जाते हैं। पूर्वके आधेभागकी रचना धातकी द्वीपके समान है। इसप्रकार जंबूद्वीप धातकी द्वीप आधा पुष्करद्वीप यह लवणोद कालोद समुद्र सहित अढाई द्वीप मनुष्यलोक कहलाता है। मानुषोत्तरपर्वतके बाहर असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें जघन्यभोगभूमिके समान तिर्यंच रहते हैं। जिस भूमिपर द्वीप समुद्रादि हैं वह रत्नप्रभा भूमि कहलातीहै इसके तीन भाग हैं खरभाग पंकभाग और अब्बहुल भाग। अब्बहुलभागमें पहला नरक है। खरभाग व पंकभागमें भवनवासी और व्यंतरोंके भवन तथा आवास हैं।

---

१ जिसमें असि, मसि, कृषि, सेवा शिल्प और वाणिज्य इन छह कर्मोंका प्रवृत्ति हो उसे 'कर्मभूमि' कहते हैं और जहांपर इनकी प्रवृत्ति न हो उसे 'भोगभूमि' कहते हैं।

व्यंतरोंके आवास असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें भी हैं। इसभूमिके समान भागसे७९०योजनकी उंचाईसे लेकर९००योजनकी उंचाईतक ११० योजनके पटलमें दिशा विदिशाओंमें असंख्यात द्वीप समुद्रतक बराबर फैले हुये ज्योतिषीदेवोंके विमान हैं।

७३०। ऊर्ध्वलोकमें क्या है—सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे इन पांचप्रकारके ज्योतिषी देवोंके विमान हैं। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, महेंद्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये सोलह स्वर्ग हैं। इनमें कल्पवासी देव रहते हैं। इनके ऊपर नव ग्रैवेयक हैं नव अनुदिश हैं और विजय वैजयंत जयंत अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पांच पंचोत्तर हैं इनविमानोंमें कल्पातीत अहमिंद्र देव रहते हैं

७३१। फिर इनके ऊपर क्या है—इनके ऊपर जगतका सारभूत, नित्य, मनुष्यक्षेत्रके परिमाणके बराबर, श्वेतवर्ण, अनंत सिद्धजीवोंसे भरा हुआ परम उत्कृष्ट मोक्षस्थान है।

७३२। अधोगतिमें कौन २ जीव जाते हैं—नीच कर्म करनेवाले, नीचोंके साथ रहनेवाले सप्तव्यसनादि नीच व्यसनोंको सेवन करनेवाले नीचपुरुष ही अधोगतिको प्राप्त होते हैं।

७३३। मध्यलोकमें कौन २ जीव उत्पन्न होते हैं—जो पुण्य और

१ यद्यपि ये विमान मध्यलोकमें हैं तथापि ऊपर होनेसे ऊर्ध्वलोकमें गिनेगये हैं।

पाप दोनोंका संचय करते रहते हैं वे जीव मध्यलोकमें उत्प-न्न होते हैं। देव विद्याधर भी इस लोकमें जन्म लेते हैं और पापी जीव इसीलोकमें तिर्यंच होकर जन्म धारण करते हैं।

७३४। ऊर्ध्वलोकमें कौन २ जीव गमन करते हैं—श्रीजिनेंद्र-देवके भक्तजन, व्रती, शीलव्रतोंको पालन करनेवाले, सदा-चारी, उत्तम श्रावक और मुनिगण ही ऊर्ध्वलोकमें जाकर स्वर्गादिकोंके उत्तम सुख भोगते रहते हैं।

७३५। लोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षस्थानपर कौन कौन जीव जा सकते हैं—जो रत्नत्रयरूपी धनसे धनी हैं जिन्होंने तपश्चर-णादिके द्वारा अपने संपूर्ण कर्म नष्ट करदिये हैं ऐसे संसार-पूज्य श्रीजिनेंद्रदेवादिक ही उस पूज्य मोक्षस्थानपर जा सकते हैं।

७३६। लोकका ऐसा अनेकप्रकार स्वरूप जानकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—तपश्चरणरूपी तलवारके द्वारा कर्मरूपी शत्रुओंको शीघ्र ही नष्टकरके लोकके अग्रभागपर विराजमान हो जाना चाहिये।

७३७। बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—इस अपरिमित सं-सारमें मनुष्य जन्म प्राप्त होना अतिशय दुर्लभ है तथा म-नुष्यजन्ममें भी आर्यक्षेत्र उत्तम कुल और निरोग शरीर आ-दिका मिलना और भी दुर्लभ है इत्यादि चिंतवन करना बो-धि दुर्लभानुप्रेक्षा है।

३३८ । यह मनुष्यजन्म किसप्रकार दुर्लभ है—जैसे समुद्रमें फेंकेहुये चिंतामणि रत्नका मिलना अतिशय दुर्लभ है और जन्मांधको कोई खजाना मिलजाना अतिशय दुर्लभ है । उसीप्रकार नष्ट हुये पीछे मनुष्यजन्मका प्राप्त होना अतिशय दुर्लभ है ।

३३९ । मनुष्यजन्मकी प्राप्तिसे और दुर्लभ क्या है—आर्यक्षेत्रमें जन्म लेना उससे भी दुर्लभ है । क्योंकि वह काकतालीय-न्यायके[1] समान बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है और इसका भी कारण यह है कि आर्यक्षेत्रसे म्लेक्षक्षेत्र पांचगुणे अधिक हैं

३४० । आर्यक्षेत्रमें जन्म लेनेसे भी और दुर्लभ क्या है—कल्पवृक्षकी प्राप्तिके समान उत्तमकुलमें जन्म लेना उससे भी और अधिक दुर्लभ है ।

३४१ । उत्तमकुलमें जन्म लेनेसे और दुर्लभ क्या है—दीर्घ आयुका प्राप्त होना ।

३४२ । दीर्घ आयु प्राप्त होनेसे और दुर्लभ क्या है--नीरोग शरीरका मिलना ।

३४३ । नीरोगशरीर मिलजानेसे भी और दुर्लभ क्या है—पांचों इंद्रियोंकी चतुरता अर्थात् सब इंद्रियोंमें अपने २ विषय

---

१ तालवृक्षसे फलका गिरना और बीचमें ही कौवेका आकर उस तालकी चोट से मर जाना काकतालीय न्याय कहलाता है । यह ऐसा संयोग मिलना अतिशय कठिन है उसीप्रकार आर्यक्षेत्रमें जन्म लेना भी अतिशय कठिन है ।

ग्रहण करनेकी अच्छी शक्ति होना अतिशय दुर्लभ है। इन-के सिवाय निर्मल बुद्धि और ज्ञानादिकी प्राप्ति आदि श्रेष्ठ गुण उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

३४४। इन सबसे और अतिशय दुर्लभ क्या है--सच्चे देव और सच्चे गुरुकी प्राप्ति होना, धर्मश्रवण करना, सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना, निरंतर ज्ञानरूप उपयोग बना रहना, कषायों-की मंदता होना, राग द्वेष छूटना, और व्रत धारण करना आदि अनेक शुभ आचरण करना निधिके समान अतिशय दुर्लभ है।

३४५। यह बोधि अर्थात् रत्नत्रय किसके सफल है—जो जीव रत्नत्रयको प्राप्तकर तपश्चरणादिकेद्वारा शीघ्रही मोक्ष प्राप्तिके साधन में लगजाता है उसीका यह रत्नत्रय प्राप्त होना सफल गिना जाता है।

३४६। ये रत्नत्रय निष्फल किसके हैं--जो रत्नत्रयको पाकर प्रमाद करता है और मोक्षसाधन करनेमें आलस वा नि-रादर करता है उसका रत्नत्रय प्राप्त होना सर्वथा व्यर्थ है।

३४७। जो जीव रत्नत्रयको पाकर प्रमादवश उसे छोड़ देते हैं उन्हें क्या फल मिलता है—उन्हें अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तनतक करो-ड़ों योनियोंमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

३४८। यदि बाल्यकालमें ही रत्नत्रयकी प्राप्ति हो जाय तो उन्हें क्या करना चाहिये—उन्हें समझना चाहिये कि मृत्यु हमारे म-

स्तकपर ही खड़ी है और यह समझकर तपश्चरण यम नियमादिके द्वारा मोहरूपी शत्रुको नष्टकर उन्हें शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

७४९। यदि युवावस्थामें रत्नत्रयकी प्राप्ति हो तो उन्हें क्या करना चाहिये--उन्हें भी स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये घोर तपश्चरणके द्वारा मोहरूपी शत्रुको नष्टकर अपने आत्माका हित साधन करना चाहिये।

७५०। यदि वृद्ध अवस्थामें रत्नत्रयकी प्राप्ति हो तो उन्हें किस प्रकार अपना हितसाधन करना चाहिये—जैसे जलते हुये घरमेंसे वस्त्र अलंकारादि अपना सामान बहुत शीघ्र २ निकाला जाता है। इसीप्रकार जिन्हें वृद्धावस्थामें रत्नत्रय प्राप्त हुआ है उन्हें अपने शरीरमें फंसे हुये प्राणोंको शीघ्र ही महाव्रतोंकेद्वारा किसी निरापद और सुखप्रदस्थानमें पहुंचाना चाहिये अर्थात् उन्हें अति शीघ्र स्वर्गमोक्षादिक प्राप्त करलेना चाहिये।

७५१। इस रत्नत्रयका ऐसा माहात्म्य समझकर सज्जनोंको क्या करना उचित है—उन्हें तपश्चरण व्रत और कठिन २ यमद्वारा संपूर्ण कषाय और प्रमादोंको छोड़कर शीघ्र ही स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

७५२। धर्मानुप्रेक्षा किसे कहते हैं—उत्तमक्षमादि दश धर्मोंका चिंतवन करना अथवा ये ही दश धर्म ग्राह्य हैं ये ही अ-

निंद्य और सर्वथा सुखकर हैं इत्यादि चिंतवन करना धर्मानुप्रेक्षा है।

७५३। इन बारह अनुप्रेक्षाओंके चिंतवन करनेसे सज्जनोंको क्या फल मिलता है—संसारके भोगोपभोग पदार्थोंसे तथा इंद्रियोंके विषयोंसे रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं तथा संवेग और वैराग्यकी प्राप्ति होती है।

७५४। किन २ सज्जनोंने इन अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन किया है—तीर्थंकर आदि महा पुरुषोंने इनका चिंतवन किया है तथा हृदयमें वैराग्य धारणकरके मुक्तिकेलिये तपश्चरण करनेवाले अनेक महाशयोंने इनका चिंतवन किया है।

७५५। अनुप्रेक्षाओंका इतना बडा माहात्म्य समझकर विद्वानोंको क्या करना चाहिये—तपश्चरण पालन करने और संवरकी प्राप्ति होनेकेलियेवैराग्यको उत्पन्न करनेवाली इन अनुप्रेक्षाओंका रात दिन चिंतवन करते रहना चाहिये तथा इन्हींका निःरंतर ध्यान करना चाहिये।

७५६। परीषह कौन २ हैं—क्षुत् १ (क्षुधा) पिपासा २ शीत ३ उष्ण ४ दंशमशक ५ नाग्न्य ६ अरति ७ स्त्री ८ चर्या ९ निषद्या १० शय्या ११ आक्रोश १२ वध १३ याचना १४ अलाभ १५ रोग १६ तृणस्पर्श १७ मल १८ सत्कारपुरस्कार १९ प्रज्ञा २० अज्ञान २१ और अदर्शन २२ ये बाईस परीषह हैं। कर्मसमूहको नष्ट करनेकेलिये तथा रत्नत्रय और मोक्ष-

मार्गमें दृढ रहनेकेलिये इन परीषहोंका सहन किया जाता है। इसलिये मोक्षार्थी पुरुषोंको अपनी पूर्ण शक्तिके अनुसार इन्हें सहन करना चाहिये।

७५७। क्षुधापरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये—जो लोग बंदीगृहमें (कैदखानेमें) पड़े हुये हैं वे सदा क्षुधासे पीडित रहते हैं उनके साम्हने यह मेरी क्षुधा कितनी हैं इत्यादि चिंतवन कर और संतोषरूप अत्युत्तम अन्न भक्षणकर क्षुधापरीषह सहन करना चाहिये।

७५८। पिपासापरीषह किसप्रकारसे सहन की जाती है—निर्जल स्थानमें रहनेवाले जीवोंको देखकर चारित्ररूपी जलसे संपूर्ण शरीरको शोषण करनेवाली यह पिपासापरीषह सहन करना चाहिये।

७५९। शीतपरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये—दरिद्र और पशुपक्षियोंको देखकर।

७६०। उष्णपरीषह किसप्रकार सहन की जाती है—निराश्रय जीवोंको देखकर।

७६१। दंशमशकपरीषह किसप्रकारसहन करना चाहिये—जो जीव डांस मच्छर मक्खी, जूआदि जीवोंसे सदा पीड़ित रहगये हैं उन्हे देखकर।

७६२। नाग्न्य (नग्न रहना) परीषह किसप्रकार सहन की जाती है-नग्न रहनेसे कामादिके जो विकार होते हैं उनसे सर्वथा

रहित होकर नाग्न्यपरिषह सहन करना चाहिये।

७६३। अरतिपरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये--सदा ज्ञान और ध्यानमें तल्लीन रहकर।

७६४। स्त्रीपरीषह अर्थात् स्त्रियोंके द्वारा किये हुये उपद्रव किस-प्रकार सहन करना चाहिये—धैर्य और ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर।

७६५। चर्यापरीषह किसप्रकार सहन की जाती है—पराधीन रहनेवाले तिर्यंचों और सेवकोंका परिश्रम देखकर।

७६६। निषद्यापरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये-ऐसे पशु-ओंको देखकर कि जो विचारे संकल और रस्सियोंसे बंधे हुये रहते हैं।

७६७। शय्यापरीषह अर्थात् एक पार्श्व (करवट) से सोना आदि परीषह किसप्रकार सहन की जाती है—जो प्राणी संकलोंसे जक-ड़े हुये हैं इधर उधर हिल नहीं सकते उनका दुःख चिंतवन-कर शय्यापरीषह जीतना चाहिये।

७६८। आक्रोश और वधपरिषह किसप्रकार सहन करना चाहिये-उत्तम क्षमा आदि महागुणोंके द्वारा।

७६९। याचना और अलाभ परीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये-संतोष और धैर्य धारणकर तथा लोभ छोड़कर याचना और अलाभपरीषह जीती जाती हैं।

७७०। रोगपरीषह किसप्रकार सहना करना उचित है–जितने रोग क्लेशादि होते हैं वे सब पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मके उद-

यसे होते हैं। कर्मोंका उदय अनिवार्य है इत्यादि चिंतवन-
से रोगपरीषह सहन करना चाहिये।

७७१। तृणस्पर्श और मलपरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये-
शरीरसे ममत्व छोड़कर।

७७२। सत्कारपुरस्कारपरीषह किसप्रकार जीतना चाहिये-अहं-
कार छोड़कर।

७७३। प्रज्ञापरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये-गूढ और
सूक्ष्मपदार्थोंका समझना अत्यंत कठिन है। अल्पज्ञानियों
को प्रायः इनका बोध नहीं होता इत्यादि चिंतवनकर प्रज्ञा-
परीषह सहन करना चाहिये।

७७४। अज्ञानपरीषह किसप्रकार सहन की जाती है-ज्ञान-
को रोकनेवाला ज्ञानावरण कर्म है इसीके उदयसे संसारी
प्राणी अज्ञानी हो रहे हैं। इसके क्षयोपशम होनेसे मुझे स्वयं
ज्ञात प्रगट हो जायगा इत्यादि चिंतवनकर अज्ञानपरीषह
सहन करना चाहिये।

७७५। अदर्शनपरीषह किसप्रकार सहन करना चाहिये-यह
कालदोष है अथवा यह क्षेत्र वा मेरे परिणाम ही ऐसे हैं जो
निर्मल सम्यक्त्व नहीं होने देते। इत्यादि चिंतवन कर अ-
दर्शनपरीषह सहन करना चाहिये।

७७६। ये संपूर्ण परीषह कैसे ध्यानसे वा अन्य किन २ कारणोंसे
सहन करना चाहिये- शुभध्यानसे शुक्लादि शुभलेश्याओं-

से और कर्मोंका विपाक चिंतवन करनेसे संपूर्ण परीषह जीती जाती हैं।

७७७। परीषह सहन करनेवालोंके कौन २ गुण प्रगट होते हैं-इंद्रियां और मन बशमें हो जाता है, सदा संवर और निर्जरा होती रहती है तथा क्रमसे संपूर्ण कर्मक्षय हो जाते हैं।

७७८। जो लोग परीषहोंसे डरते हैं उन्हें सहन नहीं करते उनके क्या २ दोष प्रगट होते हैं—सज्जन और उत्तमपुरुषोंमें उनकी हंसी होती है, अपमान होता है, अपकीर्त्ति फैलती है और अनेकप्रकारके नाना दुःख सहन करने पड़ते हैं।

७७९। यह उपर्युक्त कथन समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—चारित्ररूपीरणांगणमें आकर व्रत और तपश्चरण-रूप तीव्र आयुधोंको लेकर बड़े यत्नके साथ कर्मरूपी शत्रु-ओंको नष्ट करना चाहिये।

७८०। पांचप्रकार चारित्र कौन २ हैं—सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहरविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये पांच प्रकार के चारित्र कहे जाते हैं। आत्माको पूर्ण चिदानंदरूप सुख देनेवाले ये ही चारित्र हैं।

७८१। सामायिकचारित्र किसे कहते हैं-जो तृण सुवर्णमें सुख दुःखमें तथा स्तुतिनिंदा आदिमें सर्वदा समताभाव रखना सबको एक दृष्टिसे देखना सामायिकचारित्र कहलाता है।

७८२। छेदोपस्थापनचारित्र किसको कहते हैं-चारित्रको निर्म-

ल पालन करना चाहिये। यदि कदाचित् चारित्रमें कोई दोष लगा हो तो उसे आत्मनिंदा वा प्रायश्चित्तादिकद्वारा शुद्ध करना छेदोपस्थापनचारित्र कहलाता है।

७८३। परिहारविशुद्धिचारित्र किसे कहते हैं— जो मुनि दीक्षा लेकर कुछ कालतक केवलीभगवानके सन्निकट रहा हो जिसकी आयु ३० वर्षसे अधिक हो, जो अंग और पूर्वका जाननेवाला हो, दृढशरीर हो, जो यत्नपूर्वक प्रतिदिन कमसेकम दो कोश गमन करता हो उसका वह चारित्र परिहारविशुद्धि चारित्र कहलाता है।

७८४। सूक्ष्मसांपरायचारित्र किसे कहते हैं—जो दशवें गुणस्थानमें रहनेवाले सूक्ष्म लोभको नष्ट करनेवाला है और जो केवल आत्माके ध्यान करनेमात्रसे उत्पन्न हुआ है उसे सूक्ष्म सांपरायचारित्र कहते हैं।

७८५। यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं— जिसके द्वारा यथार्थ शुद्ध आत्माका अनुभव किया जाय वह उत्तम और पूज्य यथाख्यातचारित्र कहलाता है।

७८६। इस पंचप्रकार चारित्रके पालन करनेसे क्या फल होता है— घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं केवलज्ञान प्रगट हो जाता है उत्तम संवर और निर्जरा होती है तथा अंतमें मोक्षकी प्राप्ति होती है।

७८७। इस उपर्युक्त गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय और

चारित्रके सिवाय संवरके कारण और कौन कौन हैं—ध्यान अध्ययन उत्तमसमाधि आदि और भी संवरके अनेक कारण हैं।

१८८। सज्जनोंको संवरसे क्या लाभ होता है—साक्षात् मोक्ष देनेवाले तपश्चरणकी प्राप्ति होती है। चारित्र सफल होजाता है कर्मोंकी निर्जरा होती है और केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है।

१८९। संवरके बिना क्या हानि होती है—निरंतर कर्मोंका आस्रव होता रहता है जिससे केवल संसारकी वृद्धि होती है। अतएव संवरके बिना संयम धारण करना व्यर्थ है तथा तपश्चरण करना भी व्यर्थ है।

१९०। संवरका ऐसा माहात्म्य समझकर क्या करना चाहिये—गुप्ति समिति और चारित्र आदिक द्वारा संपूर्ण कर्मोंको रोककर प्रयत्नपूर्वक सदा संवर करते रहना चाहिये।

१९१। निर्जरा तत्त्व किसे कहते हैं—निर्जराका स्वरूप जो पहले कहा गया है वही है अर्थात् एकदेश कर्मक्षय होनेको निर्जरा कहते हैं और वह सविपाक अविपाकके भेदसे दो प्रकार है अथवा भाव द्रव्यके भेदसे दो प्रकार है संसारके संपूर्ण सुख देनेवाली और मुक्तिकी जननी यही निर्जरा है।

१९२। मोक्षतत्त्व किसे कहते हैं —जब यह आत्मा संपूर्ण कर्मोंसे वा शरीरसे सर्वथा भिन्न होजाता है तब वह मुक्त कहलाता है और इसको ही मोक्षतत्त्व कहते हैं। यह मोक्ष दो प्रकारका हैं एक भावमोक्ष और दूसरा द्रव्य मोक्ष।

३९३ । भावमोक्ष किसे कहते हैं—संपूर्ण कर्मोंको क्षय करनेवाले आत्माके अतिशय शुद्ध परिणामोंको भाव मोक्ष कहते हैं

३९४ । द्रव्यमोक्ष किसे कहते हैं—संपूर्ण कर्म और शरीरसे सर्वथा पृथक् अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होना द्रव्य मोक्ष है । यह मोक्ष तत्त्व आत्माका खास स्वभाव है ।

३९५ । इस मोक्षतत्त्वका विशेष स्वरूप क्या है— ऊर्ध्वगमन करना आदि जो सविस्तर वर्णन पहले कहा जा चुका है वही इसका विशेष स्वरूप समझना चाहिये ।

३९६ । इन सप्ततत्त्वोंके जानलेनेसे क्या फल होता है—तीनों लोकोंको प्रकाश करनेवाले दीपकके समान सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है । तथा अनुक्रमसे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति होती है ।

३९७ । नव पदार्थ कौन २ हैं—पुण्य और पाप मिलानेसे ये ही सप्त तत्त्व नव पदार्थ कहलाते हैं ।

३९८ । पुण्य पदार्थ किसे कहते हैं—शुभ तिर्यंच आयु, और शुभ मनुष्यायु, शुभ देवायु, ऊंच गोत्र, सातावेदनीय, नामकर्मकी सैंतीस[1] शुभ प्रकृति ये सब मिलकर वियालीस शुभ-

---

१ मनुष्यगति, देवगति, पंचेंद्रियजाति, पांच शरीर, तीन आंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, प्रशस्तवर्ण, प्रशस्तरस, प्रशस्तगंध, प्रशस्तस्पर्श, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, ये ३७ नामकर्मकी शुभ प्रकृतियाँ हैं ।

प्रकृति पुण्यप्रकृति कहलाती हैं।

७९९। इन पुण्यप्रकृतियोंसे क्या फल होता है—पर्वतकी तराईमें उत्पन्न होनेवाले ऊंचे और वायुके समान वेगवाले घोड़े मिलते हैं, अतिशय सुंदरी ललनायें प्राप्त होती हैं, कामदेवके समान सुंदर शरीर, सर्वथा हितकरनेवाले बंधुवर्ग तथा दासी दास और सुख तथा धर्म बढानेवाले कुटुंबकी प्राप्ति होती है। दीर्घ आयु, सुंदर शरीर, आरोग्यता, मान्यता, यश, विवेक, चातुर्य, और क्षमा आदि धर्म बढानेवाले अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है। समस्त भोगोपभोगोंकी सामग्री और संपूर्ण सुखोंकी प्राप्ति होती है। संसारमें पुण्यवान् पुरुषोंका ही एकछत्र राज्य होता है उन्हें ही संपूर्ण इष्ट संपदाओंकी प्राप्ति होती है। उन्हींका मुख सुंदरवाणीसे सदा अलंकृत रहता है। कहां तक कहा जाय संसारमें कल्याण बढानेवाली वस्तुओंकी जो उन्हें प्राप्ति होती है वह सब पुण्यरूपी कल्पवृक्षका ही फल समझना चाहिये।

८००। उत्तम संपदाओंकी प्राप्ति किस कारणसे होती है--पुण्यके उदयसे पुण्यवानोंके घर संपूर्ण संपदायें दासी दासके समान स्वयं आ उपस्थित होती हैं।

८०१। इस पुण्यके फलसे और किस २ वस्तुकी प्राप्ति होती है-इस पुण्यका फल बहुत है कहांतक कहा जाय परंतु थोड़ेमें इतना समझलेना चाहिये कि तीनों लोकोंमें जो वस्तु दूर हैं,

कष्टसाध्य है, दुर्लभ है, अति उत्तम है, इष्ट है और कल्याण-कारी है वे सब पुण्योदयसे पुण्यवानोंके घर स्वयं आकर प्राप्त होती हैं। इसमें कोई किसीप्रकारका संदेह नहीं है।

८०२। इस पुण्यकेउदयसे पुण्यवानोंको परलोकमें क्या फल मिलताहै-पुण्यवान् पुरुष स्वर्गमें जाकर इंद्र अहमिंद्र लौकांतिक आदि उत्तम पदाधिकारी देव होते हैं। उत्तम २ संपदायें सुख और श्रीजिनेंद्रदेवकी साक्षात् सेवा भक्ति करना आदि विभूतियें प्राप्त होती हैं। नौ निधि चौदह रत्न आदि उत्तम २ पदार्थ सब पुण्योदयसे ही होते हैं।

८०३। पुण्य संचय करनेके कौन २ कारण हैं-मन बचन कायकी शुद्धता रखना, अहिंसादिक व्रत, गुणव्रतादि शील और सदाचारका पालन करना, पात्रदान देना, श्रीजिनेंद्रदेव की पूजा करना, तथा शुभध्यान शुभलेश्या आदि अनेक सदाचार और शुभ परिणामोंसे पुण्य प्रकृतियोंका संचय होता है।

८०४। उत्कृष्ट पुण्यका संचय किनके होता है—तीर्थंकरादिकी समवरणादि विभूतिको देनेवाला उत्कृष्ट पुण्य केवल सम्य-ग्दृष्टी पुरुषोंके सम्यग्दर्शनकी विशुद्धतासे ही होता है।

८०५। पाप पदार्थ किसे कहते हैं--ज्ञानावरणादि वियासी

---

१ ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, मोहनीय २६, अंतराय ५, असाता वेदनीय १, नरक आयु १, नीचगोत्र १, नाम कर्म ३४, कुल ८२।

अशुभ प्रकृतियोंको पाप पदार्थ कहते हैं ये प्रकृतियां इस जीवको केवल दुःख देनेवाली हैं।

८०६। पापी जीवोंको इस संसारमें ही पापका क्या २ फल मिलता है- पापी लोगोंको शीलरहित कुरूपा और कुत्सित स्त्रियें प्राप्त होती हैं, सप्तव्यसन सेवन करनेवाले कुपुत्र होते हैं, कुरूपा और बांझ पुत्री होती हैं, शत्रुके समान सदा दुःख देनेवाले बांधव होते हैं, धर्म और सुखको नाश करदेनेवाला कुटुंब मिलता है। उनका कुत्सित शरीर सदा रोगी रहता है। उन्हें नीचकुलमें जन्म लेना पड़ता है। उनका अपयश और निंदा सर्वत्र फैली रहती है। वे लोग दरिद्र, निर्विवेक, मूर्ख, व्यसनी, पापी, बुद्धिहीन, अंगहीन लंगड़े और नीच भृत्य हुआ करते हैं। उन्हें सदा पुत्र पौत्रादिके इष्टवियोग तथा रोग शत्रु आदिकेअनिष्ट संयोग हुआ करते हैं। कहांतक कहा जाय कुत्सित जन्म और अंग उपांग रहित शरीरका मिलना आदि अनेक दुःख रूप फल पापरूपी विषवृक्षके ही समझना चाहिये।

८०७। पापसे और क्या २ हानि होती हैं— संसारमें जीवोंको जो अनेक दुःख देखने पड़ते हैं रोग क्लेश दारिद्रता आदि अनेक अनिष्ट संयोग हुआ करते हैं वे सब पापका फल ही समझना चाहिये।

८०८। परलोकमें पापियोंकी क्या गति होती है--नरक गति

नीच तिर्यंचगति अथवा अस्पर्श्य चांडाल आदि मनुष्यगति।

८०९। पापके कारण कौन २ हैं—मनवचनकायकी कुटिलता तथा अशुद्धता, निंद्य कर्म करना, धर्मसे दूर रहना, शील व्रतादि पालन नहीं करना, अनेक दुराचार तथा सप्तव्यसन सेवन करना, अशुभ ध्यान और अशुभ लेश्याओंका होना, सदा क्रूर परिणाम रखना, मिथ्यामार्ग तथा कुमार्ग का (मिथ्यामतोंका) सेवन करना, पवित्र जैनधर्मकी निंदा करना, इंद्रियोंके विषयोंमें ही उलझे रहना, नीच मनुष्योंकी संगति करना, कार्य अकार्यका विचार नहीं करना आदि अनेक निंद्य कर्म हैं वे सब पापास्रवके कारण और अनेक दुःख देनेवाले हैं। बुद्धिमानोंको इन सबसे सदा अलग रहना चाहिये।

८१०। पापका ऐसा स्वरूप समझकर बुद्धिमानोंको क्या करना चाहिये—धर्मरूप तलवार हाथमें लेकर अतिशय निंद्य इन पापरूप शत्रुओंको नाश करना चाहिये। तथा मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये।

८११। इन तत्त्वोंमेंसे किस २ तत्त्वका कौन २ कर्ता है—मिथ्यामार्गमें चलनेवाले मिथ्यादृष्टि पुरुष मुख्यतया पापबंध और पापास्रवके सदा कर्त्ता हैं अर्थात् वे सदा पापास्रव और पापबंध ही करते रहते हैं।

८१२। मिथ्यादृष्टि पुरुष क्या कभी पुण्यास्रव वा पुण्यबंध भी

भी करते हैं—हां करते हैं। जब उनका कर्मोदय मंद होता है तब वे सुखी होनेकेलिये गौणरीतिसे कभी २ पुण्यास्रव वा पुण्यबंध भी करलेते हैं।

८१३। तब फिर पुण्यास्रव और पुण्यबंधका मुख्य कर्त्ता (अधिकारी) कौन है—सम्यग्दृष्टी पुरुष ही इनका मुख्य कर्त्ता है और वह भी केवल मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये इन्हें करता है सांसारिक सुखोंके लिये नहीं।

८१४। संवर निर्जरा और मोक्ष इन तीन तत्त्वोंका कर्त्ता (अधि-अधिकारी) कौन हैं—शुद्ध रत्नत्रय सहित भावलिंगी वीतराग मुनि ही इन तीनों तत्त्वोंके अधिकारी हो सकते हैं।

८१५। इन आस्रव और बंधसे संसारी प्राणियोंको क्या फल मिलता है—जन्ममरणरूप संसारकी वृद्धि और रोग क्लेशादि अनेक दुःख आस्रव तथा बंधके ही फल समझना चाहिये।

८१६। तपस्वियोंको संवर और निर्जरासे क्या फल मिलता है—तपस्वियोंको जो उसी भवमें वा अन्य किसी भवमें मोक्षरूप सुखसागरकी प्राप्ति होती है वह संवर तथा निर्जराका ही फल है।

८१७। मोक्षका उत्तम फल क्या है—मोक्ष प्राप्त होनेसे इस आत्माको केवल आत्मजन्य ऐसे अनंत सुखकी प्राप्ति होती है जो नित्य अविनश्वर और दुःखोंसे सर्वथा रहित है। इसके सिवाय सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्य सूक्ष्मत्व अगुरु-

लघु अव्याबाध और अवगाहन इन आठ सद्गुणोंकी प्राप्ति होती है ।

८१८। इन सप्त तत्त्वोंका स्वरूप समझकर क्या करना चाहिये— रत्नत्रय और तपश्चरणरूपी बाणोंके द्वारा मोहादि कर्मरूप शत्रुओंको नाशकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये । सप्त तत्त्वोंके जानलेनेका यही एक उत्तम फल है ।

जो भव्यपुरुष इन उपर्युक्त सप्त तत्त्वोंका स्वरूप सुनता है चिंतवन करता हैं पढ़ता है पढ़ाता है श्रद्धा और रुचि करता है, वह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को पाकर तीनों लोकोंके संपूर्ण उत्तम सुखोंका अनुभव करता है। केवल इतना ही नहीं किंतु वह उसी रत्नत्रयके फलसे अनुपमेय घोर तपश्चरण धारणकर कर्म और इंद्रिय रूपी प्रबल शत्रुओंको क्षणभरमें नष्ट कर अति शीघ्र मोक्ष रूपी सुखसागरमें निमग्न हो जाता है। अर्थात् उसे शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

सप्ततत्त्वोंके परिज्ञानका ऐसा उत्तम फल समझकर भो भव्यजन हो मोक्षरूप परमसुखकी प्राप्तिकेलिये वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत इन तत्त्वोंका श्रद्धान करो, प्रतीति करो, विश्वास करो तथा शुद्धमनवचनकायसे रातादिन इनका पठन पाठन करो और भरसक इनका श्रवण करो।

इस अध्यायके अंतमें मैं (सकलकीर्त्ति) प्रथम ही

श्रीवृषभादि तीर्थंकरोंको नमस्कार करता हूं क्योंकि दिव्य-ध्वनिद्वारा इन तत्त्वोंका प्रथम निरूपण इन्होंने ही किया है। अनंतर अपने अपूर्व उपदेश द्वारा इन तत्त्वोंके प्रगट करनेका मार्ग आचार्योंने दिखलाया है इसलिये उन्हें नमस्कार करता हूं। तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्तिकेलिये इन्हीं तत्त्वोंका पाठ करनेवाले तथा प्रतिदिन शिष्योंको पढानेवाले उपध्याय परमेष्ठीको भी मैं नमस्कार करता हूं। तथा साधु परमेष्ठी सदा इन्हीं जीवादि तत्त्वोंमें तल्लीन रहते हैं अर्थात् इन्हींका ध्यान चिंतवनादि करते रहते हैं इसलिये इन्हें भी बारंबार नमस्कार करता हूं। ये उपर्युक्त परमेष्ठीगण मुझे अपने २ सब गुण प्रदान करें।

इति श्रीसकलकीर्त्याचार्यविरचिते धर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रंथे
तत्त्वपृच्छा वर्णनो नाम चतुर्थः परिच्छेदः ॥ ४ ॥

अथ पंचमः परिच्छेदः।

अब इस पंचम परिच्छेदमें प्रश्नोत्तरके जाननेवाले संपूर्ण तीर्थंकर, गणधरदेव, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सिद्ध और तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जाननेवाले सद्गुरुको नमस्कार कर शिष्य कर्मोंका विपाक दिखानेवाले प्रश्न करता है।

८२९। हे भगवन् ज्ञानावरणकर्म क्या करता है—यह ज्ञानावरण कर्म कपड़ेके पड़दे की समान जीवोंका ज्ञान आच्छादन करता है। इसके रहते हुये यह जीव किसी पदार्थको न-

हीं जान सकता है।

८२० । ज्ञानावरणकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—ज्ञानमें किसीप्रकारका दोष लगानेसे, ज्ञानियोंके साथ ईर्ष्या तथा मात्सर्य करनेसे, ज्ञानको छिपानेसे, किसीके पठन पाठनमें अंतराय डालनेसे और ज्ञानका घात करने, अर्थात् ज्ञान-को अज्ञान बतादेनेसे ज्ञानावरण कर्मका आस्रव होता है।

८२१ । किस कर्मके उदयसे यह जीव पागल सरीखा हो गया है—यह जीव मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे पागल और जड़ सरीखा होगया है। धर्म अधर्मादि कार्योंको यह उन्मत्तके समान करता है अच्छे बुरेका इसे कुछ ज्ञान नहीं है। इस मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे ही यह जीव लोगोंको ठगनेके लिये अनेकप्रकारकी कुटिलतायें करता रहता है।

८२२ । किस कर्मके उदयसे यह जीव विकल हो जाता है—मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे। क्योंकि मतिज्ञानके न होने-से ही यह जीव अपना कल्याण समझकर धर्म, अधर्म, शुभ अशुभ, गुणी निर्गुणी, पात्र अपात्र, पूज्य अपूज्य आदि सब-को सेवन करता है दान मानादि द्वारा सबकी पूजा करता है यह उसकी मूर्खता और निर्विवेकता है। इसीको विकलता कहते हैं। अतएव मतिज्ञानावरणकर्मके उदयसे ऐसे जीव द्वींद्रिय आदि विकल जीवोंके समान ज्ञानशून्य विकल कह-लाते हैं।

८२३। ये जीव किस कर्मके उदयसे दुर्बुद्धि हो जाते हैं—मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे। क्योंकि ये अज्ञानी जीव मतिज्ञानावरण कर्मके उदयसे ही मिथ्या और खोटे मार्गका (मतका) निरूपण करते हैं तथा सेवन करते हैं। अपने थोडेसे लाभकेलिये अन्यलोगोंको इन खोटे मार्गोंके सेवन करनेकेलिये सदा कुबुद्धि दिया करते हैं वे ही मूर्ख निंद्य दुर्बुद्धि कहलाते हैं।

८२४। सुबुद्धिमान् लोग कौन कहलाते हैं—जो लोग अपनी निर्मल बुद्धि और बड़े प्रयत्नसे जैनधर्म, जैनसिद्धांत, तीर्थंकर, निर्ग्रंथ गुरु आदिकी परीक्षा कर इनको सेवन करते हैं तथा धर्मकी प्राप्तिकेलिये सदा ध्यान अध्ययनादि सत्कार्योंमें लगे रहते हैं और जो अन्यलोगोंको भी जैनधर्मादिक सेवन करनेकेलिये तथा सत्कार्योंमें लगे रहनेकेलिये सदा सुबुद्धि दिया करते हैं। वे सुमार्गपर चलनेवाले सज्जन पुरुष सुबुद्धिमान् कहलाते हैं।

८२५। विवेकी पुरुष किस कर्मके निमित्तसे होते हैं—ये जीव ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे विवेकी कहलाते हैं। क्योंकि जो जीव मोक्षमार्ग प्राप्त होनेकेलिये सदा देव शास्त्रगुरुओंको चिंतवन करते रहते हैं तथा बारह अनुप्रेक्षा उत्तमक्षमादि दश धर्म, जीवादि तत्त्व और शुभाशुभादि कर्मोंका सदा विचार करते रहते हैं वे विचारशाली पुरुष विवेकी कहलाते हैं और

यह ऐसा विचार ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ही हो सकता है। इसलिये विवेकी पुरुष भी इसी कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं।

८२६। किस कर्मके उदयसे मनुष्य निर्विवेकी होते हैं—ज्ञानाचरणकर्मके उदयसे। क्योंकि जो पुरुष इसलोकमें अपना कल्याण चाहनेकेलिये विचार रहित होकर देव शास्त्र गुरुकी भक्ति करते हैं पूजा करते हैं दान देते हैं वा धर्मसेवन करते है वे दुर्बुद्धिजन निर्विवेकी कहलाते हैं। उनकी यह ऐसी बुद्धि ज्ञानावरणकर्मके उदयसे होती है। इसलिये ज्ञानावरण कर्मके उदयसे निर्विवेकी कहे जाते हैं।

८२७। विद्वान् किस कर्मके निमित्तसे होते हैं—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे। क्योंकि जो पुरुष कालशुद्धि आदि देखकर अर्थात् शुद्ध समयमें निरंतर ज्ञानामृतका पान किया करते हैं तथा अन्य भव्यजनोंको वही ज्ञानामृत पान कराया करते हैं और जो अपना ज्ञान बढानेकेलिये सम्यग्ज्ञानकी तथा सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले ज्ञानी पुरुषोंकी सदा स्तुति भक्ति आदि किया करते हैं वे विश्ववेत्ता पुरुष विद्वान कहलाते हैं उनकी ये ऐसी क्रियायें ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमविना नहीं हो सकती इसलिये ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे ही विद्वान् बनते हैं।

८२८। मूर्ख किस कर्मके निमित्तसे होते हैं—ज्ञानावरणकर्मके

उदयसे। क्योंकि मूर्ख उन्हें कहते हैं जो थोडासा पढ लिखकर भी अपने शास्त्रादिके अहंकारमें मस्त रहते हैं श्रुतज्ञान वा शास्त्रादिक योग्य विद्यार्थियोंको कभी नहीं पढाते और स्वयं ज्ञानको नित्य मानकर बिना कालादिशुद्धिके ही पठन पाठना करते हैं तथा जो सदा हिताहितविचाररहित हैं। यह ऐसा अहंकार तथा मूर्खता ज्ञानावरणकर्मके उदयसे ही होती है।

८२९। मूक अर्थात् गूंगे किस कर्मके निमित्तसे होते हैं—जो पुरुष भोजन करते समय मलमूत्र वा मैथुनादि करते समय इच्छानुसार भाषण किया करते हैं। श्रुतज्ञानी वा धर्मात्मओं को गाली दिया करते हैं उनकी निंदा किया करते हैं दुर्वचन कहा करते हैं तथा जो सदा पीडाजनक भाषण ही किया करते हैं ऐसे पुरुष श्रुतज्ञानावरणकर्मके उदयसे वचनरहित गूंगे हो जाते हैं। अभिप्राय यह है कि भोजनादि करते समय मौन धारण करना चाहिये तथा धर्मात्माओंकी सदा प्रशंसा करनी चाहिये। परंतु जो पुरुष ऐसा न कर बचनोंका दुरुपयोग करते हैं वे अवश्य मूक होते हैं। मूक होना ज्ञानावरण कर्मका ही फल है।

८३०। वधिर अर्थात् बहरे किस कर्मके उदयसे होते हैं— ज्ञानावरणकर्मके उदयसे। क्योंकि जो पुरुष जिनधर्मकी तथ संघकी निंदा सुनते कुशास्त्र तथा विकथादि पढते हैं इर्षा के कारण सदोष श्रुतज्ञानका ही प्रतिपादन करते हैं। वे

ज्ञानावरण कर्मके उदयसे श्रुतज्ञान रहित बहरे हो जाते हैं।

८३१। दर्शनावरणकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—ज्ञान वा दर्शनमें किसीप्रकारका दोष लगाना, उन्हें छिपाना तथा देखा विनादेखा आदि सब कुछ इच्छानुसार कहना इत्यादि क्रियायोंसे दर्शनावरण कर्मका बंध होता है।

८३२। अंधे कौन तथा किस कर्मके उदयसे होते हैं—जो पुरुष स्त्रियोंके मुखपैर योनि आदि अंग उपांगोको देखते रहते हैं। कुतीर्थ कुगुरु और कुशास्त्रोंके दर्शन किया करते हैं जो इर्ष्या-के कारण इर्यापथ गमनके दृष्ट (देखे वा जाने हुये) दोषोंको भी नहीं कहते और न अदृष्ट (विना देखे वा विना जाने) दोषोंको कहते हैं वे मूर्ख दर्शनावरणकर्मके उदयसे अंधे हो जाते हैं।

८३३। सातावेदनीयकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—जीवोंपर करुणा रखनसे, जीवोंकी रक्षा करनेसे, सराग संयम तथा संयमासंयमको पालन करनेसे, लोभ छोड़ने और पा-त्रोंको दान देनेसे, श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा भक्ति आदि करने से, शुभाचरण पालन करने और इंद्रियोंका निग्रह करनेसे तथा इसीप्रकारके और श्रेष्ठ आचरण और श्रेष्ठ क्रियाओंसे सातावेदनीय कर्मका बंध होता है।

८३४। यह सातावेदनीय कर्म क्या करता है—यह सातावेद-नीय कर्म संसारमें जीवोंकेलिये अनेकप्रकारके सुख देता

है और वह द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा चारप्रकारसे देता है अर्थात् सुंदर शरीर भोजन वस्त्र अलंकार आदि पदार्थोंके द्वारा जीवोंको सुख पहुंचाता है। विमान भवन आदि क्षेत्र-द्वारा, बसंत आदि सुखप्रद समय द्वारा और शुभ तथा उप-शमरूप परिणामों द्वारा यह सातावेदनीय कर्म जीवोंको सुख दिया करता है।

८३५। ये संसारी जीव किन २ कारणोंसे तथा किस कर्मके उदयसे सुखी होते हैं—जो जीव सांसारिक सुखोंसे ममत्व छोड़कर कायक्लेश तपश्चरण योग (समाधि) व्रत परीषहसहन आदिके द्वारा शरीरको कृष करते रहते हैं तथा जो सज्जनोंको सदा सुख देते रहते हैं वे सातावेदनीय कर्मके उदयसे सर्वत्र सुखी रहते हैं।

८३६। असातावेदनीय कर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—दुःख, शोक, संताप, आक्रंदन (रोना) बध, बंधन, अंगपीड़ा आदि स्वतः करनेसे, अन्य लोगोंको देनेसे असातावेदनीय कर्मका बंध होता है। इनके सिवाय अव्रत, परिदेवन (करुणाजनक अतिशय रोना) मिथ्यात्व दुराचार आदिका प्रचार करने करानेसे भी असातावेदनीय कर्मका आस्रव होता है।

८३७। यह असातावेदनीय कर्म क्या करता है—यह कर्म जीवोंकेलिये इस लोक और परलोकमें द्रव्यक्षेत्र काल भा-

वके द्वारा चारप्रकारसे दुःख दिया करता है। जैसे कुत्सित शरीर, विष आदि द्रव्योंके द्वारा, नरक, बंदीगृह आदि क्षेत्र-के द्वारा, दुःसह शीत उष्ण आदि कालके द्वारा और राग द्वेष आदि परिणामोंके द्वारा प्रत्येक संसारी प्राणीको दुःख दिया करता है।

८३८। संसारी प्राणी किन २ कारणोंसे तथा किस २ कर्मके उदयसे दुःख पाते हैं—जो जीव अपने थोड़ेसे सुखकेलिये वध बंधनादि द्वारा अन्य जीवोंको दुःख दिया करते हैं, रातदिन पंचेंद्रियोंके विषय सेवनमें तल्लीन रहते हैं, सदा अभक्ष्य भ-क्षण करते रहते हैं और अनेक मिथ्यामार्गोंका निरूपण करते रहते हैं, वे जीव असातावेदनीयकर्मके उदयसे सदा दुःखी रहते हैं।

८३९। रोगी किन २ कारणोंसे तथा किस कर्मके उदयसे होते हैं—जो लंपटी पुरुष रातदिन अभक्ष्य और सचित्ता[1]दि पदार्थोंका भक्षण किया करते हैं जो तपश्चरण रहित हैं, व्रत शील रहित है, मिथ्यामार्गमें लीन हैं धर्मसे बहुत दूर हैं और विषयोंमें अतिशय आसक्त हैं वे जीव असातावेदनीय कर्मके उदयसे सदा रोगी रहते हैं।

८४०। किन २ कारणोंसे तथा किसके निमित्तसे ये जीव नीरोग

---

१ जिन पदार्थोंमें आत्माके परिणाम विद्यमान हों उन्हें सचित्त कहते हैं। जैसे कच्चे फल कच्चा शाक तरकारी आदि।

रहते हैं—जो जीव रात दिन तपश्चरण करते हैं, जिन धर्म-का पालन करते हैं, श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करते हैं, पात्रों-को दान देते हैं, व्रत धारण करते हैं, संसारके संपूर्ण प्राणियों-की रक्षा करते हैं, पंचेंद्रियोंका निरोध करते हैं मनको जीतते हैं सदा संतोष धारण करते हैं तथा जो और भी अनेक शुभा-चरण पालन करते हैं वे जीव धर्मके प्रभावसे सदा नीरोग रहते हैं।

८४१। दर्शनमोहनीयकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—
केवली, श्रुत, संघ[1], धर्म, धर्मात्मा, और सम्यग्दृष्टी आदि-महापुरुषोंकी निंदा करनेसे, मिथ्यामार्गकी भक्ति और पुष्टि करनेसे, कुदेवोंकी भक्ति करनेसे, कुगुरुओंकी स्तुति करनेसे, वेदादि कुशास्त्रोंको माननेसे, कुमार्गका सेवन करनेसे, जैन तत्त्वोंमें तथा जैनधर्ममें अश्रद्धारूपसे शंकायें करनेसे, नीच मनुष्योंकी संगति करने और नीच कर्मोंके करनेसे मूर्ख लोगोंको सदा दर्शनमोहनीय कर्मका बंध होता रहता है।

८४२। यह दर्शनमोहनीय कर्म जीवोंको कैसा बना देता है—
यह कर्म मद्यपानके समान है। जैसे मद्यपान करनेवाला म-नुष्य उन्मत्त और कार्य अकार्यमें विचारहीन होजाता है। उसीप्रकार दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे यह जीव कार्य अकार्यमें विचारहीन सुधर्म और सुमार्गसे परान्मुख हो

---

१ मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इनके समूहको संघ कहते हैं।

जाता है अनेक विपरीत कुमार्गोंका सेवन करने लगता है और श्रीजिनेंद्रदेव और निर्ग्रंथ सुगुरुका शत्रु बन जाता है।

८४३। हे भगवन् यह संसारी जीव दर्शनमोहनीयके उदयसे पदार्थोंको विपरीत किसप्रकार जानने लगता है — दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे यह जीव नीच देवोंको आप्त तथा सच्चा देव समझने लगता है, परिग्रह सहित कुगुरुओंको ही उत्कृष्ट सुगुरु समझता है, कुपात्रोंको सुपात्र, हिंसादि अशुभकर्मोंको शुभकर्म, अधर्मको सुधर्म, झूठको सत्य, कुतत्त्वोंको सुतत्त्व, निर्गुणियोंको गुणवान् समझता है। दर्शन मोहनीयके उदयसे उन्मत्तके समान यह जीव थोडीसी सदृशता ही देखकर उपर्युक्तप्रकारसे पदार्थोंको विपरीत जानने लगता है।

८४४। इसीप्रकार यह जीव अन्य किन २ पदार्थोंको विपरीत समझता है — मोहनीय कर्मके उदयसे ही यह जीव धर्मको हिंसास्वरूप मानने लगता है अर्थात् हिंसा करना कभी धर्म नहीं होसकता परंतु यह मोही जीव उसीको धर्म मानने लगता है।

८४५। इस विषयके कोई दृष्टांत हो तो कहिये—जैसे उन्मत्त बुद्धिहीन, पित्तज्वरवाले और धतूरा खानेवाले पुरुष पदार्थोंकी परीक्षा तो कर नहीं सकते अपनी इच्छानुसार चाहे जैसा स्वीकार करलेते हैं। उन्मत्त पुरुष बहिनको स्त्री और स्त्रीको बहिन कहदेता है। पित्तज्वरवाला पुरुष मीठेको क-

ड़वा बतलाता है। इसीप्रकार मोहनीयकर्म रूप मद्यके नसे-से यह जीव तत्त्वोंको कुतत्त्व और कुतत्त्वोंको सुतत्त्व समझने लगता है तथा धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म समझ लेता है।

८४६। चारित्रमोहनीयकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे होनेवाले तीव्र खोटे परिणामों से, कषायोंके तीव्र उदयसे, राग, द्वेष, मद उन्मत्तता, लोभ, क्रोध, इंद्रियोंके विषयोंका सेवन करना तथा और भी अनेक क्रूर कर्मोंके द्वारा यह कुतत्त्वलंपटी जीव चारित्रमोहनीय कर्मका बंध किया करता है अर्थात् इन उपर्युक्त कारणोंसे चारित्रमोहनीय कर्मका बंध होता है।

८४७। इस कर्मके उदयसे क्या होता है—इस चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे यह जीव चारित्र धारण नहीं कर सकता कदाचित् किसी जीवके पहलेसे ही चारित्र विद्यमान हो तो वह इस कर्मके उदयसे तुरंत छूट जाता है।

८४८। किन २ दुराचारोंसे पुरुषको स्त्रीपर्याय धारण करनी पड़ती है—अतिशय तीव्र राग रखनेसे, कामसेवनसे तृप्त न होनेसे, छल कपट करनेसे, ब्रह्मचर्यका घात करनेसे, अतिशय मोह करनेसे अतिशय मूर्खतासे तथा और भी निंद्य कर्म करनेसे यह पुरुष स्त्रीवेदके उदय होनेसे स्त्रीपर्यायमें उत्पन्न होता है।

८४९। स्त्रियां कौन २ सत्कर्म करनेसे नरपर्याय धारण करती हैं—

शील पालन करने छल कपटका त्याग करने, काम राग और हास्यादिका त्याग करनेसे, सरल परिणाम रखने तथा और भी शुभाचरण पालन करनेसे स्त्रीपर्यायसे पुरुषपर्याय धारण कर सकती हैं।

८५० । नपुंसक कौन २ कर्मोंसे होता है—अनंगक्रीड़ा (काम सेवनके अंगोंसे भिन्न अंगोंमें क्रीड़ा) करनेसे, तीव्र राग तीव्र द्वेष और उत्कट अभिमान रखनेसे, शील व्रत आदि शुभाचरणोंके त्याग करनेसे, परस्त्री सेवनकी सदा आकांक्षा रखनेसे तथा और भी निंद्यकर्म करनेसे यह जीव नपुंसक नामक चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे नपुंसक होजाता है।

८५१ । हास्यकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—जोरसे हंसने, शरीरकी खोटी चेष्टाओंको करने, दूसरोंकी हंसी उड़ानेवाले दुर्वचन कहने और सराग बचन कहनेसे हास्य कर्मका बंध होता है।

८५२ । हंसनेसे क्या हानि होती है-प्रतिष्ठा और पूज्यता नष्ट हो जाती है। हंसी करनेमें वेश्याके समान रागोत्पादक भंड वचन कहने पड़ते हैं जिससे उन्हें तीव्र पापका बंध होता है।

८५३ । रतिकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है-सराग वस्तुओंके सेवन करने, कायकी खोटी चेष्टा करने और अधिक बोलने आदिसे रतिकर्मका बंध होता है।

८५४ । किन २ कार्योंमें रति करना शुभ है—ध्यान, अध्ययन

करनेमें, नमस्कारादि उत्तम मंत्रोंके जप करनेमें, समाधि धारण करने तपश्चरण करने और व्रत पालन करने आदिमें शुभ रति करना चाहिये।

८५५। किन २ कारणोंसे अरति कर्मका बंध होता है—परस्परकी मैत्री भंग करने, उद्वेग करने तथा अन्य अरति (द्वेष) को उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे अरति कर्मका बंध होता है।

८५६। किन २ कार्योंमें अरति करना शुभ है—सांसारिक और शारीरिक सुखोंमें, भोजन, शयन कामसेवन और घर कुटुंबादिकमें अरति करना अर्थात् इन्हें छोड़कर दीक्षा धारण करनेकी इच्छा रखना शुभ है।

८५७। शोककर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—शोक करनेवाले वचन कहनेसे स्वयं शोक करने तथा अन्य लोगोंको शोक उत्पन्न करादेनेसे तथा और भी शोक उत्पन्न करानेवाली क्रियाओंके करनेसे शोक कर्मका बंध होता है।

८५८। किस विषयमें शोक करना अच्छा है—यदि शुभयोग बदलकर अशुभरूप होगये हों अथवा इंद्रियोंके विषयसेवन करनेसे सम्यक् तपश्चरणमें वा सम्यक् व्रतादिकोंमें कोई अतिचार लगगये हों तो वहां पर उनका शोक करना बुरा नहीं है। क्योंकि वह शोक योगोंको (मनवचनकायकी क्रियाओंको) शुभ रूप करने और तपश्चरण वा व्रतादिकोंको निर्मल पालन करनेके लिये ही है।

८५९। जो लोग इष्टवियोग होनेपर शोक करते हैं उनकी क्या हानि होती है--उनके सुख, धर्म और शुभध्यानादिक सब नष्ट हो जाते हैं और परलोकमें नीच. दुर्गतियोंमें पड़ना पड़ता है।

८६०। शोक किसका करना चाहिये---अपने आत्माका। क्योंकि यह आत्मा यमकी दाढ़ोंके बीचमें पड़ा हुआ है और रातदिन बराबर मरनेके सन्मुख हो रहा है।

८६१। भयकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है--अन्य जीवोंको त्रास देनेवाले अशुभ दुर्वचन कहनेसे और ताड़नादिके द्वारा अपनेको तथा अन्य जीवोंको भय उत्पन्न करानेकी चेष्टा करनेसे भयकर्मका बंध होता है।

८६२। कहां २ भय करना अच्छा है--इस आत्माके साथ पंचेंद्रिय रूप चोर लगे हुये हैं ये आत्माके सम्यग्दर्शनादि गुणरत्नोंको अवश्य चुरावेंगे इसलिये इनसे भय करना और इनसे आत्माको बचाये रखना अच्छा है। इसीप्रकार इस जन्ममरणरूप संसारसे, पापरूप शत्रुओंके संगमसे और संसारसागरमें डूबनेसे भय करना और इनसे आत्माको बचाये रखना अच्छा है।

८६३। जुगुप्साकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—घोर तपश्चरण करनेके कारण जिनके शरीरपर पसेव और धूलि आदि जम रही है ऐसे साधु तपस्वियोंकी निंदा करनेसे तथा

और भी ग्लानि करने और ग्लानि उत्पन्न करनेकी क्रिया-ओंको करनेसे जुगुप्सा कर्मका बंध होता है।

८६४। किन २ विषयोंमें जुगुप्सा करना अच्छा है-सांसारिक कुत्सित सुखोंमें, काम सेवन करनेमें, इंद्रियोंके विषय सेवन करनेमें तथा और भी निंद्यकर्मोंमें सदा जुगुप्सा करना चाहिये।

८६५। और कहां २ जुगुप्सा करना चाहिये—स्वस्त्रीके साथ रमण करनेमें तथा उसके मुखादिक कुत्सित अंग उपांगोंमें जुगुप्सा करना चाहिये।

८६६। इनके सिवाय और कहां जुगुप्सा करना उचित है—स्त्रियोंका मुख लार श्लेष्मा आदिसे भरा हुआ है, उदर कीड़े और विष्ठाका घर है, स्तनद्वय मांस पिंड ही है, शरीर रुधिर मांस आदि सप्त धातुका बना हुआ अतिशय बीभत्स, असार और अपवित्र है, योनि आदि मल मूत्रादिके निर्गम द्वार हैं। अतएव स्त्रियोंका यह ऐसा शरीर अवश्य जुगुप्सा करने योग्य है।

८६७। क्रोध नामक चारित्रमोहनीयकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—अपनेको तथा अन्यपुरुषोंको क्रोध उत्पन्न करनेवाले वाक्य कहनेसे तथा क्रूर और रौद्र चेष्टाओंके करनेसे क्रोधकर्मका बंध होता है।

८६८। कहां क्रोध करना अच्छा है—कर्मरूप शत्रुओंके

नाश करनेके लिये इंद्रियरूप चोरोंके निग्रह करनेकेलिये और दुष्ट कषायोंको जीतनेके लिये क्रोध करना अच्छा है।

८६९। मानकर्मका बंध किन २ कारणों से होता है—अभिमानी पुरुष जो निरंतर अभिमान और अहंकारमें चूर रहते हैं गुरु, धर्म आदिका तिरस्कार किया करते हैं उससे उनके मानकर्मका बंध होता है।

८७०। अभिमान कहां करना चाहिये—पंचेंद्रियोंके मान मर्दन करनेमें कर्मरूप शत्रुओंके जीतनेमें और परीषह रूप योद्धाओंके विजय करनेमें अभिमान करना अच्छा है।

८७१। मायानामकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—मायावी पुरुषोंके कुकर्म करनेसे, छल कपट करनेसे, झूठे प्रयोग करनेसे, कुटिलता करनेसे और अपने आत्माको तथा अन्य लोगोंको ठगनेसे मायाकर्मका बंध होता है।

८७२। माया कहां करना चाहिये—पंचेंद्रिय सुखोंको धोखा देनेकेलिये, कर्मरूप शत्रुओंको घात करनेकेलिये और सांसारिक दुःख नाश करनेकेलिये माया करना बुरा नहीं है। भावार्थ—ऐसी माया करना चाहिये जिससे सांसारिक दुःख और कर्मरूप शत्रु सब नष्ट हो जायं।

८७३। लोभ कर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—लोभी पुरुष सुवर्ण रत्न आदि सुंदर २ वस्तुओंमें लोभ आशा और आकांक्षा रखनेसे लोभकर्मका बंध होता है।

८७४। कहां लोभ करना अच्छा है—ध्यान, अध्ययन, यम, योग, तपश्चरण, धर्म, रत्नत्रय, जिनेंद्रसेवा और मोक्ष प्राप्ति केलिये लोभ करना अच्छा है।

८७५। ऐसे कौन पुरुष हैं जो महालोभी होकर भी श्रेष्ठ गिने जाते हैं-जो पुरुष वीतराग सर्वज्ञकी समवसरणादि विभूतिको सदा चाहते रहते हैं तथा लोकशिखरपर विराजमान होकर तीनों लोकोंकी राज्यसंपदा (मोक्षसंपदा) चाहते रहते हैं वे महालोभी पुरुष उत्तम गिने जाते हैं।

८७६। प्रथमकषायका नाम अनंतानुबंधी क्यों पड़ा है-क्योंकि यह कषाय अनंत दुःख देनेवाला है, अनंत भव और अनंत जन्ममरण करानेवाला है और अनंत कर्मोंका कारण है इस लिये इसे अनंतानुबंधी कहते हैं।

८७७। यह अनंतानुबंधी कषाय क्या करता है—यह कषाय आत्माके सम्यग्दर्शन गुणका घात करता है और मनुष्योंके अनंत भव तथा अनंत दुःख सदा बढाता है।

८७८। अप्रत्याख्यान कषाय क्या करता है—अप्रत्याख्यान कषाय आत्माके एकदेश त्याग रूप परिणामोंका घात करता है अर्थात् अणुव्रत नहीं होने देता।

८७९। प्रत्याख्यानकषाय क्या करता है-महाव्रतका घात करता है अर्थात् आत्माके त्यागरूप परिणाम नहीं होने देता।

८८०। संज्वलनकषाय क्या करता है— यह कषाय केवल

ज्ञानरूप विभूतिको उत्पन्न करनेवाले मुनियोंके यथाख्याते चारित्रको पूर्णतया घात करता है अर्थात् संज्वलनकषायके होनेसे यथाख्यातचारित्र नहीं हो सकता।

८८१। आयुकर्म क्या है और वह कितनेप्रकारका है— जैसे कैदीके पैरमें पड़ा हुआ खोड़ा उसे वहीं रोक रखता है उसी प्रकार जो नरनारकादि पर्यायोंमें रोकै उसे आयुकर्म कहते हैं। वह चारप्रकार है देवायु मनुष्यायु नरकायु तिर्यक्आयु।

८८२। सज्जनपुरुषोंके देवायुकर्मका बंध किन २ पुण्यकर्मोंसे हुआ करता है—जो पुरुष सम्यग्दृष्टी हैं, व्रती हैं, मुनियोंका संयम धारण करनेवाले हैं, अथवा श्रावकोंके व्रत धारण करनेवाले हैं जो पुरुष धर्मध्यानमें सदा तत्पर हैं पंचेंद्रियोंके जीतने वाले हैं, सम्यग्ज्ञानी हैं, सुचतुर हैं, तपश्चरण पालन करनेमें सदा तत्पर हैं, शीलवान हैं, सदाचारी हैं, जिनभक्त हैं, वा गुरु भक्त हैं, जो पात्रदान तथा जिनपूजा आदिमें सदा लीन रहते हैं और धर्मपरायण हैं। इनके सिवाय और भी अनेक शुभा-चरणोंसे सदा सुशोभित रहते हैं वे महापुरुष उस सम्यग्दर्शन व्रत, तपश्चरण, पात्रदान, धर्मध्यान, जिनपूजा आदिके प्रभावसे देवायुकर्मका बंध करते हैं अर्थात् वे मरकर अवश्य ही देव होते हैं।

८८३। कल्पवासी अथवा कल्पातीत देवोंकी आयुका बंध किस पुण्य-कर्मसे होता है–उत्तम सम्यग्दृष्टी पुरुषोंको सम्यग्दर्शनादि

उत्तम धर्मके प्रभावसे नियमसे कल्पवासी वा कल्पातीत देवायुका ही बंध होता है।

८८४। जो जीव स्वर्गमें देव उत्पन्न होते हैं उन्हें किस २ प्रकारके उत्तम सुख प्राप्त होते हैं—उन्हें इंद्रियजन्य अनेकप्रकारके सुख प्राप्त होते हैं गीत, नृत्य, वादित्र, इच्छानुसार क्रीड़ा करना, इच्छानुसार विहार करना, दिव्य और अतिशय सुंदर देवियोंके शृंगार हाव भाव विलास कटाक्ष आदिका सुख मिलना तथा पंचेंद्रियोंको आल्हादन करनेवाले दुःखरहित दिव्य अक्षय सुखोंकी निरंतर प्राप्ति होना आदि अनेक सुख देवोंको प्राप्त हुआ करते हैं।

८८५। देवोंको और कैसा सुख मिलता है—देवोंको जो सुख मिलता है वह उपमारहित है। वैसा सुख और किसीको प्राप्त हो नहीं सकता। इसकारण उसकेलिये किसीकी उपमा नहीं दे सकते।

८८६। मनुष्यायुका बंध किन २ कारणोंसे होता है और किनके होता है—जो उत्तम पुरुष हैं, जिनके परिणाम स्वभावसे ही कोमल हैं जो आर्जव सत्य क्षमादि गुणोंसे विभूषित हैं, जिनभक्त हैं सदाचारी हैं, अल्पारंभी और अल्पपरिग्रही हैं वे जीव स्वाभाविक कोमलता अल्पारंभता अल्पपरिग्रहता आदि गुणोंके कारण उत्तम कुलमें धनी और नीरोग मनुष्य होते हैं।

८८७। तिर्यंच आयुकर्मका बंध किनके और किन २ कारणोंसे

होता है—जो जीव मायावी है व्रतरहित हैं शीलरहित हैं जि-नका हृदय सदा कुटिल रहता है जो दूसरोंके ठगनेमें बड़े निपुण हैं झूठे लेख लिखने तथा झूठे प्रयोग करनेमें सदा उ-द्यत रहते हैं वे जीव उपर्युक्त पापोंके कारण तिर्यंच आयुका बंध करते हैं।

८८८। कौन २ रौद्र जीव किन २ रौद्रकर्मोंसे नरकायुकर्मका बंध करते हैं—जो जीव अतिशय क्रूर हैं, जिनके हृदय अतिशय क्रूर रहते हैं, जो कुमार्गगामी हैं, रौद्रध्यानमें सदा लीन रहते हैं, सदा रौद्रकर्म करते रहते हैं, जो महापापी हैं, अतिशय विषयासक्त हैं, व्रतरहित हैं, शीलरहित हैं, सप्तव्यसनोंको सेवन करनेवाले हैं बहु आरंभी हैं, महापरिग्रही हैं, निरंतर पापोपार्जन करनेमें तत्पर रहते हैं, अनंतानुबंधी कषाय तथा कृष्णलेश्याको धारण करनेवाले हैं, तीव्रकषायी हैं, जिन-मार्ग जिनसिद्धांत निर्ग्रंथ मुनि और श्रावकोंकी सदा निंदा किया करते हैं, सदा मिथ्यामार्गका सेवन करते रहते हैं। जो नीचदेव और कुगुरुओंकी सेवा करते हैं तथा तपश्चरण जि-नधर्म जिनालय आदिमें सदा विघ्न किया करते हैं मिथ्याधर्म और कुमार्गमें चलनेकेलिये सदा प्रेरणा किया करतें हैं और जो पापकर्म करनेमें बड़े पंडित हैं। वे महापापी जीव उपर्युक्त महापाप करनेसे तथा और भी अनेक कुकर्म करनेसे अशुभ नरकायुकर्मका बंध करते हैं।

८८९। हे पूज्य! नरकमें जानेवाले नारकी जीवोंको कैसे २ दुःख भोगने पड़ते हैं—नारकियोंको क्षण क्षणमें ताड़न मारन आदिक अनेक दुःख सहने पड़ते हैं। अन्य नारकी लोग मिलकर तिल२के समान उनके शरीरके टुकड़े कर देते हैं, रुधिरादिसे भरी हुई वैतरणी नदीमें उसे डुबा देते हैं पर्वतके शिखरपरसे गिरा देते हैं। जलते हुए तेलके बड़े कढावमें पटक देते हैं, हड्डियोंको चूर २ कर देते हैं। शाल्मलिवृक्षोंके नीचे ले जाते हैं जहां कि तलवारके समान उन वृक्षोंके पत्ते शरीरपर पड़कर उसके टुकड़े २ कर देते हैं। कहां तक कहा जाय वहांके नारकी परस्पर एक दूसरेको सदा करोड़ों प्रकारके दुःख दिया करते हैं।

८९०। जो पुरुष परस्त्रीलंपट हैं उन्हें नरकमें किसप्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं—अनेक नारकी मिलकर क्षण क्षणमें उसके शरीरसे जलती हुई लोहेकी पुतलियां लगाते हैं। जिनसे उसे अतिशय दुःख होता है।

८९१। जो जीव स्वेच्छानुसार भक्ष्य अभक्ष्य आदि भोजन किया करते हैं उन्हें नरकमें कैसी क्षुधावेदना सहनी पडती है—उन्हें वहां ऐसी क्षुधा सहनी पड़ती है कि यदि वे तीनों लोकोंका संपूर्ण

---

१ नारकियोंका शरीर पारेके समान है टुकडे २ करदेने पर भी तुरंत अपने आप मिल जाता है। ऐसा नहीं होता कि शरीर छिन्न भिन्न करनेसे उनकी मृत्यु हो जाय और नरकपर्याय छूट जाय किंतु सागरोंकी नियमित आयु पूरी करलेने पर ही वहांसे वे छुटकारा पाते हैं।

अन्न भक्षण करलें तथापि तृप्त न हों परंतु वहां उन्हें एक दा-ना भी नहीं मिलता। उस भूखसे रातादिन उनका शरीर सूखा करता है।

८९२। जो जीव रातादिन पानी पिया करते हैं अर्थात् रातमें भी पानीका त्याग नहीं करते उन्हें नरकमें कैसी प्यास सहनी पड़ती है-- नारकियोंके उदरमें प्यासकी ऐसी दुःसह ज्वालाजला करती हैं कि यदि वे सब समुद्रोंका पानी पीजायं तब भी वह उनकी ज्वाला शांत न हो।

८९३। जो जीव नेत्रोंके द्वारा पापोपार्जन किया करते हैं अर्थात् स्त्रियोंके सुंदर अंग उपांग हाव भाव विलासादि देखा करते हैं उन्हें नरकमें क्या दुःख उठाना पड़ता है—अन्य नारकी लोग अनेक प्रकारके आयुधोंद्वारा क्षणक्षणमें उनके नेत्र निकाला करते हैं

८९४। जो जीव रातदिन बुरा चिंतवन किया करते हैं उन्हें नरक में कैसे २ दुःख सहन करने पड़ते हैं—अन्य नारकी जीव उनका उदर फाड़ डालते हैं और भीतरकी अंतड़ियोंका चूर २ कर देते हैं।

८९५। जो जीव रातदिन स्नान करनेमें ही पुण्य समझते हैं किंतु स्नानके द्वारा अनेक जलचर और जलकायिक जीवोंका घात कर महा पापका बंध किया करते हैं उन्हें नरकमें कैसा दुःख भोगना पड़ता है- अन्य नारकी जीव उन्हें वैतरणी नदीमें लेजाकर बार२ डुबाते हैं। नरकोंमें वैतरणी नामकी नदी है जो क्षार रुधिर आदि

महा अपवित्र और अतिशय दुर्गंध पदार्थोंसे भरी हुई है। इन में पड़नेसे नारकियोंको अतिशय दुःख पहुंचता है।

८९६। हे भगवन् नरकोंमें विभंगावधिज्ञान भी है उसे वे नारकी किस उपयोग में लगाते हैं-नारकी जीव केवल पापकार्योंमें ही पंडित हैं। उस विभंगावधिज्ञानसे वे केवल पूर्वभवकी शत्रुता जान लेते हैं और फिर उसी शत्रुताके बहानेसे वे परस्पर अनेकप्रकारके दुःख और पीड़ा पहुंचाया करते हैं।

८९७। नारकी जीवोंके वैक्रियक शरीर होता है उससे वे क्या काम लिया करते हैं—वैक्रियक शरीरसे वे अनेक प्रकारके आयुध उत्पन्न करलेते हैं और उन आयुधोंसे परस्पर एक दूसरे का शरीर छिन्न भिन्न किया करते हैं अथवा सिंह सर्पादि क्रूर घातकरूप धारणकर परस्पर एकदूसरेको भक्षण किया करतेहैं

८९८। नरकोंमें शीत और उष्णताका दुःख कैसा है—जहां शीत है वहां ऐसी शीतता है कि यदि एक लाख योजन ऊंचे मेरु पर्वतके समान एक लोहेका पिंड गलाकर उसमें डाला जाय तो वह पड़ते२ही कठिन हो जाय। जहां उष्णता है वहां वह ऐसी है कि यदि उसी मेरुपर्वतके समान लोहेका पिंड डाला जाय तो वह पड़ते २ ही गल जाय। ऐसी शीत[1] उष्णताका दुःख उन नारकियोंको सागरोंपर्यंत भोगना पड़ता है

---

1 पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे नरकमें उष्णवेदना तथा पांचवें नरकके दो हजार बिलोंमें उष्णवेदना है। शेषके पांचवें छठे सातवें नरकमें केवल शीतवेदना है।

८९९। नरकमें रहनेवाले नारकियोंको कभी थोड़ा बहुत सुख मिला करता है या नहीं—नारकियोंको निमेषमात्र भी कभी सुख नहीं मिला करता है। उन्हें छेदन भेदनादिसे होनेवाले अनेकप्रकारके घोर दुःख ही दुःख सदा भोगने पड़ते हैं और वे दुःख भी ऐसे हैं जिनका वर्णन महाकविभी नहीं कर सकते।

९००। नामकर्म किसे कहते हैं—जो कर्म चित्रकारके समान इस जीवके मनुष्य देव पशु आदि अनेक आकार बनावे उसे नामकर्म कहते हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे चित्रकार अनेक प्रकारके चित्र बनाया करता है उसी प्रकार जिस कर्मके उदय से इस जीवके देव पशु लंबा ठिंगना सुंदर असुंदर आदि शरीरके अनेक आकार बनते हैं उसे नामकर्म कहते हैं।

९०१। किन २ दुराचरणोंसे अशुभनामकर्मका बंध होता है—मन बचन कायकी कुटिलता रखनेसे, अरहंतदेव जिनशास्त्र निर्ग्रंथमुनि और धर्मात्माओंकी निंदा करनेसे और कुदेव कुशास्त्र तथा कुगुरुओंकी स्तुति पूजा आदि करनेसे अशुभ नामकर्मका बंध होता है।

९०२। यह अशुभ नामकर्म क्या फल देता है—पापी जीवों-का जो शरीर अशुभ होता है दुर्गंधमय होता है कुरूप होता है उसके स्पर्श रसआदि भी बुरे होते हैं। कुत्ता बिल्ली गधा आदि नीच पशुओंका शरीर, नारकियोंका हुंडक शरीर भील आदि जंगली मनुष्योंका शरीर जो अशुभ निंद्य और भया-

नक होता है वह सब अशुभ नामकर्मका ही फल समझना चाहिये।

९७३। शुभ नामकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है—मन वचनकायकी सरलता रखनेसे, आर्जव मार्दव आदि सद्गुण धारण करनेसे, श्रीअरहंतदेव जिनसिद्धांत और मुनियोंकी स्तुति पूजा आदि करनेसे, नीच देवोंका संसर्ग छोड़नेसे और व्रत पूजा उपवास आदि शुभकर्म करनेसे शुभनामकर्मका बंध होता है।

९७४। शुभ नामकर्मके उदयसे क्या होता है—शुभ गति, शुभ जाति, उत्तम सुगंध सुंदर और सुकोमल शरीर आदिकी प्राप्ति होती है। पुण्यवान् पुरुष शुभ नामकर्मके प्रभावसे ही उत्तम मनुष्य और देवोंके उत्तमस्थानोंमें प्राप्त होते हैं और सौभाग्य आदि अनेकप्रकारके सुख उन्हें मिला करते हैं।

९७५। कौन २ पुरुष सुंदर रूपवान् होते हैं—जो पुरुष अपने सुंदररूपका कभी अहंकार नहीं करते निरंतर तपश्चरण करते हैं, व्रत यम नियम आदि पालन करते हैं, जो देव शास्त्र गुरुकी भक्ति और पूजा करते हैं, उन्हें सदा प्रणाम करते हैं। अपने कल्याण और भलेकेलिये कभी शरीरसंस्कारादि नहीं करते वे पुरुष पुण्योदयसे अतिशय सुंदर होते हैं।

९७६। कौन २ अशुभकर्म करनेसे मनुष्य कुरूपी होते हैं—जो पुरुष अतिशय रागी हैं, अपने सुंदर रूपादिके अहंकारी

हैं, जो अन्यस्त्रियोंके लुभानेकेलिये स्नान वस्त्राभूषणादिसे रा-तदिन अपने शरीरका संस्कार किया करते हैं, जो यम नियम तप व्रत आदि शुभानुष्ठानोंको जानते ही नहीं, जिनभक्ति जिनपूजादि कभी करते ही नहीं। वे जीव अशुभ कर्मके उ-दयसे अतिशय कुरूपी होते हैं।

९०७। तपश्चरणादिके योग्य दृढशरीर और दृढसंहनन किन २ शुभाचरणोंसे प्राप्त होता है— जो जीव मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये अ-पनी पूर्णशक्ति प्रगटकर कठिन २ तपश्चरण, ध्यान यम नि-यम आदि धारण करते हैं, सदा जिनपूजा जिनभक्ति आदि किया करते हैं, वे पुरुष उस शुभकर्मके उदयसे वज्रशरीरी होते हैं।

९०८। किन २ अशुभकर्मोंसे ऐसा दुर्बल और हीन शरीर प्राप्त होता है कि जो तपश्चरण धारण नहीं कर सकता–जो पुरुष अति-शय शक्तिशाली होकर भी तपश्चरण ध्यान व्रत यम नियम आदि पालन नहीं करते अपने शरीरको सुख पहुंचानेमें ही सदा लीन रहते हैं उसीकेलिये अनेक अशुभकर्म करते रहते हैं जो धन बल आदिके अहंकारमें चूर हैं ऐसे पुरुष परलोक में दुर्बल और अशक्त होते हैं।

९०९। देव विद्याधरादिकोंका शुभगमन किन २ कारणोंसे होता है-ईर्यापथशुद्धि और तीर्थयात्रा आदि शुभाचरणोंसे शुभगमन (शुभविहायोगति) की प्राप्ति होती है।

९१० । ऊंट गधा पक्षी आदि पापी जीवोंका अशुभगमन किन २ पापोंसे प्राप्त होता है—कुतीर्थ यात्रा करने और स्वेच्छानुसार व्यर्थ इधर उधर फिरने आदि अशुभ कर्मोंसे अशुभगमनकी प्राप्ति होती है।

९११ । पंगु अर्थात् लंगडे किन २ दुराचरणोंसे होते हैं—जो जीव अपने पैरोंसे अनेक जीवोंको कुचल डालते हैं, धनके लोभमें पडकर पशु और दास दासियोंको कठिन और दूरवर्त्ती मार्गमें चलाते हैं, जो जीवोंकी हिंसा करते हुए रातदिन इधर उधर व्यर्थ घूमा फिरा करते हैं, वे जीव अंगोपांगकर्मके उदयसे पराधीन लंगड़े होते हैं।

९१२ । किस पुण्यकर्मसे मनुष्य सुस्वर होता है—जो जीव रातदिन मिष्ट सुकोमल वाणीसे धर्मोपदेश दिया करते हैं सुदेव शास्त्र गुरुके स्तोत्र गीत भजन आदि कहा करते हैं वे जीव उस पुण्यकर्मसे सुस्वर अर्थात् मीठी और कोमल आवाजवाले होतेहैं

९१३ । दुःस्वर किस पापसे होते हैं—जो जीव सदा कुमार्ग और पापकर्मोंका उपदेश दिया करते हैं, अरहंतदेव जिनवाणी और निर्ग्रंथ गुरुकी निंदा किया करते हैं वे जीव उस पाप कर्मसे दुःस्वर अर्थात् कठोर और कर्कश आवाजवाले होते हैं

९१४ । किन २ शुभाचरणोंसे सुभग (दूसरोंके प्रीति करने योग्य) होते हैं—जो जीव तपश्चरण आदिके अहंकारसे दूर हैं, देवशास्त्र गुरुकी सदा पूजा भक्ति आदि किया करते हैं, व्रत शील

शुभाचरण आदि पुण्यकर्मोंमें सदा प्रीति रखते हैं और कभी किसीको किसीप्रकारकी पीड़ा नहीं देते, वे जीव उस पुण्योदयसे सुभग होते हैं।

९१५। दुर्भग (दूसरोंको अप्रीतिके भाजन) किस पापसे होते हैं- जो सदा दूसरोंसे द्वेष रखते हैं, अपने सौभाग्यादिके अहंकारसे परस्त्रियोंकी लालसा रखते हैं, सद्धर्मके निंदक हैं, जो अन्य लोगोंकी दृष्टिमें सदा निंद्य और अप्रिय रहते हैं, वे जीव उस पापकर्मके निमित्तसे दुर्भग होते हैं।

९१६। किस पुण्यकर्मसे धर्मात्मा लोगोंका यश संसारभरमें फैल जाता है—जो जीव अनिंद्य और शुद्ध आचरण पालन करते हैं, तपश्चरण व्रत आदि शुभक्रियाओंमें सदा लीन रहते हैं, देव शास्त्र गुरु और जिनधर्मकी सदा प्रभावना किया करते हैं, उनके गुण वर्णन करते रहते हैं, वे जीव यशःप्रकृतिके उदयसे परमयशके भाजन होते हैं।

९१७। तीनों लोकोंमें पापी लोगोंका अपयश किस पापसे फैलता है- निंद्य क्रिया करनेसे, तपश्चरण योग आदिके द्वारा अपने गुण वर्णन करनेसे, किसी दुष्ट आशयसे धर्मात्मा और गुणवान् पुरुषोंके वृथा दोष प्रगट करनेसे, तथा और भी अपयशके काम करनेसे अयशःकीर्तिनामकर्मके उदय होने पर संसारभरमें कलंक फैल जाता है।

९१८। तीर्थंकर नामकर्मका बंध किन २ कारणोंसे होता है— दर्शनविशुद्धि १ विनयसंपन्नता २ शील और व्रतोंको निरतिचार पालन करना ३ निरंतरज्ञानोपयोग ४ संवेग ५ शक्तितस्त्याग ६ शक्तितस्तपः ७ साधुसमाधि ८ वैयावृत्य ९ अर्हद्भक्ति १० आचार्यभक्ति ११ उपाध्यायभक्ति १२ शास्त्रभक्ति १३ आवश्यकापरिहाणि १४ मार्गप्रभावना १५ और प्रवचनवत्सलत्व १६ इन सोलहकारणोंसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध होता है।

९१९। दर्शनविशुद्धि किसे कहते हैं–पच्चीस[1] दोषरहित निर्मल सम्यग्दर्शनको पालन करना दर्शनविशुद्धि कहलाती है। यह दर्शनविशुद्धि तीर्थंकरप्रकृतिकेलिये मुख्य कारण है।

९२०। विनय किन २ को करना चाहिये--सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तपश्चरण और इनको धारण करनेवाले गुणवान पुरुषोका मनबचनकायसे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष विनय करना चाहिये।

९२१। अतिचार (दोष) कहां २ नहीं लगाना चाहिये-- अहिंसादिक पांच व्रतोंमें, गुणव्रतशिक्षाव्रतशीलोंमें, तपश्चरणमें, त्रिकालसामायिकमें और यमनियमादिकोंमें कभी अतिचार नहीं लगाने चाहिये।

---

१ आठ अंगोंका पालन नहीं करना, आठ मद करना, तीन मूढ़ता और छह अनायतन ये २५ दोष कहे जाते हैं।

९२२। निरंतरज्ञानोपयोग किसे कहते हैं- ग्यारह अंग चौदह पूर्व, अंगवाह्य आदि संपूर्णशास्त्रोंको प्रयत्नपूर्वक निरंतर पठन पाठन करना मनन करना आदि निरंतरज्ञानोपयोग (अभीक्षणज्ञानोपयोग) कहलाता है।

९२३। किन २ पदार्थों से संवेग (वैराग्य) करना चाहिये - जन्ममरणरूपसंसारसे, भोगोपभोगके संपूर्ण पदार्थोंसे और अनेक अनर्थ करनेवाले घर धन धान्य स्त्री पुत्र आदिसे सदा संवेगरूप परिणाम रखना चाहिये।

९२४। शक्तिके अनुसार त्याग किसप्रकार करना चाहिये—चार प्रकारका उत्तम दान देना अर्थात् अपना धनधान्यादि आहारदान औषधदान अभयदान और ज्ञानदानमें खर्च करदेना अथवा जिनवंदना स्वाध्याय आदिको बढ़ानेकेलिये चैत्यालय स्वाध्यायालय आदि बनवाकर दानदेना उचित है।

९२५। शक्तिके अनुसार तपश्चरण किसप्रकार करना चाहिये— अपने संपूर्ण प्राक्रम और शक्ति प्रगटकर बारह प्रकारके घोर तपश्चरण करना चाहिये।

९२६। साधुसमाधि किसप्रकार करना उचित है— धर्मोपदेश देकर अथवा मनवचनकायसे समाधि (ध्यान) धारण करनेवाले योगियोंकी सेवा सुश्रूषा आदि करके साधुसमाधि धारण करना उचित है।

९२७। वैयावृत्त्य किसप्रकार करना उचित है—आचार्य उपा-

ध्यायादि अनेकप्रकारके सद्गुण धारण करनेवाले दशप्र-कारके मुनियोंकी सेवा सुश्रूषा पांवदावना आदिसे वैयावृत्त्य करना चाहिये।

९२८। अर्हद्भक्ति किसे कहते हैं—अन्य सबको छोड़कर मनवचनकायसे केवल अरहंतदेवकी पूजा भक्ति सेवा स्तुति आदि करना अर्हद्भक्ति कहलाती है।

९२९। आचार्यभक्ति क्या है—आचार्यपरमेष्ठीको प्रणाम करना उनका विनय और आराधन करना आदि अनेक गुण प्रदान करनेवाली आचार्यभक्ति है।

९३०। उपाध्यायभक्ति किसे कहते हैं—अंगपूर्वादिको जाननेवाले और निरंतर पठन पाठन करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीकी गाढ भक्ति करना तथा मनवचनकायसे उनका आराधन करना आदि उपाध्यायभक्ति कहलाती है।

९३१। शास्त्रभक्ति किसे कहते हैं—जिनसिद्धांतमें तथा उनके कहे हुये वचन और पदार्थोंमें श्रद्धा रुचि और निश्चय करना तथा जिनसिद्धांतकी पूजा स्तुति आदि करना शास्त्र भक्ति कही जाती है।

---

१ आचार्य उपाध्याय साधु तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ और मनोज्ञ ये दस प्रकारके मुनि कहलाते हैं इनकी सेवा करना दशप्रकारका वैयावृत्त्य कहलाता है।

२ गृहस्थोंकेलिये देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयम तप और दान ये छह आवश्यक कहे हैं।

९३२ । आवश्यकापरिहाणि अर्थात् आवश्यकोंको पूर्णरीतिसे पालन करना किसे कहते हैं—मुनियोंकेलिये समता स्तुति वंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग ये छह आवश्यक कर्म कहे हैं जो अवश्य किये जायं उन्हें आवश्यक कर्म कहते हैं मुनि लोग कर्मोंकी निर्जरा करनेकेलिये बड़े प्रयत्नसे अपने अपने समयपर इन छहों आवश्यकीय कार्यों को अवश्य करते हैं कभी छोड़ते नहीं इसीको आवश्यकापरिहाणि कहते हैं।

९३३ । समता किसे कहते हैं—शत्रु, मित्र, प्रिय, अप्रिय, सुख दुःख आदि इष्ट अनिष्ट संपूर्ण पदार्थोंमें एकसे परिणाम रखना, अर्थात् इष्टसंयोग व अनिष्टवियोग होनेपर हर्ष भी नहीं करना और न इष्टवियोग वा अनिष्टसंयोग होनेपर विषाद करना सो समता कहलाती है।

९३४ । स्तुति किसे कहते हैं—भक्ति और प्रेमवश चतुर्विंशति तीर्थकरोंके यथार्थ गुणोंका वर्णन करना स्तुति है।

९३५ । वंदना किसे कहते हैं—प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों समयोंमें उत्तम २ गुण वर्णनकर किसी एक तीर्थंकरकी स्तुति करना वंदना कहलाती है।

९३६ । प्रतिक्रमण किसे कहते हैं—व्रत यम नियमादिकोंको निर्दोष पालन करना अथवा आत्मनिंदा वा आत्मगर्हा आदिके द्वारा उनमें लगे दोषोंका निराकरण करना प्रतिक्रमणहै।

९३७ । प्रत्याख्यान किसे कहते हैं—अपनेलिये न सदोष प-

दार्थोंको ही ग्रहण करना और न निर्दोष पदार्थोंको ग्रहण करना। तपश्चरण करनेकेलिये संपूर्ण पदार्थोंका त्याग करना प्रत्याख्यान कहलाता है।

९३८। कायोत्सर्ग किसे कहते हैं—शरीरादिकसे भी सर्वथा पूर्णतया ममता छोड़कर जो धीर वीर मुनि केवल ध्यानको आलंबनकर निश्चल विराजमान होते हैं वह कायोत्सर्ग कहा जाता है।

९३९। मार्गप्रभावना किसे कहते हैं—लोगोंके अज्ञान दूरकर जिनशासनका माहात्म्य प्रगट करना अथवा तपश्चरण जिनपूजा प्रतिष्ठा रथोत्सव आदिके द्वारा जिनशासनका माहात्म्य प्रगट करना मार्गप्रभावना है।

९४०। प्रवचनवत्सलत्व किसे कहते हैं-सम्यग्दृष्टी और ज्ञानी पुरुषोंके प्रति तथा धर्मात्मा पुरुषोंके प्रति गाढ स्नेह रखना प्रवचनवत्सलत्व है।

९४१। इन सोलहकारण भावनाओंके चिंतवन और सेवन करनेसे क्या फल मिलता है—तीनों लोकोंको क्षोभ करनेवाला और मोक्षका कारण ऐसे तीर्थंकरनामकर्मका बंध होता है।

९४२। किन २ भावनाओंसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध अवश्य होता है—सम्यग्दृष्टी पुरुषके निर्मल सम्यग्दर्शनके साथ २ अन्य भावनाओंके होनेसे तीर्थंकरनामकर्मका बंध अवश्य होता है।

९४३। इन सोलहकारण भावनाओंमें मुख्य कौन है—इन सब-

में निर्दोष सम्यग्दर्शन ही मुख्य है क्योंकि अन्यकारणोंके न होते हुये भी तीथकरप्रकृतिका बंध हो जाता है परंतु सम्यग्दर्शनके अभावमें वह बंध कभी नहीं हो सकता।

७४४। जो तीर्थंकर हो गये हैं और होंगे वे किस पुण्यसे हुये हैं वा होंगे—जो तीर्थंकर हुये हैं वा होंगे वे सब सम्यग्दर्शनादि शुभ और निर्मल भावनाओंके चिंतवन करनेसे ही हुये हैं और इन्हींके चिंतवन करनेसे होंगे। इन सोलहकारण भावनाओंके बिना कभी कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता।

७४५। इन सोलहकारणभावनाओंका ऐसा उत्कृष्ट माहात्म्य समझकर क्या करना उचित है-श्रीजिनेंद्रदेवके गुण प्राप्त करनेकेलिये शुद्ध मनवचनकायसे सम्यग्दर्शनकी शुद्धतापूर्वक रातदिन इन उपर्युक्त सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन करना उचित है। इनके चिंतवन करनेसे निःसंदेह अभ्युदयकी प्राप्ति होती है।

७४६। ऊंचगोत्र किसे कहते हैं—जिस कुलमें चक्रवर्त्ती तीर्थंकर आदि बड़े २ पुरुष उत्पन्न हो सकें। जिसकुलके उत्पन्न हुये पुरुष दीक्षा ले सकें तथा इंद्रादि पूज्यपुरुष भी जिसे उत्तम समझें वह कुल ऊंचगोत्र कहलाता है।

७४७। किन २ शुभाचरणोंसे ऊंचगोत्रका बंध होता है-अर्हंतदेव निर्ग्रंथमुनि अहिंसादि धर्म और सम्यग्दर्शनादि गुणोंको प्रणाम स्तुति भक्ति आदि करनेसे जगत्पूज्य ऊंचगोत्रका बंध

होता है अथवा अपनी निंदा करनेसे उत्कृष्ट आचरण पालन करनेसे अहंकार न करनेसे तथा और भी उत्तम २ आचरण पालन करनेसे संसारको हित करनेवाला ऊंच गोत्रका बंध होता है।

५४८। नीच गोत्र किसे कहते हैं—जिस कुलमें उत्पन्न होनेसे दास दासी आदिका काम करना पड़े, जोकुल निंद्य हो अथवा जिसमें उत्पन्न होकर दीक्षाग्रहण आदि उत्तम कर्म नहिं करसकें वह कुल नीचगोत्र कहलाता है।

५४९। किन २ दुराचरणोंसे नीचगोत्रका बंध होता है—धर्मात्मा और गुणवान् पुरुषोंके सद्गुणोंका घात वा लोप करनेसे, अधर्मी और निर्गुणी पुरुषोंके असद्गुण प्रगट करनेसे, लोगोंकी निंदा करने, अपने दोष छिपाने और गुण प्रगट करनेसे तथा और भी निंद्य कर्म करनेसे नीचगोत्रका बंध होता है

५५०। किन २ पुरुषों को ऊंचगोत्रकी प्राप्ति होती है—जो पुरुष सर्वोत्तम गुणोंको धारण करनेवाले देव शास्त्र गुरुको श्रावक धर्मात्मा, व अर्जिका आदिको नमस्कार करते हैं इनकी सेवा और स्तुति करते हैं जो कुदेवादि पापियोंको कभी नमस्कारादि नहीं करते, वे पुरुष ऊंच गोत्रके उदयसे उत्तम कुल और ऊंच गोत्रमें जगतपूज्य पुरुष होते हैं।

५५१। नीचगोत्रमें कौन २ पुरुष उत्पन्न होते हैं—जो पुरुष न तो कभी जिनधर्मको नमस्कार करते हैं न देवशास्त्रको-

नमस्कार करते हैं और न कभी सम्यक्चारित्रको धारण करनेवाले गुरुओंको नमस्कार करते हैं जो सदा नीच देवोंको नीच और कुकर्म करनेवाले भेषी गुरुओंको और हिंसक धर्मको नमस्कार करते हैं इन्हींकी सेवा करते हैं इन्हीं का आश्रय लेते हैं वे पुरुष नीचगोत्रके उदयसे या चांडालादि नीच गोत्रमें धर्मसेवन करनेमें असमर्थ नीच और जगतनिंद्य होते हैं।

८५२। यह सब समझकर क्या करना चाहिये— नीच और क्षुद्र देवोंको छोड़कर उत्कृष्ट गुणोंके धारण करनेवाले जिनेंद्रदेव निर्ग्रंथ गुरु आदिका सेवन करना चाहिये। इन्हींके सेवन करनेसे उच्च गुण और उच्चगोत्रकी प्राप्ति होती है।

८५३। अंतरायके कितने भेद हैं—पांच हैं। दानांतराय लाभांतराय भोगांतराय उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

८५४। किन २ निंद्यकर्मोंसे दानांतराय कर्मका बंध होता है— जो दुर्बुद्धि पुरुष शास्त्रदान, जिनपूजा चैत्य चैत्यालयादि के उद्धारकरने आदि शुभकार्योंमें विघ्न डालते हैं उन्हें उस घोर पापसे दानांतराय कर्मका बंध होता है।

८५५। जो पुरुष चैत्य चैत्यालयादिके उद्धार करनेमें अथवा शास्त्रदानादिमें विघ्न डालते हैं उन पापियोंको क्या फल मिलता है— उन्हें निंद्य नरकादि दुर्गतियोंमें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, पदपदपर उनकी निंदा होती है भवभवमें उन्हें दरिद्रता

भोगनी पड़ती है और सब जगह नीचदीनताका दुःख उठा-
ना पड़ता है ।

८५६ । जो पुरुष यम नियम दीक्षा आदि ग्रहण करनेकेलिये उ-
द्यत हैं पूजा प्रतिष्ठा आदि महोत्सव और अनेक धर्मकार्य करना चाहते
हैं उनके उन धर्मकार्योंमें विघ्न करनेवाले पापियोंको परलोकमें कौनसी
गति प्राप्त होती है---उन्हें अनेक दुःख देनेवाले और नाना
अशुभ करनेवाले सातवें नरकमें अवश्य जाना पड़ता है ।
इसमें किसीप्रकारका संदेह नहीं है ।

८५७ । यह दानांतराय कर्म क्या करता है अर्थात् इसके उदयसे
क्या होता है---दानांतरायकर्मके उदयसे कृपणपुरुषोंकी कृ-
पणता बढ जाती है । चैत्य, चैत्यालय, स्वाध्यायालय आ-
दि पुण्यस्थान निर्मापण करनेमें और दान करनेमें उन्हें
अनेकप्रकारके विघ्न आ उपस्थित होते हैं । दानांतरायक-
र्मके उदयसे उनके परिणाम ही ऐसे हो जाते हैं जो वे उप-
र्युक्त किसी शुभकार्यको नहीं कर सकते ।

८५८ । दानांतराय कर्मका ऐसा स्वरूप जानकर मनुष्योंको क्या
करना उचित है---प्रत्येक प्राणीको संपूर्ण धर्मकार्य करनेके-
लिये मन वचन कायसे सदा सर्वथा प्रेरणा करना उचित
है । कंठगतप्राण होनेपर भी इनका निवारण करना
अनुचित है ।

८५९ । धर्मकार्योंकी प्रेरणा करनेसे क्या लाभ होता है--जो पुरु-

य धर्मकार्य करनेकेलिये सदा प्रेरणा किया करते हैं सदा उनकी अनुमोदना किया करते हैं मनवचनकाय तथा कृत-कारित अनुमोदनासे सदा धर्मकार्य करनेका उपदेश दिया करते हैं, उन सबके सदा धर्मोपार्जन और पुण्योपार्जन हुआ करता है।

९६० । किन २ अशुभ कारणोंसे लाभांतराय कर्मका बंध होता है–दूसरोंके लाभमें विघ्न डालने और पापकार्योंके करनेसे लाभांतरायकर्मका बंध होता है।

९६१ । लाभांतरायकर्मके उदयसे क्या होता है–धनधान्यादिकी आकांक्षा रखनेवाले और उसकी प्राप्तिकेलिये नित्य व्यवसाय करनेवाले लोगोंको लाभांतरायकर्मके उदयसे किसी वस्तुका लाभ नहीं होता है।

९६२ । भोगांतरायकर्मका बंध किन २ निंद्यकर्मोंसे होता है- दूसरोंके भोगोंमें विघ्न डालने और अपनीं इंद्रियोंका सदा पोषण करनेसे भोगांतरायकर्मका बंध होता है।

९६३ । भोगांतरायकर्मका उदय क्या फल देता है- सुंदर भोजनादिकी आकांक्षा करनेवाले भोगलोलुपी मनुष्योंको भोगांतरायकर्मके उदयसे भोजनपानादि किसी सामिग्रीकी प्राप्ति नहीं होती है।

---

१ जो एकवार भोगनेमें आवें ऐसे भोजनपान पुष्पमाला आदि पदार्थ भोग गिने जाते हैं।

९६४। उपभोगांतरायकर्मका बंध किन २ अशुभ कारणोंसे होता है- दूसरोंके उपभोगमें विघ्न डालने और अपने उपभोगोंकी प्राप्तिकेलिये निरंतर आकांक्षा रखनेसे उपभोगांतरायकर्मका बंध होता है।

९६५। उपभोगांतरायकर्मके उदयसे क्या फल मिलता है -उपभोगांतरायकर्मके उदयसे उपभोगकी प्राप्तिमें सदा विघ्न पड़ा करते हैं।

९६६। किन २ पुरुषोंको किन २ दुराचरणोंसे पुत्रमित्रादि इष्ट पदार्थोंका वियोग हुआ करता है—जो दुष्टपुरुष पशुओंके बालबच्चोंको तथा मनुष्योंके बालबच्चोंको उनके मातापिताओंसे अलग कर लेते हैं अथवा निर्दयी पुरुष किसी दुष्ट अभिप्राय से उन्हें हर लेजाते हैं उन्हें पुत्रमित्रादि इष्ट पदार्थोंका वियोग सहन करना पड़ता है।

९६७। किन २ पुण्यवान् पुरुषोंको कौन शुभाचरण करनेसे पुत्रमित्रादि इष्ट पदार्थोंका वियोग सहन नहीं करना पड़ता—जो सज्जन पुरुष कभी किसीके स्त्री पुत्रादिकोंको किसीसे वियोग करना नहीं चाहते जो दूसरोंके दुःख देखकर स्वयं दुःखी होते हैं उन पुण्यवान् पुरुषोंके पुत्रपौत्रादि सब चिरजीवी होते हैं। कभी किसीका वियोग नहीं होता है।

---

१ जो पदार्थ वारंवार भोगनेमें आते हैं ऐसे महल मकान शय्या आसन सवारी आदिको उपभोग कहते हैं।

९६८। किन २ शुभाचरणोंसे बडे रूपवान् और भाग्यशाली पुत्र होते हैं—व्रत, शील, उपवास आदि करनेसे दान देनेसे और अरहंतदेवकी पूजा आदि महोत्सव करनेसे रूपवान् और भाग्यशाली पुत्र होते हैं।

९६९। किन २ दुराचरणोंसे बंध्यत्व (पुत्र पुत्री आदि संतानका न होना.) प्राप्त होता है—अत्यंत काम सेवन करनेसे अथवा चंडी क्षेत्रपाल आदि कुदेवोंकी पूजा भक्ति कर मिथ्यात्व सेवन करनेसे बंध्यत्व प्राप्त होता है।

९७०। धनी किन २ शुभकर्मोंसे होते हैं–लोभ और पापरूप दुर्व्यसनोंका त्याग करदेनेसे तथा दान देने जिनपूजा करने और व्रतपालन करनेसे प्रचुर धनकी प्राप्ति होती है।

९७१। उपर्युक्त कथनानुसार शुभाशुभ कर्मबंध करनेवाले जीवोंके प्रतिक्षणमें होनेवाले कर्मफलको जानकर क्या करना उचित है— यह उपर्युक्त कर्मोंका विपाक समझकर मोक्षरूप सुख प्राप्त होनेके लिये यही करना उचित है कि कर्मका बंध करनेवाले राग द्वेषरूप परिमाणोंको नष्टकर ध्यान व्रत यम नियमादि द्वारा कर्मफलोंको जीतें।

जो बुद्धिमान् पुरुष अनेकप्रकारके सुखदुःख देनेवाले इन कर्मफलोंको जानकर धैर्य धारणकर उपर्युक्त विधिसे सहन और विजय करते हैं उन्हें उनके कर्मरूप शत्रु नष्ट हो जानेसे अनंत सुखकी प्राप्ति होती है सर्वत्र उनका जय होता

है। सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र आदि उत्तम २ गुण प्राप्त होते हैं और अंतमें उन्हें स्वर्गमोक्षकी उत्तम संपदायें क्रमसे प्राप्त होती हैं।

जिन श्रीजिनेंद्रदेवने तीनों लोकोंके जीवोंको समझानेकेलिये अनेकप्रकारके कर्मफल निरूपण किये हैं। जो सिद्धभगवान् इन्हीं कर्मफलोंको जीतकर लोकशिखर जा विराजमान हुये हैं। जो आचार्य जो उपाध्याय और जो साधु सदा इन कर्मफलोंको जीतते हैं उन संपूर्ण पंच परमेष्टियोंकी मैं उनके भिन्न २ गुण वर्णनकर स्तुति करता हूं और कर्म नष्ट करनेके लिये उन्हें मैं बार २ नमस्कार करता हूं।

इति श्रीधर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रंथे विपाकपृच्छा
वर्णनो नाम पंचमः परिच्छेदः ॥ ५ ॥

——:०:——

अथ षष्ठः परिच्छेदः।

धर्मरूपी तीर्थके उद्धार करनेवाले प्रश्नोत्तर निरूपण करनेमें समर्थ ऐसे उत्कृष्ट तीर्थंकर और गणधरदेवोंको मैं उनके गुणोंकी प्राप्तिकेलिये बार २ नमस्कार करता हूं तथा बार २ उनकी स्तुति करता हूं।

जगज्ज्येष्ठ सद्गुरुको नमस्कारकर यह शिष्य सज्जनोंके चित्त मोहित करनेवाले सज्जनचित्तवल्लभ नाम वाले नीचे लिखे प्रश्न करता है।

७७२ । विद्वान् कौन हैं—जो पुरुष धर्म, तत्त्वार्थ और सत्कृत्योंको जानते हैं, पंचेंद्रियोंके विषयोंसे तथा मिथ्यात्व मोह और असंयम आदिसे बहुत दूर रहते हैं अपनी पूर्ण शक्तिसे रातदिन रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गका सेवन करते हैं तपश्चरण धारण करते हैं वे ही विद्वान् कहलाते हैं। इनके सिवाय अन्य कोई विद्वान् नहीं हो सकते।

७७३ । मूर्ख कौन हैं--जो पुरुष आगम तत्त्वार्थ और सद्धर्मको जानकर भी ग्रहण नहीं करते और न उनपर विश्वास ही करते हैं जो कनिष्ठा[1] अंगुलीके समान नीच और अधम हैं मोक्षमार्गमें कभी स्थिर रह नहीं सकते। इंद्रियोंमें सदा लंपट रहते हैं रातदिन दुराचारोंमें लीन रहते हैं ऐसे जड़ पुरुष ही मूर्ख कहलाते हैं।

७७४ । विवेकी कौन हैं---जो पुरुष रातदिन हिताहितका विचार करते रहते हैं इस संसारमें सारपदार्थ क्या है, यह काम संसारको किसप्रकार वश कर रहा है, सच्चे देव शास्त्र-गुरु कौन हैं, सन्मार्ग क्या है, कुमार्ग क्या है कौन २ जीव धर्मनिष्ठ हैं, कौन पापात्मा हैं, कौन पात्र हैं कौन अपात्र हैं कौन मत जीवोंका कल्याण करनेवाला है इत्यादि विचार करनेवाले उत्तम पुरुष ही विवेकी कहे जाते हैं।

७७५ । निर्विवेकी कौन हैं--जो पुरुष अपने हित अहितका

---

१ सबसे छोटी उंगली।

विचार नहीं कर सकते, अपने कल्याणकेलिये देव कुदेव, शुभ अशुभ गुरु कुगुरु, धर्म अधर्म, गुणी निर्गुणी, पात्र अपात्र, शास्त्र कुशास्त्र आदि सबका सेवन करते हैं सबकी पूजा भक्ति करते हैं वे इस अपरिमित संसारमें भ्रमण करनेवाले मनुष्य निर्विवेकी कहलाते हैं।

७७६। शूर कौन हैं--जो पुरुष चारित्ररूपी समरभूमिमें आकर कषायरूपी प्रबल शत्रुओंको, तथा काम इंद्रिय आदि बैरियोंको, परीषहरूपी योद्धाओंको, कर्मोंके अजेय विपाकोंको और दुस्सह मनवचनकायकी क्रियाओंको प्रयत्नपूर्वक जीतता है वही शूर है केवल शारीरिकबलसे शूर नहीं कहा जा सकता।

७७७। कातर (कायर) कौन हैं--जो पुरुष चारित्ररूपी रणभूमिमे आकर परीषहरूपी योद्धाओंसे और कषाय विषयरूप वैरियोंसे डरकर भाग जाते हैं भयभीत हो जाते हैं हार जाते हैं रत्नत्रय और तपश्चरणरूपी धन छोड़ भागते हैं, वे निर्लज्ज क्षुद्रहृदय, दीन और जगतमें निंद्य ऐसे कातर कहे जाते हैं।

७७८। पतित कौन हैं--जो पुरुष व्रत चारित्र आदि उत्तम स्थानोंसे गिर पड़ते हैं अर्थात् उन्हें छोड़ देते हैं और जो उत्तम २ गुणोंको छोड़कर नीच दुर्गुण धारण कर लेते हैं, वे निंद्य मूर्खजन पतित गिने जाते हैं।

९७९। उत्तम कुलीन पुरुष कौन कहे जाते हैं--जो पुरुष स्वीकार वा ग्रहण किये हुये व्रत चारित्र और उत्तम गुणादिकों-से कभी च्युत नहीं होते वे उत्तम कुलीन पुरुष कहे जाते हैं।

९८०। नीच कौन हैं-जो नीचकर्म करते हैं कुदेव कुशास्त्र कुगुरुओंका सेवन करते हैं कुधर्म और नीच कुमार्गका सेवन करते हैं, वे जीव नीच कहलाते हैं।

९८१। उत्तम कौन हैं--जो अहिंसाधर्म पालन करते हैं अरहंतदेव निर्ग्रंथगुरु और आप्तोक्त शास्त्रको मानते हैं उत्तम-धर्म तथा सुमार्गका सेवन करते हैं, वे जगतपूज्य पुरुष उत्तम कहे जाते हैं।

९८२। प्रशंसनीय कौन हैं--जो जीव अतिशय प्रशंसनीय और जगतके साररूप तपश्चरण, व्रत, सम्यग्दर्शन आदिको धारण करते हैं वे तीनों लोकोंमें अति प्रशंसनीय गिने जाते हैं।

९८३। निंद्य कौन हैं--जो निंद्य कर्म करते हैं सदोष सम्य-ग्दर्शनादि पालन करते हैं और विषयोंमें सदा लीन रहते हैं वे भेषी पुरुष सदा निंद्य कहलाते हैं।

९८४। धीर वीर मनुष्य कौन हैं--जो उग्र व्रत उग्र तपश्चरण यम नियमादि पालन करते हैं और रोगादि करोड़ों उपसर्ग आनेपर भी न तो उन्हें छोड़ते हैं और न किंचित् उनमें च-लायमान होते हैं किंतु ज्यों २ अधिक उपसर्ग आते जाते हैं त्यों त्यों हठपूर्वक कठिन और अधिक २ व्रत तप यम नियमा-

दि धारण तथा पालन करते हैं, जो क्लेश दुःखादिसे कभी नहीं डरते, उन्हें धीर वीर कहते हैं।

९८५। अधम कौन हैं—जो व्रत तप यम नियमादि धारण कर थोड़ेसे रोग क्लेश आदि आनेपर उन्हें छोड़ देते हैं वे जगन्निंद्य पुरुष अधम कहलाते हैं।

९८६। सिंहके समान साहसी कौन हैं—जो पुरुष उत्कृष्ट संयम दुष्कर तपश्चरण आदि स्वीकारकर तथा बड़े भयंकर और अति साहससे धारण करनेयोग्य योग आसन आदि धारणकर प्राण नाश होनेपर भी उनमें कोई किसीप्रकारका दोष नहीं लगने देते, वे करोड़ों क्लेश सहन करनेवाले उत्तम पुरुष सिंहके समान निर्भय और साहसी कहलाते हैं।

९८७। कुत्तोंके समान कौन हैं— जो पुरुष तपश्चरण और संयम पालन करनेकेलिये पंचेंद्रियोंके विषयोंको तथा अन्य अनेकप्रकारके अनिष्ट परिग्रहादिकोंको छोड़ देते हैं और फिर लोभमें पड़कर उन्हें ग्रहण करलेते हैं वे पुरुष ठीक कुत्तोंके समान हैं। कुत्ता जैसे अपने ही वांत किये हुये मलको भक्षण करना चाहता है। उसीप्रकार छोड़े हुये विषय परिग्रहादिको पुनः ग्रहण करनेवाले पुरुष अवश्य कुत्तोंके समान हैं।

९८८। निर्लज्ज कौन हैं— जो पुरुष देवशास्त्र गुरुकी तथा श्रावक श्राविका आदि संघकी साक्षीपूर्वक तपश्चरण व्रत दीक्षा यम नियमादि ग्रहण करलेते हैं और फिर कोई थोड़ासा

कारण पाकर चंचल चित्त हो उसे छोड़ देते हैं अथवा उसका प्रतीकार करते वा चाहते हैं वे धृष्टपुरुष निर्लज्ज कहे जातेहैं।

९८९। लज्जावान् पुरुष कौन हैं-जो पुरुष स्वीकार किये हुये व्रत यम नियमादिकोंको निंदा भय आदि किसी कारणसे भी नहीं छोड़ते वे पूज्यपुरुष लज्जालु कहे जाते हैं।

९९०। उत्कृष्ट कौन हैं-जो पुरुष सम्यग्दर्शन तथा उत्कृष्ट आचार संयम आदिको निरतिचार पालन करते हैं वे पूज्य-पुरुष उत्कृष्ट कहलाते हैं।

९९१। निकृष्टपुरुष कौन हैं--जो पुरुष निकृष्ट हिंसादि धर्म पालन करते हैं निकृष्ट देव शास्त्र गुरुको सेवन करते हैं और निकृष्ट ही आचरण यम नियमादि पालन करते हैं वे अद्भुत पुरुष निकृष्ट कहे जाते हैं।

९९२। शुद्धपुरुष कौन हैं-जो शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध व्रत, शुद्ध ध्यान और शुद्ध (निर्दोष) आचरण यम नियमादि पा-लन करते हैं वे शुद्धपुरुष कहलाते हैं।

९९३। अशुद्ध कौन हैं--जिनके मनवचनकाय अशुद्ध हैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादि अशुद्ध हैं और आचरण आदि सब अशुद्ध हैं वे सदोषव्रती वा अशुद्ध कहे जाते हैं।

९९४। पवित्र कौन हैं-जिनके आचरण ध्यान आदि सब निर्मल हैं वे पुरुष तीनों लोकोंमें पवित्र गिने जाते हैं।

९९५। अपवित्र कौन हैं-जो पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतसे बहुत दूर

रहते हैं स्त्रियोंके शरीररूपी कीचड़में सदा डूबे रहते हैं वे नीच पुरुष अपवित्र कहलाते हैं।

९९६। घृणित मनुष्य कौन हैं-जो पुरुष बड़े प्रेमसे रात-दिन स्त्रियोंके मुंहका लालापान किया करते हैं वे निंद्य असंयमी पुरुष घृणित कहलाते हैं।

९९७। सुखी कौन हैं-जिन्होंने समस्त आशायें छोड़दी हैं जो सबसे निराश होकर रातदिन संतोषरूपी अमृतका पान करते रहते हैं वे जितेंद्रिय सदा सुखी कहलाते हैं।

९९८। दुःखी कौन हैं--जो लोभ और आशाओंसे घिरे हैं पंचेंद्रियोंके विषयोंके फंदेमें फंसे हैं जो संतोषका नाम भी नहीं जानते वे संसारकी आकांक्षा रखनेवाले महा दुःखी कहलाते हैं।

९९९। अद्भुत कौन हैं--जो पुरुष अद्भुत, उत्कृष्ट और अभीष्ट ध्यान, घोर तपश्चरण आदि स्वीकार करते हैं वे पूज्यपुरुष अद्भुत कहलाते हैं।

१०००। कर्मरहित कौन कहलाते हैं--जो पुरुष मोक्षप्राप्तिकेलिये सदा उद्यत रहते हैं रत्नत्रय तपश्चरण आदिसे विभूषित हैं वे पुरुष संसारमें रहते हुये भी कर्मरहित कहलाते हैं

१००१। दीर्घसंसारी कौन हैं--जो पुरुष महा मिथ्यात्वी हैं जैनधर्मसे पराङ्मुख हैं, निर्दयी और पापकरनेमें पंडित हैं। रातदिन विषयोंमें आशक्त रहतेहैं अशुभलेश्या औरक्रोधादि

सहित तीव्र कषायी हैं वे पुरुष संसारके अनंत दुःखोंकी सदा आकांक्षा रखनेवाले दीर्घसंसारी वा अनंतसंसारी(अनंतकालतक संसारमें भ्रमण करनेवाले) कहलाते हैं।

१००२। नास्तिक कौन हैं—जो पुरुष सर्वज्ञ वीतराग निरूपित जिनधर्म तथा अणुव्रत महाव्रतादि पालन नहीं करते न उनका कहा हुआ शास्त्र ही मानते हैं जो परलोक तथा पुण्य पाप आदिको भी नहीं मानते वे इंद्रिय विषयोंके फंदेमें पड़े हुये पुरुष नास्तिक कहलाते हैं ।

१००३। नास्तिकोंको किन २ दुर्गतियोंमें जाना पड़ता है-वे निगोदमें पड़ते हैं या सातवें नरकमें जाते हैं अथवा स्थावरकायमें पड़कर चिरकालतक वहीं निवास करते हैं।

१००४।इस जीवको निगोदमें पड़कर कैसा दुःख भोगना पड़ता है-निगोदमें रहनेवाले जीवोंको अंतर्मुहूर्त्तमें छ्यासठ हजार तीनसौ छत्तीसबार (६६३३६ वार) जन्म मरण करना पड़ता है और इसप्रकार जन्ममरण करने का घोर दुःख उठाते हुये उन्हें अनंतकालतक वहीं रहना पड़ता है ।

१००५। पूज्य मित्र कौन हैं--जो पुरुष तपश्चरण दीक्षा शास्त्राभ्यास आदि धारण कर धर्मकार्योंमें सहायता करते हैं जो पापकार्योंसे कुमार्ग और दुराचारोंसे सदा निवारण करते रहते हैं वास्तविकमें वे ही सर्वत्र पूज्य मित्र हैं इनके सिवाय अन्य कोई मित्र नहीं हो सकता ।

१००६ । शत्रु कौन हैं--जो पुरुष दीक्षा ग्रहण करनेमें तपश्चरणव्रत आदि स्वीकार करनेमें चैत्य चैत्यालय आदि धर्म कार्य करनेमें सदा निषेध करते रहते हैं पापकार्य करनेकेलिये कुमार्गमें चलने और व्रत भंग करनेके लिये मिथ्यात्वसेवन करने और कुशिक्षा ग्रहण करनेकेलिये सदा प्रेरणा करते रहते हैं वे शत्रु हैं। इनके सिवाय अन्य कोई शत्रु नहीं हो सकता।

१००७ । मनुष्योंका सर्वत्र हित करनेवाले कौन २ हैं--उत्तम क्षमादिक धर्म, रत्नत्रय, तपश्चरण, दान, जिनपूजन, दीक्षा और इंद्रियनिग्रह आदि सब जगह मनुष्योंका हितसंपादन करते हैं।

१००८ । हितैषी और दक्ष कौन हैं--जो सज्जनपुरुषोंको आत्मकल्याण करनेमें दीक्षा तपश्चरण दान आदि सन्मार्गमें सदा लगाये रहते हैं वे सबके हितैषी कहलाते हैं।

१००९ । इस संसारमें अहित क्या है--मिथ्यात्व, पाप, अनाचार इंद्रियोंके सुख कुमार्गका सेवन करना, नीचोंकी संगति करना आदि सदा दुःख देनेवाले और अहित करनेवाले हैं।

१०१० । अहित करनेवाले दुष्ट कौन हैं--जो पुरुष अपने आत्माको प्रेरणाकर मिथ्यात्व पापकार्य और कुमार्ग आदिमें पटक देते हैं अर्थात् जो मिथ्यात्व पापकार्य आदिका सेवन

करते हैं वे दुष्ट हैं अपना ही अहित करने वाले हैं।

१०११। ऐसे कौन हैं जो जीतेहुये भी मृतक समान हैं-जो पुरुष तप चारित्र जिनपूजन दान शील आदि कुछ नहीं कर सकते, निर्गंध पुष्पके समान व्यर्थ ही जीवन व्यतीत करते हैं किंतु चांडालके समान जो पापारंभ और दुराचार आदि करनेमें बड़े प्रबल हैं वे मूर्ख जीवित रहते हुये भी मृतकके समान हैं।

१०१२। मरे हुये भी जीवितके समान कौन हैं--तपश्चरण वा धर्मकार्यादिसे उत्पन्न हुई जिनकी कीर्ति अद्यावधि विद्यमान हैं अथवा जिनके निर्माण किये हुये चैत्य चैत्यालय पाठालय आदि विद्यमान हैं वे मरे हुये भी चिरजीवी कहे जाते हैं।

१०१३। मृतकके समान नीच (स्पर्श न करने योग्य) कौन हैं—जो पुरुष न तो धर्ममें प्रेम रखते हैं और न धर्मात्माओंसे प्रेम रखते हैं ऐसे गाढ़ मिथ्यात्वी पुरुष मृतकके समान अस्पृश्य कहलाते हैं।

१०१४। किनका जीवितव्य सफल है—जो रात दिन तपश्चरण पालन करते हैं व्रत करते हैं दान देते हैं जिनपूजन करते हैं दीक्षा ग्रहण करते हैं उनका जीवित रहना सफल है।

१०१५। निष्फल जीवितव्य किनका है—जो रातदिन पापारंभ करते रहते हैं, जिनका जीवन धर्म दान पूजन तपश्चरण

आदिक विना ही व्यतीत होता है उनका वह जीवन व्यर्थ है केवल नरकका कारण है।

१०१६। प्रशंसनीय दानी कौन हैं—जो थोड़ासा धन पाकर भी जिनालय बनवाते हैं प्रतिमा निर्माण कराते हैं पूजन प्रतिष्ठा आदि करते हैं वे दानी अवश्य प्रशंसनीय हैं।

१०१७। प्रशंसनीय तपस्वी कौन हैं—जो हीन संहनन होकर भी दीक्षा स्वीकार कर घोर तपश्चरण महाव्रत आदि पालन करते हैं चमत्कार करनेवाले योग आसन आदि धारण करते हैं तथा अपनी पूर्ण शक्तिसे अखंड और निर्दोष अनेक शुभाचरण पालन करते हैं ऐसे महातस्वी अवश्य प्रशंसनीय गिने जाते हैं।

१०१८। ऐसे कोन हैं जो इस लोकमें भी दुःखी रहे ओर परलोक में भी दुःखी रहें—जो आठों पहर पाप करते रहते हैं और जो दान पूजन तपश्चरण आदि पुण्यकार्योंसे सदा दूर रहते हैं वे दोनों लोकोंमें सदा दुःखी रहते हैं।

१०१९। दोनों लोकोंमें सदा सुखी कौन रहते हैं—जो धर्मकार्य करनेमें सदा तत्पर रहते हैं; पापोंसे डरते हैं और शुभध्यानादिकोंमें लीन रहते हैं वे दोनों लोकोंमें सदा सुखी रहते हैं।

१०२०। वृद्ध कौन हैं—जिनके योग समाधि चारित्र, ज्ञान, ध्यान, तपश्चरण आदि सबसे अधिक और उत्कृष्ट हैं

तथा जो धृति, धैर्य आदि उत्कृष्ट गुणोंको धारण करनेवाले हैं वास्तवमें वे ही वृद्ध हैं। सफेदबालवाले तो नाममात्रके वृद्ध हैं।

१०२१। बालक कौन हैं—जो तपश्चरण, व्रत चारित्र, विवेक आदि गुणोंसे रहित हैं, अज्ञानी और धृति (धैर्य) आदि गुणोंसे रहित हैं वे बालक हैं।

१०२२। गुणी कौन हैं—जो उत्तमक्षमादि दश धर्म धारण करनेवाले हैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपश्चरण समाधि आदि सद्गुण धारण करनेवाले हैं धर्म, शील, योग, जितेंद्रियता आदि संयम धारण करनेवाले हैं तथा जो धैर्यादि अन्य अनेक गुणोंसे विभूषित हैं वे गुणी कहलाते हैं।

१०२३। गुणरहित कौन हैं—जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपश्चरण, व्रत आदि गुणोंसे रहित हैं धर्मशून्य हैं निर्गंध पुष्पके समान निर्गुणी कहे जाते हैं।

१०२४। जन्म पाना किनका सफल है—जो रत्नत्रय पाकर निरंतर धर्माचरण पालन करते हैं उन्हींका जन्म पाना सार्थक है।

१०२५। निष्फल जन्म किनका है—जो क्रिया, धर्म, तपश्चरण आदिसे रहित हैं दान, शील जिनपूजन आदि कार्योंसे दूर रहते हैं उनका जन्म पशुओंके समान व्यर्थ है।

१०२६। कौन मनुष्य बैलोंके समान हैं—जो पापारंभ आदि

कार्योंसे सदा पीड़ित रहते हैं घररूपी रथमें जुतकर सदा उसे चलाया करते हैं अर्थात् सदा घरके कामोंमें ही लगे रहते हैं वे पुरुष अवश्य बैलोंके समान हैं।

१०२७। उपर्युक्त पुरुष बैलोंके समान क्यों हैं—क्योंकि जैसे बैल धर्मशून्य होते हैं केवल पापकार्य कर अपना उदर निर्वाह करते हैं उसीप्रकार उपर्युक्त पुरुष भी धर्मशून्य और केवल पापकार्य कर अपना उदरनिर्वाह करनेवाले हैं इसलिये बैलोंके समान हैं।

१०२८। परलोकमें जानेकेलिये पाथेय (मार्गमें खानेयोग्य वा खर्च करने योग्य) क्या है—उत्तम अहिंसादिधर्मका सेवन करना ही पाथेय है तथा तपश्चरण दान जिनपूजन व्रत संयम आदि पुण्यकार्य भी सब परलोककेलिये पाथेयका काम देते हैं।

१०२९। किसका मस्तक उत्तम समझना चाहिये—जो पुरुष केवल मोक्षप्राप्त होनेकेलिये श्रीजिनेंद्रदेवको नमस्कार करते हैं अथवा जिनसिद्धांत और निर्ग्रंथ गुरुको नमस्कार करते हैं उन्हीं पुरुषोंका मस्तक उत्तम और पुण्य बढ़ानेवाला है।

१०३०। किन पुरुषोंका मस्तक व्यर्थ है—जो पुरुष आत्मकल्याण करनेकेलिये अर्थात् मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये कुदेव कुशास्त्र और नीच कुगुरुओंको नमस्कार करते हैं उनलोगोंका मस्तक व्यर्थ है केवल पाप बढानेवाला है।

१०३१। किन २ सज्जन पुरुषोंके नेत्र सफल हैं—जो पुरुष

निरंतर जिनप्रतिमा और चैत्यालयोंके दर्शन करते रहते हैं धर्मकार्योंको बड़े प्रेमसे देखते हैं और सद्गुरुओंके दर्शन करते हैं उन्हींके वे नेत्र सफल और शुभ हैं।

१०३२। अशुभ नेत्र कौन हैं—जो पुरुष कुतीर्थ और कुगुरुओंके दर्शन करते हैं तथा पापदृष्टिसे स्त्रियोंके मुख योनि आदि सुंदर अंग उपांग देखते रहते हैं उनके वे नेत्र अशुभ कहलाते हैं।

१०३३। कौनसे कर्ण सफल गिने जाते हैं—जो कर्ण केवल ज्ञानवृद्धिकेलिये रातदिन धर्मोपदेश तत्त्वार्थ, आगम आदि सुना करते हैं वे कर्ण सफल और पुण्यप्रद माने जाते हैं।

१०३४। पापी कर्ण कौन हैं—जो कर्ण कुशास्त्र विकथा, अशुभवार्ता, परधर्म और निंदा आदि सुनते रहते हैं वे पापी कहलाते हैं।

१०३५। कौनसी जिह्वा मिष्टभाषिणी और हित करनेवाली कहलाती है-जो जिह्वा रातदिन ज्ञानामृतका पान कराया करती है अर्थात् जो रातदिन पठन पाठन किया करती है और धर्मोपदेश दिया करती है वही जिह्वा उत्तम कहलाती है।

१०३६। कौनसी जिह्वा उत्तम समझी जाती है—जो जिह्वा मधुर, कर्णप्रिय, निर्दोष और सबका हित करनेवाला भाषण किया करती है वह जिह्वा उत्तम कहलाती है।

१०३७। पापिनी जिह्वा कौन सी है—जो जिह्वा पापकार्योंके नि-

रूपण करनेवाले कुशास्त्रोंका व्याख्यान करती है नरक लेजा-नेवाले पापकार्योंका उपदेश देती है वह जिह्वा पापिनी कही जाती है।

१०३८। कौनसी जिह्वा सर्पिणीके समान गिनी जाती है-जो जिह्वा परनिंदा झूठ गाली आदिके द्वारा मनुष्योंको सदा दुःख दिया करती है वह सर्पिणीके समान गिनी जाती है।

१०३९। कौनसे हाथ शुभ हैं—जो हाथ रातादिन जिनपूजन और वैयावृत्ति किया करते हैं दान दिया करते हैं तथा अन्य अनेक शुभकार्य किया करते हैं वे हाथ शुभ कहलाते हैं।

१०४०। पापी हाथ कौन हैं--जो हाथ हिंसा पापारंभ आदि अशुभकार्य करनेमें सदा तत्पर रहते हैं सदा आयुधलिये रहते हैं जीवोंका घात किया करते हैं वे हाथ निंद्य और नरक देनेवाले कहलाते हैं।

१०४१। कौनसे पांव (पैर) सफल गिने जाते हैं—जो पैर ईर्यापथशुद्धिसे तीर्थयात्रा करते हैं सद्गुरुयात्रा अर्थात् जाकर सद्गुरुके दर्शन करते हैं वे पैर सफल और शुभ गिने जातेहैं

१०४२। पापी पैर कौन हैं-जो पैर अपनी इच्छानुसार पाप-कार्योंमें दौड़ते हैं कुतीर्थयात्रा और प्राणियोंके घात करनेके-लिये दौड़ते हैं वे पापी पैर कहलाते हैं।

१०४३। पवित्र हृदय कौनसा है—जो हृदय सदा तत्त्वोंका चिंतवन किया करता है अनेक शास्त्रोंका जानकार है परमा-

त्मामें सदा लीन और स्थिर रहता है वही हृदय पवित्र और उत्तम है।

१०४४। पापी हृदय कौनसा है--जो हृदय कुशास्त्र और कुकथाओंका चिंतवन किया करता है परदोष और इंद्रियविषयोंमें आसक्त है धर्मका घात करनेवाला और कुमार्गका सेवन करनेवाला है वह हृदय पापी गिना जाता है।

१०४५। कल्याणकारी शरीर कौन है-जो शरीर चारित्र तपश्चरण आदि पालन करता है कायोत्सर्ग अनशन आदि कठिन तपश्चरणोंमें निर्विकार और स्थिर रहता है वह शरीर शुभऔर कल्याणकारी कहलाता है।

१०४६। पापी शरीर कौनसा है--जो शरीर अनेक पाप और अनेक आरंभ करता है जो तपश्चरण दीक्षा आदि ग्रहण नहीं कर सकता जो सदा विकारयुक्त रहता है वह दुःखदायी शरीर पापी कहा जाता है।

१०४७। कर्ण पानेका क्या फल है-धर्मश्रवण करना तथा आगमका अर्थ भावार्थ आदि श्रवण करना।

१०४८। नेत्र पानेका क्या फल है—रथोत्सव जिनाभिषेक जिनपूजन आदि धर्मकार्य, देखना तथा तीर्थोंके दर्शन करना आदि।

१०४९। जिह्वा पानेका क्या फल है—हितमित भाषण करना

१०५०। हाथोंसे क्या लाभ उठाना चाहिये—पात्रदान देना

और भक्तिपूर्वक जिनपूजन करना ।

१०५१ । पैरोंसे क्या करना चाहिये-तीर्थयात्रा करनेकेलिये गमन करना ।

१०५२ । मन पानेका मुख्य फल क्या है—सदा धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यानादि करना ।

१०५३ । शरीरका मुख्य कार्य क्या है—तपश्चरण योग आदि धारण करना ।

१०५४ । सद्बुद्धि पानेका क्या फल है--आगमके कठिन २ अर्थोंका प्रकाश करना ।

१०५५ । कवित्व (काव्य रचनेकी शक्ति) आदि गुण प्राप्त होनेका उत्तम फल क्या है—अध्यात्मशास्त्रोंकी रचना करना तथा आगमानुसार तत्त्व और पदार्थोंके निरूपण करनेवाले शास्त्रोंकी रचना करना आदि कवित्व गुणप्राप्त होनेका उत्तम फल है

१०५६ । आत्मकल्याण करनेकेलिये कवियोंका अन्य उत्तम कार्य क्या है-अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधुगण इन पंच परमेष्टियोंका निरंतर गुणस्तवन करना तथा इनके गुण स्तवनकी रचना करना आदि कवियोंके उत्तम कार्य हैं ।

१०५७ । अमृतके समान पीने योग्य क्या है—निरंतर ज्ञानरूपी अमृतका पान करना ही अमृतके समान पेय है ।

१०५८ । ज्ञानामृत पान करनेका फल क्या है-जन्ममरणरूप संतापका नाश करना ।

१०५९। अन्य पुरुषोंकेलिये क्या कहना चाहिये–अन्य पुरुषों केलिये धर्मका स्वरूप कहना चाहिये अथवा स्वर्गमोक्षके साधनभूत रत्नत्रयका स्वरूप कहना चाहिये।

१०६०। इस असार संसारमें सार क्या है–व्रत धारण करना अथवा शास्त्राभ्यास करना।

१०६१। रातदिन किसका चिंतवन करना चाहिये–तत्त्वार्थको निरूपण करनेवाले जिनागमका।

१०६२। रातदिन चिंता किसकी करनी चाहिये–कर्मरूपी शत्रु समूहके नाश करनेकेलिये रातदिन चिंता करना अच्छा है।

१०६३। हृदयमें सदा क्या धारण करना चाहिये–संसारकी असारता।

१०६४। और क्या हृदयमें धारण करना चाहिये–तीनप्रकार का स्थिर वैराग्य हृदयमें सर्वत्र धारण करना चाहिये।

१०६५। वह तीन प्रकारका वैराग्य कौनसा है–संसारवैराग्य देहवैराग्य और भोगवैराग्य।

१०६६। संसारवैराग्य किसे कहते हैं–पंचपरावर्त्तनरूप संसारपरिभ्रमणके दुःखोंसे उद्विग्नचित्त होकर संसारको सर्वथा असार दुःखमय चिंतवन कर उससे विरक्त होना संसारवैराग्य कहलाता है।

१०६७। देहवैराग्य किसे कहते हैं–अतिशय वीभत्स घिनोने और सैकडों रोगोंसे भरे हुये इस शरीरका स्वरूप चिंतवन

करना इससे विरक्त होना देहवैराग्य है ।

१०६८ । भोगवैराग्य किसे कहते हैं—असंतोष पाप और तृ-ष्णाकोबढानेवाले किंचित् ऐंद्रियक सुखाभाससे विरक्त होना भोगवैराग्य कहलाता है ।

१०६९ । सज्जनोंको वैराग्यसे क्या लाभ होता है—वैराग्यसे अनंत कर्मोंका क्षय होता है और तपश्चरण रत्नत्रय आदि नि-र्मल गुणसमूह उत्पन्न होते हैं ।

१०७० । राग (रागद्वेष) करनेवाले रागीपुरुषोंकी क्या हानि होती है-समयसमय पर उनके कर्मबंध होता है उत्तमगुण सब नष्टहो जाते हैं मन और इंद्रियां उच्छृंखल हो जाती हैं तथा आत्म कल्याण बहुत दूर पड़जाता है ।

१०७१ । यह ऐसा क्यों होता है अर्थात् रागीपुरुषके विशेष कर्म-बंधादि क्यों होते हैं--क्योंकि रागी पुरुषके भोगोपभोग किये विना ही केवल सराग परिणामोंके द्वारा क्षणक्षणमें अनंत कर्मोंका बंध होता है ।

१०७२ । वैराग्य क्या करता है-विरागी और ज्ञानवान् पुरु-षके भोजन पानादि भोगोपभोगसामग्रीका भोग करते हुये भी अंतरंगमें वैराग्यरूप परिणाम होनेसे कर्मका बंध नहीं होता है । क्योंकि रागद्वेष परिणामोंसे कर्मका बंध होता है विरागी पुरुषके रागद्वेष है नहीं इसलिये उसके कर्मका बंध भी नहीं होता ।

१०७३। रागद्वेष और वैराग्यभावका ऐसा स्वरूप जानकर सज्ज-नोंको क्या करना चाहिये—उपर्युक्त तीनों प्रकारका वैराग्य स्थिरता और दृढतापूर्वक धारण करना चाहिये।

१०७४। और क्या करना चाहिये—रागद्वेष नष्ट करना चा-हिये और रागद्वेष उत्पन्न करनेवाले परिग्रहका त्याग क-रना चाहिये।

१०७५। मनुष्योंको सुनना क्या चाहिये—वैराग्यभावना सुन-ना चाहिये तथा शास्त्रोंके गूढ तत्त्व सदा सुनना चाहिये।

१०७६। और क्या सुनना चाहिये—तत्त्वोंका स्वरूप, सि-द्धांतशास्त्रोंका अर्थ और सत्कथा आदि।

१०७७। ग्रहण क्या करना चाहिये-आत्मकल्याण करने-वाले सद्वाक्य तथा शिष्योंको दीक्षा तपश्चरण आदि ग्रहण करना चाहिये।

१०७८। और क्या ग्रहण करना चाहिये-तत्त्वोंका स्वरूप और सिद्धांतशास्त्रोंका अर्थ ग्रहण करना चाहिये तथा उप-देश देनेवाले सद्वक्ताओंके वचन ग्रहण करने चाहिये।

१०७९। किनके वचन प्रमाण माने जाते हैं--जो रागद्वेषरहित हैं अर्थात् वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं और संसारमात्रका हित कर-नेकेलिये सदा उद्यत हैं अर्थात् हितोपदेशी हैं उन्हींके वच-न प्रमाण माने जाते हैं।

१०८०। किनके वचन झूठ और अकल्याणकारी समझे जाते हैं—

जो पुरुष रागद्वेषसे कलंकित हैं, अज्ञानी हैं और जो न अ-
पना हित करते हैं न अन्य जीवोंका ही कुछ कल्याण कर
सकते हैं ऐसे पुरुषोंके वचन मिथ्या और पाप बढानेवाले
गिने जाते हैं।

१०८१। ये रागी द्वेषी पुरुष साधुओंका क्या अपकार करते हैं:--
ये पुरुष साधुओंके सम्यग्दर्शनादि उत्तम गुण तो ग्रहण
करते नहीं और न उनके चलाये हुये सत्मार्गमें चलते हैं किंतु
उनमें व्यर्थ अनेक दोष लगाया करते हैं,

१०८२। अज्ञानी पुरुषोंके बचन कैसे होते हैं--अज्ञानी पुरु-
षोंके बचन उन्हें स्वयं कुमार्गमें ले जाते हैं तथा अन्य लो-
गोंको भी कुमार्गगामी बना देते हैं। अज्ञानी पुरुषोंके वचन
सदा पाप उत्पन्न करनेवाले और सर्पिणीके समान जगतनिं-
द्य कहलाते हैं।

१०८३। यह समझकर विद्वानोंको क्या करना चाहिये--उन्हें
अपना आत्मकल्याण करनेकेलिये सर्वज्ञ वीतराग देवके
बचन ही ग्रहण करने चाहिये। अन्य रागी द्वेषी निर्गुणी पुरु-
षोंके बचन ग्रहण करना कदापि योग्य नहीं हैं।

१०८४। कौनसा कार्य शीघ्र करना चाहिये--संसार संतति
का विनाश।

१०८५। और क्या करना चाहिये—अपने आत्माका ध्यान,
अथवा पंच परमेष्टियोंका ध्यान।

१०८६ । पंच परमेष्ठी कौन २ हैं—अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पांच परमेष्ठी कहलाते हैं।

१०८७ । इन पांच परमेष्ठियोंके ध्यान करनेसे क्या फल मिलता है—इनके ध्यानरूपी अग्निसे अनेक जन्मोंमें उपार्जन किये अनंत कर्मसमूह तृणराशिके समान क्षणभरमें नष्ट होजाते हैं।

१०८८ । इनके स्मरण करनेसे क्या लाभ होता है—जैसे कतकफलसे जल पवित्र और निर्मल हो जाता है उसीप्रकार परमेष्ठियोंके स्मरण करनेसे मन पवित्र शुभ और स्थिर हो जाता है तथा धर्मध्यानादिमें तल्लीन हो जाता है।

१०८९ । जिस मंत्रमें इन पंच परमेष्ठियोंका सार और उत्कृष्ट नाम है ऐसे "णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरिआणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" इस उत्कृष्ट मंत्रके जप करनेसे क्या लाभ होता है—इस मंत्रके जप करनेसे संपूर्ण विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा उत्तम२ संपदायें रातदिन बढती रहती हैं।

१०९० । जो पुरुष निरंतर इस मंत्रका जप करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है—उनके विघ्न सब क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। जैसे मंत्रके प्रभावसे बादल फटकर क्षणभरमें छितरवितर हो कर नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार इस मंत्रके प्रभावसे दृढ बंधन जाल आदि भी क्षणभरमें सब नष्ट हो जाते हैं।

१०९१ । इस मंत्रके प्रभावसे और क्या लाभ होता है—इस मंत्रके प्रभावसे सिंह हाथी कुत्ता व्याघ्र सर्प आदि क्रूरजीव भी कीलितके समान शक्तिहीन हो जाते हैं।

१०९२। इस मंत्रका और क्या माहात्म्य है-इस मंत्रके माहात्म्यसे क्रूर पुरुष, दुष्टपुरुष,भूपति,विद्याधर,चोर,शत्रु आदि-सब स्वयं मित्र बन जाते हैं।

१०९३। क्या इस मंत्रके जप करनेवालोंको क्षुद्र देवादिक कोई किसी प्रकारकी पीड़ा करते हैं—जैसे मंत्रके प्रभावसे सर्प निश्चेष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस मंत्रके प्रभावसे व्यंतर असुर क्रूरग्रह शाकिनी डाकिनी चंडिकाआदि सब निश्चेष्ट हो जाते हैं अथवा वे स्वयं इच्छानुसार पदार्थ देनेवाले हो जाते हैं।

१०९४। इस मंत्रके जप करनेसे धर्मात्मा पुरुषोंकेलिये क्या २ शांत हो जाता है—जैसे मेघ बरसनेसे समुद्र शांत हो जाता है उसीप्रकार इस मंत्रके जप करनेसे अग्नि दावानल आदि सब उपद्रव स्वयं शांत हो जाते हैं।

१०९५। यह मंत्र और कैसा है—यह मंत्र समुद्रमें डूबते हुये पुरुषोंको पार लगाने वाला है तथा तीनों लोकोंकी अन्य संपूर्ण आपत्तियोंसे बचानेवाला है।

१०९६। इस मंत्रके प्रभावसे अन्य अनेक संपदायें अपने आप आकर वश हो जाती हैं—इस मंत्रके प्रभावसे तीनों लोकोंकी संपूर्ण संपदायें गृहदासीके समान अथवा उत्कृष्टभार्याके समान सज्जनोंके सन्निकट स्वयं आ उपास्थि होती हैं।

१०९७। क्या इस मंत्रके जपद्वारा उत्पन्न हुये पुण्यसे इसलोकमें यह लक्ष्मी भी बढती है—अवश्य इस मंत्रके प्रभावसे लक्ष्मी भी प्रतिदिन अनेकप्रकारसे बढती रहती है।

१०९८। इस मंत्रके प्रभावसे परलोकमें कौनसी लक्ष्मी प्राप्त होती है- इस मंत्रके प्रभावसे सज्जन पुरुषोंको इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्ती गणधरदेव अरहंतदेव बलदेव आदि उत्तम२पुरुषोंकी उत्तम संपदायें प्राप्त होती हैं।

१०९९। धर्मात्मा पुरुषोंके अनेक असाध्य रोगोंकेलिये उत्तम औषधि क्या है—अनेक असाध्य रोगोंको क्षणभरमें दूर करदेने वाला यही एक महामंत्र है।

११००। क्या इस मंत्रके सामने अन्य छोटे २ मंत्र असर करते हैं — नहीं जैसे सूर्योदयके सामने चंद्रमा निश्चेष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस मंत्रके सामने भी अन्य सब मंत्र निश्चेष्ट हो जाते हैं

११०१। यह मंत्र कितना उत्कृष्ट है—जैसे आकाशसे कोई बड़ा पदार्थ नहीं है और परमाणुसे कोई छोटा पदार्थ नहीं है उसीप्रकार इस मंत्रसे अन्य कोई उत्कृष्ट पदार्थ नहीं है।

११०२। यह मंत्र किस २ समय निरंतर जपना चाहिये — सुखमें, दुःखमें, कोई किसीप्रकारका भय होने पर, चलते हुये, सोते हुये, बैठते हुये, कोई भारी रोग हो जानेपर, किसी किलेमें घिर जानेपर, संग्राममें तथा अन्य सपूर्ण संकट आ जानेपर, कोई उपसर्ग आ जानेपर और इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग होनेपर यह महामंत्र निरंतर जपना चाहिये।

११०३। फिर यह मंत्र कहां जपना चाहिये—किसी बंदीगृहमें बंधजानेपर और मरणसमय सन्निकट होनेपर यह मंत्र अच्छी

तरह जपना चाहिये उससमय इसे कभी नहीं छोड़नाचाहिये

११०४। केवल मरणसमयमें इस मंत्रके जप करनेसे किन २ पुरुषों को देवादि सुगतिका लाभ हुआ है—केवल मरण समयमें इस मंत्रके जप करनेसे चोर तिर्यंच तथा कुव्यसन सेवन करने वाले अनेक पुरुषोंको देवादि सुगतिकी प्राप्ति हुई है।

११०५। यदि किसी रोगादिके हो जानेसे यह शरीर अपवित्र हो जाय तो उस समय भी यह महामंत्र जपना चाहिये या नहीं—अवश्य जपना चाहिये क्योंकि यह मंत्र महा पवित्र है यह कभी अपवित्र नहीं हो सकता।

११०६। अपवित्रशरीरसे इस मंत्रका जप क्यों करना चाहिये—क्योंकि चाहे कोई पवित्र हो वा अपवित्र हो इस मंत्रके जप करने मात्रसे वह वाह्य अभ्यंतर सब जगह पवित्र हो जाता है[1].

११०७। जो पुरुष रातदिन इश मंत्रका जप करते हैं उन्हें क्या २ लाभ होते हैं—उन्हें सदा निष्पाप धर्मकी प्राप्ति होती है सच्चे आगमकी प्राप्ति होती है। पापकर्म तथा प्रबल मोहनीय कर्म नष्ट हो जाते हैं। इंद्रियोंके अनिष्ट विषय सब दूर हो जाते हैं। संवर निर्जरा और क्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इनके सिवाय उन्हें स्वतंत्रता सद्धर्म और सध्यानकी प्राप्ति होती है उनके कष्ट सब दूर हो जाते हैं। उनका धन कभी नष्ट नहीं होता। उनके रोग विघ्न आदि सब नाश हो जाते हैं। ज्ञान

१। अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच नमस्कारं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥१॥

चारित्र आदि निर्मल और उत्तम गुणोंकी प्राप्ति होती है।

११०८। इस महामंत्रका ऐसा उत्तमफल जानकर क्या करना चाहिये-रातदिन इसी उत्तम मंत्रका जप करना चाहिये इसे पाकर फिर कभी नहीं छोडना चाहिये।

११०९। मोक्ष प्राप्त होनेकेलिये इस जीवको अपने हृदयमें कौन भावनायें सदा चिंतवन करते रहना चाहिये—मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ भावनायें सदा चिंतवन करते रहना चाहिये।

१११०। मैत्री भावना कहां चिंतवन करना चाहिये—संपूर्ण प्राणियोंमें अर्थात् किसी जीवको कभी किसीप्रकारका दुःख नहो ऐसी अभिलाषाको मैत्री भावना कहते हैं ऐसी यह मैत्री भावना संसारके प्राणीमात्रमें सदा रखना चाहिये।

११११। इस मैत्रीभावनाके चिंतवन करनेसे क्या लाभ होता है-महाव्रत समिति गुप्ति आदि गुणोंकी पूर्णता होती है।

१११२। प्रमोदभावनाका चिंतवन कहां करना चाहिये—जो पुरुष सम्यग्दर्शनादि अनेक गुणोंसे सुशोभित हैं तपस्वी हैं ज्ञान चारित्रधृतिधैर्यआदि अनेक गुण धारण करनेवाले हैं उन्हें देखकर हर्ष मानना चाहिये यही प्रमोद भावना है। भावार्थ-गुणीपुरुषोंको देखकर प्रमोदभावनाका चिंतवनकरनाचाहिये

१११३। प्रमोदभावनासे क्या लाभ होता है—प्रमोदभावनामें मन पवित्र और ध्यान करने योग्य हो जाता है गुणोंमें अनु-राग बढ़ता है और सम्यग्दर्शनादि सद्गुणोंकी प्राप्ति होती है।

१११४। कारुण्यभावनाका चिंतवन कहां करना चाहिये—जो प्राणी रोगोंसे पीडित हैं अथवा अन्य अनेक क्लेशोंसे दुःखी हो रहे हैं उन्हें देखकर उनका उपकार चिंतवन करते हुये कारुण्यभावनाका चिंतवन करना चाहिये। भावार्थ—दुःखी जीवोंको देखकर कारुण्यभावनाका चिंतवन करना उचितहै

१११५। माध्यस्थभावनाका चिंतवन कहां करना चाहिये—जो जीव सम्यग्दर्शनादि सुमार्गको छोडकर कुमार्गमें जारहे हैं जो पापी हैं रौद्रकर्म करनेवाले हैं एकांतमतको माननेवाले हैं मिथ्यादृष्टि और क्रोधी हैं ऐसे जीवोंको देखकर माध्यस्थ्यभाव रखना चाहिये अर्थात् राग द्वेष छोडकर माध्यस्थ्यभावनाका चिंतवन करना चाहिये।

१११६। माध्यस्थ भावनाके चिंतवन करनेसे क्या लाभ होता है। माध्यस्थ्यभावनाका चिंतवन करनेसे वैरभाव मिट जाता है रागद्वेषादि दोष उत्पन्न नहीं होते परिणाम शुभ बने रहते हैं।

१११७। जो पुरुष रातदिन इन भावनाओंका चिंतवन करते रहते हैं उन्हें क्या लाभ होता है—उनके सम्यग्दर्शनादि गुणसमूह सब प्रगट हो जाते हैं रागद्वेषादि सब दोष छूट जाते हैं और उनका जन्ममरणरूप संसार शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

१११८। इस धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथके पढनेसे क्या फल मिलता है—इस ग्रंथके पढनेसे चतुरता बढती है संपूर्ण तत्त्वोंका ज्ञान हो जाता है और ज्ञानादि अनेक गुण बढ जाते हैं।

११९९। इस ग्रंथके सुननेसे क्या लाभ होता है—इस ग्रंथ-के सुननेसे अशुभकर्मोंका आस्रव रुक जाता है तथा शुभ-कर्मोंका आस्रव होता है।

११२०। इस ग्रंथके लिखनेसे क्या फल मिलता है-इसके लिखने से ज्ञानरूपी तीर्थोंके उद्धार करनेका महाफल मिला करता है।

११२१। इस ग्रंथके व्याख्यान करनेसे क्या लाभ होता है—जैनधर्मानुयायी भव्यपुरुषोंकी सभामें इस ग्रंथका व्याख्या-न करनेसे रत्नत्रयादि अनेक सद्गुणोंकी प्राप्ति होती है।

इसप्रकार आचार्यवर्य श्रीसकलकीर्तिने मोक्षसुखकी प्राप्तिकेलिये सद्धर्मका व्याख्यान करनेवाला यह धर्मप्रश्नो-त्तर नामका ग्रंथ निर्माण किया है। जो मुनिवर रागद्वेषादि-रहित और विशेष ज्ञानी हों संपूर्ण तत्त्वोंके जाननेवाले और उत्तम हों, वे इसे शुद्ध करलें।

इस ग्रंथमें प्रमादवश, अज्ञानवश अथवा और किसी अशुभसे जो कुछ संधिरहित मात्रा और अक्षररहित कहा गया हो, हे सुभगे मातः सरस्वति वह सब तू क्षमा करना त-था संपूर्ण मुनीश्वर भी वह मेरा सब कृत्य क्षमा करें और कृपाकर मुझे सद्बुद्धि देवें।

यह धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथ मोक्षरूपी सुख देनेवाला है धर्मसंबंधी प्रश्नोत्तरोंसे भरा हुआ है, पाप नष्ट करनेवाला है धर्म बढानेवाला है अनेक गुणोंका भंडार है धर्म और तत्त्वों-

का स्वरूप निरूपण करनेवाला है तथा उन्हीं यथार्थ तत्त्वों-को निरूपण करनेवाला है कि जो तत्त्व श्रीजिनेंद्रदेवने कहे थे और जिनका व्याख्यान श्रीगौतमादि गणधरदेवोंने किया था। ऐसा यह ग्रंथ जबतक संसारमें धर्म विद्यमान रहै तबतक मुनिजन और सज्जनोंद्वारा सदा बढता रहै।

मैं सकलकीर्त्ति आचार्य श्रीऋषभदेवादि तीर्थंकर, धर्मसंबंधी प्रश्नोत्तर करनेवाले तथा अनेक गुण धारण करनेवाले गणधरदेव, सम्यक्त्वादि अति उत्तम गुण धारण करनेवाले सिद्धनाथ, पंचाचार पालन करनेवाले आचार्य, संपूर्ण श्रुतज्ञानको जाननेवाले उपाध्याय और अनेक योग धारण करनेवाले साधु जनोंको नमस्कार करता हूं तथा प्रार्थना करता हूं कि-ये लोग मुझे अपने २ सब गुण प्रदान करें।

इस ग्रंथमें मैने जिन २ अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु जनोंको नमस्कार किया है तथा जिस २ धर्म रत्नत्रय श्रुतज्ञान आगम और सुतत्त्वोंका निरूपण किया है वे सब मुझे अपने २ गुण प्रदान करें, तथा धर्म १ रत्नत्रय योग और समाधिमरण प्रदान करें मोक्षमार्गमें चलने और व्रत यम नियमादि धारण करनेमें मेरे सब विघ्न दूर करें। भावार्थ--इनके प्रभावसे ये मेरे सब काम सिद्ध हों।

जो ज्ञानरूपी तीर्थ अनेक गुणोंका भंडार है पवित्र है त्रैलोक्यनाथ भी जिसको पूज्य समझते हैं गणधरादि देव-

भी जिसकी वंदना करते हैं मुनिसमूह जिसकी सदा स्तुति करते रहते हैं वह सकलकीर्ति द्वारा निर्मित (धर्मप्रश्नोत्तर-नामका) ज्ञान रूपी तीर्थ मोक्षमार्ग प्राप्त होनेकेलिये चिर कालतक बढता रहै तथा चिरकालतक इसकी निर्मलकीर्त्ति संसारभरमें फैलती रहै ।

यह धर्म तत्त्व और मोक्षमार्गको दिखानेकेलिये दीपकके समान तथा ग्यारहसे सोलह प्रश्नोंसे सुशोभित धर्मप्रश्नोत्तर ग्रंथ सदा जयशील हो।

इसग्रंथकी श्लोक संख्या पंद्रहसौ है तथा इसका नाम धर्मप्रश्नोत्तर है और इसका यह नाम सार्थक है क्योंकि इसमें प्रश्नोत्तर रूपसे धर्मका निरूपण किया गया है ।

इति श्रीसकलकीर्त्याचार्यविरचिते धर्मप्रश्नोत्तरमहाग्रंथे सज्जनचित्तवल्लभपृच्छावर्णनो नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥ ६ ॥
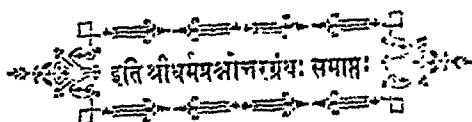
१ । यद्यपि मूलग्रंथमें ११११ प्रश्न लिखे हैं परन्तु अनुवादमें [illegible] गये हैं । [illegible] और [illegible] मिलाकर यह अनुवाद किया गया है [illegible] नहीं आया । [illegible] जावे तो शायद उससे यह प्रश्नोंकी संख्या [illegible] मिल जावे । अनुवादक ।

स्याद्वादग्रंथमालाके नये नियम ।

१। इस ग्रंथमालामें सब ग्रंथ भाषा तथा भाषा-टीका सहित ही छपेंगे ।

२। इस ग्रंथमालाकी न्योछावर ९० या १०० फारमकी सर्वसाधारणसे ५) रु० और धनाढ्य रईसोंसे १०) रुपये अग्रिम ली जाती है। डांकखर्च जुदा है सो प्रत्येक अंक वा ग्रंथ डांकखर्चमात्रके दो या तीन आनेके वी. पी. से भेजा जाता है जिससे कोई अंक खोया नहीं जाता ।

३। इस ग्रंथमालामें जो ग्रंथ बुकसाइजमें छपेंगे वे पूरे होनेपर जिल्द बंधाकर भेजे जांयगे। और खुलेपत्रोंमें होंगे १०—१२—१५ जितने फारम छपैंगे हर दूसरे महीने भेजदिये जांयगे। डांकमें कोई अंक खोया जायगा तो उसके जिम्मेवार हम नहीं हैं।

४। जबाव चाहनेवालोंको जबावीकार्ड वा टिकट भेजना चाहिये बिना जवाबीकार्ड पाये या बिना टिकट आये जबाव देनेमें प्रमाद होता है।

५। चिठ्ठी स्पष्ट हिंदी वा अंगरेजीमें भेजना चाहिये—उर्दू, मौडी मारवाड़ी वा गुजरातीमें भेजनेसे उसकी तामीलमें भी प्रमाद होगा ।

मैनेजर—स्याद्वादरत्नाकरकार्यालय
पोष्ट—बनारस सिटी ।